

**‘SWATANTRYOTTAR BHARTIYA PARIDRISHYA AUR
DUSHYANT KUMAR KA KAVYA’**

A Thesis submitted in Partial Fulfilment of the Requirement

For the Degree of Doctor of Philosophy in Hindi



2021

Researcher

AZAD

16HHPH02

Head of Department

PROF. GAJENDRA KUMARPATHAK

Supervisor

PROF. M. SHYAM RAO

Department of Hindi

School of Humanities, University of Hyderabad

Hyderabad, Telangana, India, Pin Code- 500046

‘स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिदृश्य और दुष्यंत कुमार का काव्य’

हैदराबाद विश्वविद्यालय की पीएच.डी. (हिंदी) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबंध



2021

शोधार्थी

आज़ाद

16HHPH02

विभागाध्यक्ष

प्रो. गजेंद्र कुमार पाठक

शोध-निर्देशक

प्रो. एम. श्याम राव

हिंदी विभाग

मानविकी संकाय, हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद, तेलंगाना, भारत, पिन कोड - 500046



DECLARATION

I **AZAD** (Registration no. **16HHPH02**) hereby declare that the thesis entitled '**SWATANTRYOTTAR BHARTIYA PARIDRISHYA AUR DUSHYANT KUMAR KA KAVYA**' (स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिदृश्य और दुष्यंत कुमार का काव्य) submitted by me under the guidance and supervision of **Professor M. SHYAM RAO** is a bonafide plagiarism free research work. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my thesis can be deposited in shodhganga / Inflibnet.

Signature of Supervisor
PROF. M. SHYAM RAO

Signature of Student
AZAD

Regd. No. 16HHPH02



CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled '**SWATANTRYOTTAR BHARTIYA PARIDRISHYA AUR DUSHYANT KUMAR KA KAVYA**' (स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिदृश्य और दुष्यंत कुमार का काव्य) submitted by **AZAD** bearing Regd. No. **16HHPH02** in partial fulfilment of the requirements for the award of **DOCTOR OF PHILOSOPHY** in **HINDI** is a bonofide work carried out by him under my supervision and guidance.

As for as I know, This thesis is free from plagiarism and has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or institution for award of any degree or diploma.

Further, the student has the following publication(s) before submission of the thesis for adjudication and has produced evidence for the same in the form of acceptance letter or the reprint in the relevant area of his research:

A. Published research paper in the following publications :

1. 'DUSHYANT KUMAR KA KAVYA: ADHUNIKTA KA DASTAVEJ', SAMSAMAYIK SRIJAN (A PEER REVIEWED LITERARY AND UGC CARE LIST PRINT JOURANL) ISSN NO. 2330-5733, YEAR- 11, ANAK- 3, JANUARY-MARCH 20121
2. 'DUSHYANT KUMAR KE KAVYA MEIN CHITRIT VIVIDH-AYAM', SAHITYASETU (A PEER REVIEWED LITERARY AND UGC CARE LIST E-JOURANL) ISSN NO. 2249-2372, YEAR- 11, ISSUE 2, CONTINUOUS ISSUE- 62, MARCH-APRIL 2021,

B. Research Paper presented in the following conferences :

1. 'DUSHYANT KUMAR KE SAHITYA MEIN SAMRASTA AUR EKATMAKTA KE SWAR', NAME OF NATIONAL SEMINAR- 'HARMONY AND UNITY IN INDIAN LANGUAGES AND LITERATURE' (CENTRE FOR DALIT AND ADIVASI STUDIES AND TRANSLATION, SCHOOL OF HUMANITIES, UNIVERSITY OF HYDERABAD, HYDERABAD), 08-09 MARCH, 2019.

2. 'DUSHYANT KUMAR KA SAHITYA AUR SATTA', NAME OF NATIONAL SEMINAR- 'SAHITYA AUR SATTA' (P.G.D.A.V. COLLEGE 'EVENING', UNIVERSITY OF DELHI, NEHRU NAGAR, NEW DELHI), 21-22 OCTOBER, 2019.

Further the student has passed the following courses towards fulfilment of coursework requirement for Ph.D.:-

Course Code	Name	Credit	Result
1. 801	Critical Approaches to Research	4	Pass
2. 802	Research Paper (project work)	4	Pass
3. 826	Ideological Background of Hindi Literature	4	Pass
4. 827	Practical Review of the Texts	4	Pass

The student has also passed M. Phil degree of this university. He studied the following courses in this programme.

Course Code	Name	Grade	Credit	Result
1. HN701	Research Methodology	B	4.00	Pass
2. HN722	Sociology of Literature	C	4.00	Pass
3. HN724	Aesthetics and Stylistics	B	4.00	Pass
4. HN726	Sahitya Media aur Sanskriti	B	4.00	Pass
5. HN750	Dissertation	A+	16.00	Pass

Therefore, the student has been exempted from repeating Research Methodology course (as recommended by the Research Advisory Committee) in his Ph.D. programme.

Supervisor

Head of Department

Dean of the School

अनुक्रमणिका

क्रम संख्या	पृष्ठ संख्या
भूमिका	06
पहला अध्याय: स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिदृश्य: एक पृष्ठभूमि	11
1.1 स्वातंत्र्योत्तर भारत की आर्थिक पृष्ठभूमि	
1.2 स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीतिक पृष्ठभूमि	
1.3 स्वातंत्र्योत्तर भारत की सामाजिक पृष्ठभूमि	
1.4 स्वातंत्र्योत्तर भारत की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि	
दूसरा अध्याय: नई कविता और दुष्यंत कुमार का काव्य	41
2.1 नयी कविता की पृष्ठभूमि	
2.2 नयी कविता के विषय में विद्वानों के विचार	
2.3 नयी कविता और दुष्यंत कुमार का काव्य	
2.3.1 कथ्य की व्यापकता और दृष्टि की उन्मुक्तता	
2.3.2 अनुभूति की सच्चाई तथा यथार्थबोध	
2.3.3 विसंगति और विडम्बना	
2.3.4 द्वन्द और संघर्ष	
2.3.5 लोकोन्मुखता और मानववादी चेतना	
2.3.6 वादमुक्तता	
2.3.7 अतिवैक्तिकता	
2.3.8 व्यंग्यात्मकता	
2.3.9 क्षणवाद	

2.3.10 अतियथार्थवाद

2.3.11 बौद्धिकता

2.3.12 आधुनिकता बोध

2.3.13 कुंठाओं और वर्जनाओं से मुक्ति का सन्देश

2.3.14 राजनैतिक चेतना

2.3.15 आशा, विश्वास, वेदना, निराशा और अनास्था

2.3.16 नया शिल्प-विधान

तीसरा अध्याय: साठोत्तरी हिन्दी कविता और दुष्यंत कुमार का काव्य 64

3.1 साठोत्तरी हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि

3.2 साठोत्तरी हिन्दी कविता के आन्दोलन

3.3 साठोत्तरी हिंदी कविता के संदर्भ में विद्वानों के विचार

3.4 साठोत्तरी हिन्दी कविता और दुष्यंत कुमार

3.4.1 व्यवस्था से मोहभंग

3.4.2 पीड़ा, आक्रोश, विरोध, विद्रोह, क्षोभ, उत्तेजना और छटपटाहट

3.4.3 कुंठित मन की कविता

3.4.4. विसंगति और विडम्बना

3.4.5 मूल्यों का विघटन

3.4.6 तीखे व्यंग्य का स्वर

3.4.7 आम आदमी के अधिकारों के लिए संघर्ष

3.4.8 जनतंत्र की हिमायत

3.4.9 लोक सौन्दर्य

3.4.10 युगबोध

चौथा अध्याय: जनवादी कविता और दुष्यंत कुमार का काव्य 93

4.1 जनवादी कविता की पृष्ठभूमि

4.2 जनवादी साहित्य के संदर्भ में विद्वानों के विचार

4.3 जनवादी कविता की परम्परा

4.4 जनवादी कविता और दुष्यंत कुमार

4.4.1 आम आदमी का चित्रण

4.4.2 संघर्षशीलता और क्रान्तिकारी चेतना

4.4.3 जनशक्ति में विश्वास

4.4.4 सामाजिक विद्रूपताओं, विकृतियों, विडम्बनाओं और विसंगतियों का वर्णन

4.4.5 मानवीय मूल्यों को प्राथमिकता

4.4.6 सामंती जीवन-मूल्यों का सक्रिय विरोध

4.4.7 सत्ता का दमन और तानाशाही रवैये का विरोध

4.4.8 लोकतंत्र के खोखलेपन का चित्रण

4.4.9 जनभाषा का प्रयोग

पांचवां अध्याय: स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गज़ल और दुष्यंत कुमार की गज़ल 138

5.1 'गज़ल' का रूपगत स्वरूप

5.1.1 गज़ल शब्द का अर्थ

5.1.2 गज़ल शब्द का कोशगत अर्थ

5.1.3 गज़ल के बारे में विद्वानों के मत और परिभाषाएँ

5.1.4 गज़ल के अंग

5.1.5 ग़ज़ल के प्रकार

5.1.5.1 तुकांतता के आधार पर

5.1.5.1.1 मुअद्स ग़ज़ल

5.1.5.1.2 मुकप्फा ग़ज़ल

5.1.5.2 भाव के आधार पर

5.1.5.2.1 मुसल्सल ग़ज़ल

5.1.5.2.2 ग़ैरमुसल्सल ग़ज़ल

5.2 ग़ज़ल का उद्भव और विकास

5.3 उर्दू ग़ज़ल की परम्परा

5.3.1 उर्दू ग़ज़ल का आदिकाल

5.3.2 उर्दू ग़ज़ल का मध्यकाल

5.3.3 उर्दू ग़ज़ल का आधुनिककाल

5.3.4 उर्दू ग़ज़ल स्वतंत्रता के बाद

5.4. हिंदी ग़ज़ल की परम्परा

5.4.1 भारतेन्दु पूर्व हिंदी ग़ज़ल (हिंदी ग़ज़ल का आदिकाल)

5.4.2 हिंदी ग़ज़ल का आधुनिककाल

5.4.3 स्वातंत्र्योत्तर हिंदी ग़ज़ल

5.5 स्वातंत्र्योत्तर हिंदी ग़ज़ल और दुष्यंत कुमार की ग़ज़ल

5.5.1 आम आदमी की समस्याओं का यथार्थ चित्रण

5.5.2 लोकतंत्र, नेता और राजनीति का चित्रण

5.5.3 विद्रोह का स्वर

5.5.4 आर्थिक मोहभंग की स्थिति का चित्रण	
5.5.5 महानगरीय बोध	
5.5.6 साम्प्रदायिकता	
5.5.7 प्रेम का चित्रण	
छठा अध्याय: स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिदृश्य और दुष्यंत कुमार का काव्य	214
6.1 स्वातंत्र्योत्तर भारतीय सामाजिक परिदृश्य और दुष्यंत कुमार का काव्य	
6.2 स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजनीतिक परिदृश्य और दुष्यंत कुमार का काव्य	
6.3 स्वातंत्र्योत्तर भारतीय आर्थिक परिदृश्य और दुष्यंत कुमार का काव्य	
6.4 स्वातंत्र्योत्तर भारतीय सांस्कृतिक परिदृश्य और दुष्यंत कुमार का काव्य	
सातवाँ अध्याय : दुष्यंत कुमार के काव्य का शिल्प-पक्ष	258
7.1 दुष्यंत कुमार की काव्य भाषा	
7.2 दुष्यंत कुमार के काव्य में बिम्ब-विधान	
7.3 दुष्यंत कुमार के काव्य में प्रतीक-विधान	
7.4 दुष्यंत कुमार के काव्य में अलंकार	
उपसंहार	284
संदर्भ ग्रन्थ सूची	291
परिशिष्ट	
शोध-आलेख	298
शोध-प्रपत्र	314

भूमिका

किसी देश के इतिहास में आने वाले उतार-चढ़ाव की ध्वनि वहाँ के साहित्य में स्वतः सुनाई देने लगती है। इतिहास में उपस्थित तमाम त्रासदी, पीड़ा, जय-पराजय, उम्मीद और निराशाएं वहाँ की जनता की भावनाओं से होते हुए साहित्य में उतर जाती है। अच्छा साहित्य अपने आप में अपने देश, काल और वातावरण के इतिहास को भावनाओं सहित व्यक्त करने में सक्षम होता है। ऐसे ही साहित्यकार हैं दुष्यंत कुमार। उनका साहित्य जीवन के विभिन्न पक्षों को अपने अंदर समाहित किए हुए है। उनके साहित्य, खासकर काव्य में युगीन परिस्थितियों का बेहतरीन निरूपण देखने को मिलता है। समय की दृष्टि से कवि ने अपनी साहित्यिक यात्रा की शुरुआत 'नई कविता' के दौर से थोड़े पहले की। दुष्यंत कुमार ने ग़ज़ल, गीत, कविता, काव्य-नाटक, उपन्यास, कहानी, एकांकी, टिप्पणी-लेख आदि प्रमुख साहित्यिक विधाओं में रचना की है। दुष्यंत कुमार हिन्दी साहित्य जगत में प्रमुख ग़ज़लकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। आज दुष्यंत कुमार को हिन्दी या हिंदीत्तर वर्ग के ज्यादातर पाठक ग़ज़लकार के रूप में ही जानते हैं लेकिन दुष्यंत कुमार ने अपनी साहित्यिक यात्रा की शुरुआत कविताओं से की है। इनका पहला संग्रह 'सूर्य का स्वागत' एक कविता-संग्रह है जिसके प्रकाशन से साहित्य जगत को यह आभास हो गया था कि आकाश में चमकने के लिए दुष्यंत रूपी सूर्य का उदय हो गया है। इसके बाद 'आवाज़ों के घेरे' और 'जलते हुए वन का वसंत' दो और कविता संग्रह प्रकाशित हुए। दुष्यंत कुमार ने 'एक कंठ विषपायी' शीर्षक काव्य नाटक भी लिखा जिसमें 'सती-दाह' की पौराणिक कथा को आधार बनाकर समकालीन सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक समस्याओं को उठाया गया है। दुष्यंत कुमार की प्रसिद्धि का कारण बना, उनका एक मात्र बावन ग़ज़लों का 'साये में धूप' लघु ग़ज़ल-संग्रह। जिसके प्रकाशित होते ही साहित्य जगत में तहलका मच गया। ग़ज़लों के शेर जनता की जबान पर चढ़ गये, जिनकी गूँज सभाओं और आंदोलनों में सुनाई देने लगी। इन ग़ज़लों की अत्यधिक लोकप्रियता के कारण दुष्यंत कुमार के अन्य साहित्य की ओर पाठकों ने उचित ध्यान नहीं दिया। लेकिन मैंने दुष्यंत कुमार के साहित्य के अध्ययन से यह जाना है कि उनका अन्य साहित्य, उनकी ग़ज़लों से किसी भी स्तर पर कम महत्वपूर्ण नहीं है। इनके साहित्य के केंद्र में तत्कालीन आम आदमी और उसकी समस्याएँ हैं। आम आदमी केंद्र में होने के कारण कवि का साहित्य आज भी प्रासंगिक बना हुआ है। इनकी कविताओं के ज्यादातर विषय तत्कालीन परिस्थितियों से सम्बन्धित हैं। उनके साहित्य में व्यवस्था से मोहभंग, झुँझलाहटें, नाराजगी, क्रोध, विरोध, असंतोष, आशाओं और उम्मीदों का टूटना, लोकसौन्दर्य का चित्रण, प्रेम की कोमलकान्त अभिव्यक्ति और शासकवर्ग के खिलाफ विद्रोह आदि देखने को मिलता है। उनके सम्पूर्ण साहित्य में आम-आदमी से जुड़े मुद्दे केंद्र में हैं। यही प्रमुख कारण रहा है जिसने मुझे दुष्यंत कुमार के साहित्य पर शोध कार्य करने के लिए सबसे ज्यादा प्रेरित किया था।

इस शोध विषय को चुने जाने के पीछे की कहानी यह है कि जब मैं हैदराबाद विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग से एम.फिल. कर रहा था उस दौरान मैं अपने शोध विषय से संबंधित सामग्री संकलन के लिए

जनवरी 2016 में दिल्ली के प्रगति मैदान में लगने वाले पुस्तक मेले में गया था। वहाँ 'किताब घर' प्रकाशन के स्टॉल पर रखी विजय बहादुर सिंह द्वारा संपादित 'दुष्यंत कुमार रचनावली' देखी। इससे पहले मैंने दुष्यंत कुमार की केवल 'साये में धूप' गज़ल संग्रह की कुछ गज़लें ही पढ़ी थीं। मैं उन गज़लों से बहुत प्रभावित हुआ था, इसलिए मैं दुष्यंत कुमार के साहित्य से अधिक परिचित होने की इच्छा रखता था। मैंने दुष्यंत कुमार की रचनावली इसी उम्मीद से खरीद ली। रचनावली पढ़ने के बाद मुझे दुष्यंत कुमार के साहित्य और तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों के अंतरसंबंध को समझने की जिज्ञासा जागृत हुई। यहीं से इस शोध कार्य की प्रेरणा मिली। मैंने निश्चय कर लिया था कि पीएचडी में दुष्यंत कुमार के साहित्य पर केंद्रित अध्ययन ही करूँगा। किंतु शोध विषय के चुनाव के लिए विभिन्न पुस्तकालयों, इंटरनेट और शोध गंगा, शोध गंगोत्री वेबसाइट का अवलोकन करके यह जानने की कोशिश की कि दुष्यंत कुमार पर कितने और किस प्रकार के शोध कार्य हुए हैं। मैंने पाया कि दुष्यंत कुमार पर हुए ज्यादातर शोध कार्य उनकी गज़लों को लेकर हुए हैं। कुछ शोध-कार्य सम्पूर्ण साहित्य को लेकर भी हुए हैं। इन शोध कार्यों में दुष्यंत कुमार के साहित्य का परिचयात्मक मूल्यांकन अधिक दिखता है। आज़ादी के बाद के भारत के सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिप्रेक्ष्य में दुष्यंत कुमार के काव्य के अध्ययन को लक्ष्य बना कर "स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिदृश्य और दुष्यंत कुमार का काव्य" विषय निश्चित किया। यह विषय दुष्यंत कुमार पर अभी तक हुए सभी शोध-कार्यों से अलग और मौलिक है। इस विषय से जुड़ा कोई अन्य शोध कार्य नहीं मिला है अतः यह शोध विषय अपने आप में एक मौलिक कार्य होगा। यह शोध कार्य दुष्यंत कुमार के साहित्य को व्यापक ढंग से समझने और उसके सर्वांगिक महत्व को ग्रहण करने में सहायक होगा। इस शोध कार्य के बाद हम स्वातंत्र्योत्तर भारतीय सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के परिचय के साथ-साथ शासन व्यवस्था, सत्ता, आम-आदमी की स्थिति का आकलन कर सकते हैं।

इस शोध विषय के अध्ययन के लिए मैंने ऐतिहासिक, समाजशास्त्रीय, आलोचनात्मक और विश्लेषणात्मक शोध प्रविधियों का प्रयोग किया है।

यह शोध प्रबन्ध सुगमता की दृष्टि से सात अध्यायों में विभाजित किया गया है।

पहला अध्याय- पहले अध्याय में स्वतन्त्रतापूर्व एवं स्वातंत्र्योत्तर भारत की उन परिस्थितियों को जानने की कोशिश की गयी है जिसने स्वतंत्र भारत के भविष्य की पृष्ठभूमि तैयार की थी। इस अध्याय की शुरुआत मैंने सत्रह सौ सत्तावन ई. के प्लासी युद्ध की घटना से की है क्योंकि इसी घटना ने भारत को गुलामी की जंजीरों में जकड़ने का काम किया था। मैंने इस अध्याय के पृष्ठभूमि के रूप में दो सौ वर्ष के इतिहास को संक्षेप रूप में प्रस्तुत किया है। उसके बाद स्वातंत्र्योत्तर भारत की आर्थिक, राजनितिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों को विस्तृत रूप से स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

दूसरा अध्याय- दूसरे अध्याय में दुष्यंत कुमार के काव्य का नयी कविता के संदर्भ में विवेचन-विश्लेषण किया गया है। इस अध्याय में मैंने सबसे पहले नयी कविता की पृष्ठभूमि को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। उसके बाद नयी कविता के बारे में विद्वानों के विचारों को जानने का प्रयास किया गया है फिर नयी कविता के संदर्भ में दुष्यंत कुमार के काव्य का मूल्यांकन किया गया है।

तीसरा अध्याय- तीसरे अध्याय 'साठोत्तरी हिन्दी कविता और दुष्यंत कुमार का काव्य' के अंतर्गत दुष्यंत कुमार के काव्य का अध्ययन किया गया है। इस अध्याय में साठोत्तरी हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि को जानने के साथ-साथ इस कविता के विभिन्न आंदोलनों का परिचयात्मक रूप से विवेचन-विश्लेषण किया गया है। इसके बाद साठोत्तरी हिन्दी कविता के संदर्भ में विद्वानों के विचारों को प्रस्तुत किया है फिर विस्तार से साठोत्तरी हिन्दी कविता के संदर्भ में दुष्यंत कुमार के काव्य को जाँचा-परखा गया है।

चौथा अध्याय: चौथे अध्याय 'जनवादी कविता और दुष्यंत कुमार का काव्य' में दुष्यंत कुमार की जनप्रतिबद्धता को समझने का प्रयास किया गया है। इस अध्याय में सबसे पहले जनवादी कविता की पृष्ठभूमि और जनवादी साहित्य के बारे में विद्वानों के विचारों को स्पष्ट किया गया है। उसके बाद जनवादी कविता की परम्परा को जानने के लिए मैंने भक्तिकाल से लेकर जनवादी कविता आन्दोलन तक की परम्परा को स्पष्ट करने का प्रयास किया है, और बाद में जनवादी कविता के संदर्भ में दुष्यंत कुमार के काव्य का अध्ययन किया गया है।

पाँचवाँ अध्याय- पाँचवें अध्याय 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी ग़ज़ल और दुष्यंत कुमार की ग़ज़ल' में दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों का अध्ययन करने से पहले 'ग़ज़ल' के रूपगत स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। अध्याय की शुरुआत में 'ग़ज़ल' शब्द का अर्थ और कोशगत अर्थ के साथ-साथ ग़ज़ल के अंग और प्रकारों को भी स्पष्ट किया गया है। ग़ज़ल के उद्भव और विकास पर बात करने के बाद उर्दू और हिन्दी ग़ज़ल की परम्परा पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है। उसके बाद स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी ग़ज़ल के संदर्भ में दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों का मूल्यांकन किया गया है।

छठा अध्याय- छठे अध्याय 'स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिदृश्य और दुष्यंत कुमार का काव्य' में दुष्यंत कुमार के काव्य का स्वातंत्र्योत्तर भारतीय सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के संदर्भ में मूल्यांकन किया गया है। यह मूल्यांकन विस्तृत रूप से किया गया है।

सातवाँ अध्याय- सातवें अध्याय 'दुष्यंत कुमार के काव्य का शिल्प-पक्ष' में दुष्यंत कुमार के काव्य के शिल्प-पक्ष पर चर्चा की गयी है। अध्याय में शिल्प-पक्ष का अध्ययन करने के लिए दुष्यंत कुमार के काव्य की भाषा पर बात की है, साथ ही काव्य में आए बिम्ब, प्रतीक और अलंकार आदि के माध्यम से शिल्प-पक्ष को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

उपसंहार के अंतर्गत प्रस्तुत शोध प्रबंध का आकलन और मूल्यांकन निष्कर्ष रूप में किया गया है।

इस शोध-प्रबंध को अंजाम तक पहुँचाने में मेरे शोध-निर्देशक प्रोफेसर एम. श्यामराव ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उनके द्वारा समय-समय पर मिलने वाले सुझाव व दिशा-निर्देश मेरे लिए और शोध प्रबंध के लिए बहुमूल्य रहे हैं। उनके सतत सहयोग के अभाव में यह शोध कार्य पूर्ण होना बहुत मुश्किल था। उनके कुशल निर्देशन और प्रोत्साहन के बल पर ही यह शोध-प्रबंध पूर्ण हो सका है। उन्होंने मुझे अपने बेटे के समान स्नेह दिया है और साथ ही एक घनिष्ठ मित्र के समान सहायता और सहयोग किया है। मैं अपने डी.आर.सी. सदस्य प्रोफेसर सचिदानंद चतुर्वेदी और डॉक्टर जे. आत्माराम का तहे दिल से शुक्रगुजार हूँ। उन्होंने मेरे शोध कार्य के दौरान समय-समय पर मार्गदर्शन दिया। मैं हिंदी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय के अन्य सभी सम्मानित प्राचार्यों का शुक्रिया अदा करता हूँ। जब भी मैं, उनके सम्मुख शोध प्रबंध के विषय में सुझाव लेने के लिए प्रस्तुत हुआ तो उन्होंने मुझे अपने बहुमूल्य सुझावों से लाभांवित किया है। इन सबके अतिरिक्त शोध कार्य को सम्पन्न कराने में मित्र राजेश्वर पराशर, मित्र सेतु कुमार वर्मा उर्फ लाला, मित्र प्रवीन्द्र शकुंत (अलीगढ़ वाले), मित्र नवनीत मीना, मित्र श्रवण, लोकेश भाटी और शेख हीना आदि ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन सभी ने मुझे समय-समय पर अपने सुझावों और आत्मीय सहयोगी की भूमिका से लाभांवित किया है। इनके अतिरिक्त अन्य कई मित्रों से सहयोग मिला है जिनका नामोल्लेख न करते हुए भी दिल से आभारी हूँ।

मैं अपने अग्रज, सहपाठी और अनुज शोधार्थियों एवं विद्यार्थियों के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ जिनसे आत्मीयता का सम्बन्ध रहा है और रहेगा। इन सबसे गुडविल और स्टूडेंट कैटीन पर चाय की चुस्की और बोंडा के जायके के साथ बातों ही बातों में इस शोध प्रबंध के लिए ढेरों महत्वपूर्ण सुझाव मिले हैं।

पारिवारिक सहयोग के बिना कोई कार्य आसानी से सम्पन्न नहीं हो सकता है। परिवार के सदस्यों ने मुझे पारिवारिक भार से मुक्त रखकर अपना मानसिक सहयोग दिया और इस शोध कार्य को पूरा करने में जरूरी भूमिका अदा की है। इसमें मेरी अम्मी इशरत, बड़े भाई मौ. समयदीन, मौ. शाहजाद, मौ. ईरशाद, बड़ी बहन सलमा और छोटा भाई आरिफ आदि प्रमुख हैं। परिवार के सभी बच्चों से मिले स्नेह ने भी मुझे तरोताजा रखा है। कभी बोरियत या थकावट का आभास हुआ तो बच्चों से बात करके मैंने अपने आपको हमेशा रचनात्मक और सकारात्मक महसूस किया। इन बच्चों के नाम नर्गिस, सुहेल, सिमरन, रिहान, अलीशा, साहिल, फैजान सिफ़ा, रिया, अयान, आलिया और तानिया हैं।

अंत में उन सभी लोगों के प्रति आभार अर्पित करता हूँ जिन्होंने इस शोध कार्य को संपन्न कराने में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से भूमिका अदा की है। शोध प्रबंध को लिखते वक्त बहुत सावधानी बरती गयी है फिर भी यदि इसमें कोई त्रुटि रह गई हो तो मैं उसके लिए क्षमा प्रार्थी हूँ। देश, सत्ता, साहित्य और आम

लोग के संबंध को बेहतर तरीके से समझने के उम्मीद और विश्वास के साथ यह शोध प्रबंध आप सब के सम्मुख प्रस्तुत है।

शोधार्थी- आजाद

रजि. न.- 16HHPH02

हिंदी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद

पहला अध्याय:

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिदृश्य: एक पृष्ठभूमि

ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना के बाद भारत में ब्रिटिशों ने व्यापार के बहाने अपनी जड़ें जमाना शुरू की। व्यापार से होने वाले भारी लाभ ने अंग्रेजों के मन में लोभ को और बढ़ा दिया जिसके कारण वह अपने व्यापार को स्थायी करने की सोचने लगे। शुरुआती दौर में, अंग्रेजों को मुगल दरबार में भिन्न-भिन्न प्रकार का कर देना पड़ता था जिसके फलस्वरूप लाभ का एक बड़ा हिस्सा कर के रूप में चला जाता था। अंग्रेज लगातार कर से मुक्त हो जाने के बारे में सोचने लगे। जिसका केवल एक उपाय था, भारत में अपनी सत्ता स्थापित करना। यह इतना आसान नहीं था लेकिन इस कठिन कार्य को संभव बनाने के अंग्रेज लगातार प्रयास करते रहे। जिसके लिए अंग्रेजों को मुगल, फ्रांसिसी, पुर्तगाली, डच तथा भारतीय प्रतिद्वंद्वियों से लंबी लड़ाई लड़नी पड़ी। समय के साथ बढ़ती शक्ति ने अंग्रेजों के हौसले और बुलंद कर दिए। सन् 1756 में अंग्रेजों ने मौके का फायदा उठाते हुए बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला की आज्ञा के बिना कलकत्ता में स्थित कंपनी की किलाबंदी शुरू कर दी। नवाब ने अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ाई लड़ी और अंग्रेजों की कंपनी और फोर्टविलियम पर कब्जा करने के साथ ही अंग्रेजों को कलकत्ता की सीमा से बाहर खदेड़ दिया। अंग्रेजों ने समुद्र के किनारे फुल्टा में भागकर शरण ली। और वहीं पर रुक कर शक्ति का संरक्षण किया। लगभग एक वर्ष के बाद अंग्रेजों ने सन् 1757 में प्लासी की लड़ाई में नवाब को हरा दिया। और रही सही कसर सन् 1764 में बक्सर की लड़ाई में अंग्रेजों के हाथों मिली हार ने पूरी कर दी। इस हार के साथ ही भारत में अंग्रेजों के दमनकारी शासन के द्वार खुल गए। बंगाल के लेखक नवीनचंद्र सेन लिखते हैं, “भारत के लिए शाश्वत दुःख की काली रात का आरंभ हुआ”¹

प्लासी की लड़ाई में मिली जीत ने अंग्रेजों के लिए बंगाल ही नहीं बल्कि पूरे भारत में शासन के रास्ते खोल दिए। इसके बाद उन्होंने लगभग दो सौ वर्ष शासन किया और एक-एक करके भारत के सभी क्षेत्रों पर अपने शासन की मोहर लगा दी। इस काल को ब्रिटिश इतिहासकार पर्सिवल स्पियर ने “खुली और निर्लज्जतापूर्ण लूट-पाट का युग कहा है”²

भारत पर आक्रमण करने वाले आक्रांताओं की नजर प्रमुखतः यहाँ की अपार धन-संपत्ति पर ही होती थी। किन्तु मुसलमान आक्रमणकारियों ने भारत की धन-संपदा तो अवश्य लूटा लेकिन उस लूट के धन का प्रयोग भारत में ही किया, बाहर नहीं ले गए। वे मरते दम तक भारत के निवासी बने रहे। शुरुआती

¹ प्रो. विपिन चंद्र, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ.सं.- 51

² प्रो. विपिन चंद्र, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ.सं.- 53

कुछ मुस्लिम आक्रमणकारियों को छोड़कर, दूसरे आक्रांता यूरोपीय रहे, जिनका उद्देश्य केवल यहाँ की धन-संपत्ति और प्राकृतिक संपदा आदि को लूटना था। उनके उद्देश्य के बारे में जॉन सुलिवन की टिप्पणी देखी जा सकती है, “हमारी प्रणाली बहुत कुछ स्पेन की तरह काम करती है जो गंगा के तटों से सभी अच्छी चीजें सोख कर टेम्स के तटों पर निचोड़ देती है।”¹ यह स्थिति क्लाइव के शब्दों से और स्पष्ट हो जाती है, “मैं केवल इतना ही कहूँगा, स्वेच्छाचारी शासन, भ्रान्ति, घूसखोरी, भ्रष्टाचार और जबरन धन खसोटने का ऐसा दृश्य बंगाल के अलावा किसी भी अन्य राज्य में कभी देखा-सुना नहीं गया। इतनी अन्यायपूर्ण लूट-खसोट से कंपनी बेशुमार संपत्ति बटोरने में जुटी हुई थी... कंपनी के अधिकारी नवाब से लेकर सत्ता से जुड़े छोटे से छोटे जमींदारों तक प्रत्येक व्यक्ति पर शुल्क थोप देते और उसे जबरदस्ती वसूल करते थे।”² अंग्रेज अपनी इस लूट-खसोट की नीति और खुद को बेहतर मानने के झूठे दंभ के कारण हमेशा विदेशी ही बने रहे।

भारत की आर्थिक स्थिति को दयनीय बनाने में अंग्रेजों ने कोई कसर नहीं छोड़ी। यहाँ का मेंहनतकश वर्ग रोजी-रोटी के लिए मोहताज हो गया। उनसे जबरन अफीम और चाय के बागानों में पशुओं की तरह काम लिया जाता था। मजदूर वर्ग के परिवार के पुरुष, महिलाएँ और बच्चे आदि सभी सदस्य मिल कर मजदूरी करने के बाद भी भरपेट खाना नहीं खा पाते थे। अन्नदाता कहा जाने वाला किसान अंग्रेजों, जमींदारों, रजवाड़ों और साहूकारों आदि के कर्ज से दबकर अपने जीवन के अंतिम दिन पूरे करने के लिए विवश था। वह अपने खेतों में अपनी पसंद-नापसंद की फसल नहीं उगा सकता था। उस से जबरन नील की फसल उगवाई जाती थी जिसे वह न तो खा सकता था ना ही उसे बेचने पर अच्छा मूल्य मिल पाता था। भारतीय किसान के बारे में चार्ल्स इलियट की टिप्पणी महत्वपूर्ण है। वे लिखते हैं, “मुझे यह कहने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि आधी कृषि जनसंख्या को एक साल के अंत में से दूसरे साल के अंत तक यह पता नहीं होता था कि पेट भर खाना कैसा होता है।”³ वहीं अपने आप को भारत का कर्णधार मानने वाले जमींदार, राजे-रजवाड़े, सूदखोर, सौदागर और पूँजीपति आदि भोग-विलास में डूबे हुए थे। साथ ही अंग्रेजों की दलाली करके, दलालों की भूमिका का निर्वाह पूरी ईमानदारी के साथ कर रहे थे। परिणामस्वरूप भारत के अन्य वर्गों को इनके कुकर्मों का फल भोगना पड़ रहा था।

दूसरी तरफ भारत का उद्योग क्षेत्र की स्थिति भी बेहद खराब हो गई थी। सैकड़ों वर्षों से फलने-फूलने वाला सूती वस्त्र उद्योग का स्तर लगातार गिरता जा रहा था। भारतीय माल पर अंग्रेजों ने कई कर लगा दिए थे। यह सब भारत के उद्योगों को ठप करने और भारतीय उद्योगपतियों को कच्चे माल को कम दाम में बेचने के लिए विवश करने के लिए किया जा रहा था। इसमें अंग्रेज सफल भी हुए। भारतीय संपत्ति को लूटने के लिए अंग्रेजों ने सन् 1853 में रेल यातायात की शुरुआत की। जिसमें पूरी पूँजी ब्रिटेन के बैंकरों

¹ प्रो. विपिन चंद्र, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ.सं.- 84-85

² प्रो. विपिन चंद्र, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ.सं.- 56

³ प्रो. विपिन चंद्र, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ.सं.- 189

की लगाई गई। जिसे भारत की सरकार ने भारत की आम जनता का खून चूसकर ब्याज के साथ लौटाया। अंग्रेजों को इससे दो लाभ हुए। पहला, खुद को भारत की जनता का हितैषी बताने का मौका मिला; दूसरा, अपने माल को भारत के भीतरी क्षेत्रों के बाजारों तक पहुँचाया और साथ ही भारत के कच्चे माल को भीतरी क्षेत्रों से निकालकर ब्रिटेन के लिए निर्यात करने में सुविधा हुई। भारतीय रेल में भारतीयों के साथ ही भेदभावपूर्ण व्यवहार किया जाता था। इन भेदभावपूर्ण नीतियों और दमनकारी शासन व्यवस्था ने भारतवासियों को अंग्रेजों के प्रति क्रोध से भर दिया जो समय-समय पर स्वतंत्रता के लिए विद्रोह के रूप में सामने आया। सन् 1857 का विद्रोह एक ऐसा ही उदाहरण है। यह मात्र सिपाही विद्रोह नहीं था बल्कि लंबे समय से भारतवासियों के ऊपर अंग्रेजों के अत्याचार, शोषण, दमन और प्रताड़ना की प्रतिक्रिया में उठी आवाज़ का परिणाम था। यह विद्रोह भारतीय पटल पर बहुत तेजी से फैला। अंग्रेजों के कुछ वफादार और चापलूसों को छोड़कर हिंदू-मुस्लिम दोनों ने एक साथ यह लड़ाई लड़ी। लेकिन कुछ कमियों के कारण वे सफल नहीं हो सके। भारतीय रजवाड़े, जमींदार, राजा-महाराजा, नवाब, राणा और सरदारों आदि ने विद्रोह को कुचलने में अपने आका, अंग्रेजों के पक्ष में सक्रिय भूमिका निभाई। जिसके विषय में कैनिंग ने लिखा है कि, “इन शासकों तथा सरदारों ने तूफान के आगे बांध की तरह काम किया, वरना यह तूफान एक ही लहर में हमें बहा ले जाता।”¹ इसके बावजूद यह विद्रोह बेकार नहीं गया क्योंकि इसने भविष्य में होने वाले राष्ट्रीय आंदोलनों की नींव का काम किया। विद्रोह के बाद अंग्रेजों ने भारत के आर्थिक ढांचे का पूरी तरह दोहन शुरू कर दिया। इसके परिणाम स्वरूप भारत का प्रत्येक दस्तकार, बुनकर, किसान और मेहनतकश मजदूर आदि अपनी रोजी-रोटी के लिए संघर्ष कर रहे थे। उन्नीसवीं शताब्दी में मशीनों के बढ़ते प्रयोग ने स्थिति को और गंभीर बना दिया। आजादी तक आर्थिक सुधार के लिए छोटे-मोटे आंदोलन लगातार होते रहे, जिनका अंग्रेजों की दमनकारी नीतियों पर ज्यादा प्रभाव नहीं पड़ा। बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक के आरंभ में आर्थिक मंदी और अकाल की मार ने भारतीय किसान और मजदूरों की स्थिति को और भी नाजुक बना दिया। इस तरह अंग्रेजों और उनके भारतीय वफादारों ने मिल कर भारतीय अर्थव्यवस्था का पूरा गणित ही बिगाड़ दिया।

बाद के मुगल शासक अपने पूर्वजों से मिले शक्तिशाली साम्राज्य को ठीक से संभाल पाने में असमर्थ रहे। जिसके कारण मुगलों के साम्राज्य का मजबूत किला ढह गया। भारत में मुगल साम्राज्य का पतन उनकी दोषपूर्ण नीतियों के कारण हुआ। भारतीय राजा-महाराजाओं और बाद के मुगलों के बीच तालमेल में कमी, लगातार बढ़ते क्षेत्रीय विद्रोह, साम्राज्य के अधिकारियों में बढ़ती लूट-खसोट की प्रवृत्ति, प्रशिक्षित सेना की लगातार होती कमी, गिरती कानून और प्रशासनिक व्यवस्था, साम्राज्य पर बढ़ता वित्तीय संकट, वित्तीय संकट से करों में होने वाली वृद्धि, आम जनता पर बढ़ता शोषण, शासक वर्ग के भोग-विलास और सामाजिक-राजनीतिक स्तर पर लोगों में राष्ट्रीय भावना की कमी आदि के कारण भारत के साम्राज्य की

¹ प्रो. विपिन चंद्र, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ.सं.- 144

डोर मुगलों के हाथों से निकलकर ऐसे विदेशी शासकों के हाथों में आ गई जिसने भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में भूचाल ला दिया।

उस दौरान भारत में चारों तरफ अनेक राजनीतिक शक्तियां उठनी शुरू हो गई। प्रत्येक राज्य के शासक अपने राज्य को स्वतंत्र देश मानते थे। उन्हें देश के अन्य राज्य और शासक शत्रु दिखाई देते थे। देश में आंतरिक एकता की कमी के कारण अंग्रेज अपना साम्राज्य स्थापित करने में सफल हुए। उन्होंने एक-एक करके भारत के सारे राज्यों पर ब्रिटिश शासन का परचम लहरा दिया। इस तरह, एक बार फिर भारत गुलामी की जंजीरों में जकड़ा गया। सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के कुछ पहले तक विभिन्न राज्य आपस में लड़ते हुए अपनी सैन्य शक्ति को कमजोर करते रहे। अंग्रेज मौके का फायदा उठाने में पीछे नहीं रहे। जब अंग्रेज किसी भारतीय शासक से लड़ाई करते थे तो अन्य राज्य के शासक तमाशा देखते या अंग्रेजों का साथ देते थे। इसी एकता और राष्ट्रीयता की कमी के कारण ब्रिटिश साम्राज्य स्थापित हो गया। इस समय तक भारत में राजनीतिक चेतना लगभग शून्य ही रही। सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के बाद भारतवासियों में राष्ट्रीयता और एकता की भावना देखने को मिलने लगी। भारतवासियों में एक नई राजनीतिक चेतना का विकास हुआ जिसके बाद देश में आजादी तक लगातार आंदोलन देखने को मिलते हैं।

सन् 1885 में कांग्रेस की स्थापना के बाद राजनीतिक स्थिति में सुधार देखने को मिलने लगा। इसका आम-जनता में जागरूकता लाने में महत्वपूर्ण योगदान रहा। वैसे कांग्रेस के नरमपंथी और गरमपंथी नेताओं के बीच भीतरी स्तर पर मनमुटाव आजादी तक चलता ही रहा। एक बार फिर सन् 1905 में लार्ड कर्जन के बंगाल विभाजन के फरमान के विरोध में आम जनता, किसान-मजदूर, हिंदू-मुस्लिम, नरमपंथी तथा उग्र राष्ट्रवादी आदि साथ खड़े हो गए। सन् 1906 में मुस्लिमलीग की स्थापना ने भारतीय राजनीतिक परिस्थितियों में हलचल मचा दी। दूसरी तरफ अंग्रेजों ने दमन, समझौता और 'फूट डालो राज करो' जैसी नीतियों को अपनाया। परिणाम स्वरूप पूरे देश में व्यापक स्तर पर हड़तालें, विद्रोह और राष्ट्रीय आंदोलन हुए। सन् 1917 में गांधी के आगमन के बाद भारत की राजनीति में नई ऊर्जा का उदय हुआ। भारत की राजनीति में मार्गदर्शन करने वाले अच्छे नेताओं की कमी को गांधी ने पूरा किया। इनकी अगुवाई में स्वाधीनता तक हड़तालें, सत्याग्रह और अनेक राष्ट्रीय आंदोलन हुए। उनकी एक आवाज पर लाखों लोगों की भीड़ खड़ी हो जाती थी। लेकिन अंतिम समय में कुछ उनके निर्णय को लेकर भारतीय नेताओं ने उनकी बातों को तवज्जो देना कम कर दिया था।

सन् 1927 के बाद साम्यवादी, समाजवादी और क्रांतिकारी विचारधारा के आगमन से भारतीय राजनीति के स्वर में परिवर्तन देखने को मिलने लगा। इसके फलस्वरूप स्वाधीनता की आवाजें जोर पकड़ने लगीं। तिलक, गोखले, सुरेंद्रनाथ बनर्जी, भगत सिंह, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, जिन्ना, नेहरू, पटेल, बोस और जयप्रकाश आदि नेताओं ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। दूसरी तरफ भारत में इस समय सांप्रदायिक

ताकतें भी सिर उठाने लगी थी। जिनको बढ़ाने में हिंदू और मुस्लिम कट्टरपंथी ताकतों तथा अंग्रेजों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। साथ ही भारत में हिंदू राष्ट्र और मुस्लिम राष्ट्र की आवाजें जोर पकड़ने लगीं। जिन्होंने स्वाधीनता आंदोलन की गति को प्रभावित किया। लेकिन इन सबके बावजूद स्वाधीनता की मशाल को जलाए रखा गया और अंततः भारतवासियों के सामूहिक प्रयास से स्वाधीनता मिली।

भारत में अंग्रेजों के आगमन के बाद से आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में काफी उतार-चढ़ाव दिखाई देता है। भारतीय समाज में सामाजिक स्तर पर जितनी विविधता दिखती है शायद ही किसी अन्य समाज में देखने को मिलती हो। आज भी समाज विभिन्न धर्मों और जातियों-उपजातियों में बटा हुआ है। हिंदू धर्म में ब्राह्मण और अपने को उच्च समझने वाली जातियों का वर्चस्व बना हुआ है। देश के प्रतिष्ठित और उच्च पदों पर इन्होंने अपना अधिकार जमाया हुआ है। देश की बड़ी आबादी को खुद से निम्न बता कर इन्होंने उनका लगातार शोषण किया। मुस्लिम, सिख, इसाई आदि अन्य धर्मों में भी समाज विभिन्न छोटी-बड़ी जातियों में बटा हुआ है लेकिन हिंदू धर्म में जाति प्रथा का ज्यादा प्रभाव रहा है। तथाकथित उच्च जातियों ने देश की अधिकांश आबादी को हासिये पर धकेल दिया और उनपर लगातार अत्याचार करते आ रहे हैं। इतना ही नहीं उनके खिलाफ छुआछूत जैसा अमानवीय अपराध को भी जन्म दिया है। विवेकानंद लिखते हैं, “हमारे सामने खतरा यह है कि हमारा धर्म रसोईघर में न बंद हो जाए। हम अर्थात् हममें से अधिकांश न वेदांती हैं, न पौराणिक और न ही तांत्रिक। हम केवल ‘हमें मत छुओ’ के समर्थक हैं। हमारा ईश्वर भोजन के बर्तन में है। और हमारा धर्म यह है कि ‘हम पवित्र हैं, हमें छूना मत’ अगर यह सब कुछ एक शताब्दी और चलता रहा तो हममें से हर एक व्यक्ति पागलखाने में होगा।”¹

समाज का पिछड़ा, श्रमिक, किसान, दलित तथा आदिवासी वर्ग दयनीय स्थिति में जीवन यापन करने के लिए विवश था। उन्हें अंग्रेजों, राजे-रजवाड़े, जमींदार, महाजनों, सूदखोरों और साहूकारों के द्वारा जीवन के प्रत्येक स्तर पर पीड़ित और शोषित किया गया। उनके लिए अपनी मूलभूत जरूरतों को पूरा करना भी मुश्किल था। दूसरी ओर भारत जैसे कृषि प्रधान देश का अन्नदाता किसान गोदान के होरी की तरह जीवन के दिन किसी तरह पूरा कर रहा था। उनको अच्छे किस्म के खाद और बीज की हमेशा कमी रहती थी जिसके कारण पैदावार अच्छी नहीं होती थी। और जो फसल होती भी थी उसका एक बड़ा हिस्सा राजस्व कर के रूप में छीन लिया जाता था। मजदूर वर्ग अपने कारखानों और बगानों के बोझ तले दबा जा रहा था। पुरुष, महिला और बच्चों, सभी से पशुओं की तरह काम लिया जाता था। आगे चलकर गांधी जैसे जननेताओं के नेतृत्व में होने वाले आंदोलनों, सत्याग्रह और हड़तालों आदि से किसानों और मजदूरों की स्थिति पर ध्यान दिलवाया गया और कुछ कानून बनाए गए। लेकिन कानून के बाद भी इनकी दयनीय स्थिति

¹ प्रो. विपिन चंद्र, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ.सं.- 219

में ज्यादा बदलाव नहीं हुआ। अंग्रेजों ने भारतीय किसान, पिछड़ा, मेंहनतकश, दलित तथा आदिवासी वर्ग के सामाजिक-आर्थिक स्तर को उठाने का प्रयास नहीं किया, उनकी नजर केवल यहाँ की धन-संपदा पर रही। अंग्रेजों ने पूँजीवाद को बढ़ावा देकर अमीर और गरीब के बीच की खाई को गहरा करके समाज में आर्थिक असमानता को और गंभीर बनाया।

भारतीय समाज पुरुष प्रधान है। पुरुष अपने को सर्वोपरि मानकर चलता है। इसलिए महिलाओं की सामाजिक स्थिति गंभीर बनी रही है। उन्हें हमेशा दोयम दर्जे पर रखा और उपभोग की वस्तु समझा गया। उनकी स्वतंत्र इच्छाओं, महत्वकांक्षाओं और अधिकारों पर पुरुष प्रधान समाज विषैले सर्प की भांति कुंडली मारकर बैठा हुआ है। उन्हें पुरुषों की तरह शिक्षा लेने का अधिकार नहीं था। केवल बड़े घरों की कुछ महिलाएँ पढ़ती थीं। तथाकथित उच्च वर्ग की महिलाओं को घर की चारदीवारी में कैद रखा जाता था। समाज उन्हें एक तरह से बच्चा पैदा करने की मशीन समझता था। हाशिए के समुदायों की महिलाओं की स्थिति तो और भी दयनीय बनी थी। उनका शोषण उच्च और निम्न दोनों वर्ग के पुरुषों द्वारा किया जाता रहा है। पुरुष प्रधान समाज में बाल विवाह, विधवा विवाह निषेध, सती प्रथा और बहु विवाह आदि कुप्रथाओं ने स्थिति और गंभीर कर दिया था। उन्नीसवीं शताब्दी में महिलाओं की स्थिति को लेकर सामाजिक आंदोलन, सामाजिक संस्थाओं की स्थापना और समाज सुधारकों के प्रयास से कुछ सुधार देखने को मिलता है। जिसके बाद बाल विवाह, सती प्रथा, विधवा विवाह और बहु विवाह आदि को लेकर कानून बने।

अठारहवीं शताब्दी में भारत में शिक्षा की स्थिति अच्छी नहीं थी। शिक्षा पर तथाकथित उच्च जाति ने एकाधिकार कर रखा था। यदि हाशिए की जातियों का कोई व्यक्ति शिक्षा लेने का प्रयास करता तो उसके साथ मारपीट और भेदभाव किया जाता था। फलस्वरूप समाज का एक बड़ा हिस्सा शिक्षा से वंचित कर दिया गया। यह इनकी दुर्दशा के मूल कारणों में से भी है। दूसरी ओर अंग्रेजों ने आने के बाद अंग्रेजी शिक्षा को लादना शुरू कर दिया। रोजगार की कमी भारत में पहले से ही थी, रही-सही कसर अंग्रेजी के ज्ञान की अनिवार्यता ने पूरी कर दी। अंग्रेज अपने लिए एक ऐसे अंग्रेजी शिक्षित वर्ग का निर्माण कर रहे थे जो भारतवासियों और अंग्रेजों के बीच की कड़ी का काम कर सके। इसके बारे में मैकाले कहता है, “हमें ऐसा वर्ग बनाने के लिए जी-जान से प्रयत्न करना चाहिए जो हमारे और उन करोड़ों लोगों के बीच, जिन पर हम शासन करते हैं, दुभाषिए का काम कर सके; यह उन लोगों का वर्ग हो जो रक्त और रंग की दृष्टि से भारतीय मगर रूचि, विचारों तथा आचरण तथा बुद्धि से अंग्रेज हों।”¹ दूसरी तरफ मुस्लिम समाज शिक्षा को लेकर सबसे ज्यादा उदासीन रहा। बाद में सर सैयद अहमद खान जैसे मुस्लिम नेताओं ने शिक्षा के महत्व को पहचाना और शिक्षा की तरफ कदम बढ़ाने के लिए अपने समाज को प्रेरित किया। जिसके बाद मुस्लिम

¹ प्रो. विपिन चंद्र, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ.सं.- 112-113

समाज का एक छोटा हिस्सा शिक्षा की ओर तेज गति से बढ़ रहा था। प्रत्येक समाज की तरह मुस्लिम समाज की महिलाओं को भी शिक्षा से दूर ही रखा गया। महिलाओं की शिक्षा को लेकर सावित्रीबाई फुले, फातिमा शेख, पंडिता रमाबाई और बेगम रुकैया सखावत हुसैन आदि ने आवाज उठाई। जिसके बाद से महिलाओं की स्थिति में कुछ परिवर्तन होने शुरू हुए।

भारत प्राचीन काल से विभिन्न संस्कृतियों का देश रहा है। यहाँ विदेशियों का आगमन चलता रहा है। उन सबकी अपनी-अपनी संस्कृतियाँ रही हैं। इन संस्कृतियों ने भारत की संस्कृति को रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, तीज-त्यौहार और भाषा आदि विभिन्न स्तरों पर प्रभावित किया। विभिन्न संस्कृतियों से प्रभावित होकर भारत में मिश्रित संस्कृति का विकास हुआ, लेकिन इसके बावजूद भारतीय संस्कृति अपनी पहचान को बनाए रखी है। इसी जड़त्व के कारण भारत सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर अपेक्षा से कम विकसित हुआ है। भारत में हमेंशा परंपराओं, रूढ़ियों, कुप्रथाओं, कुर्रतियों, अंधविश्वासों और धार्मिक कर्मकांडों आदि का वर्चस्व रहा है। इसके बिना जन्म से लेकर मृत्यु तक कोई कार्य पूर्ण नहीं होता है। इसलिए समाज में सामाजिक-सांस्कृतिक स्तर पर ऐसी असमानता व्याप्त रही है। संस्कृति के विभिन्न बंधनों ने महिलाओं की स्थिति को बदतर बनाए रखने का काम किया है। समाज में व्याप्त बाल-विवाह, अनमेल विवाह, विधवा विवाह निषेध, बहुपत्नी विवाह, दहेज प्रथा और सती प्रथा आदि जैसी कुप्रथाओं ने कन्या भ्रूण हत्या जैसी कुर्रतियों को बढ़ावा दिया है।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से लेकर बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों तक भारत में व्यापक स्तर पर सामाजिक और सांस्कृतिक कुप्रथाओं को दूर करने के लिए समाज सुधार आंदोलन होते रहे। इन आंदोलनों की अगुवाई राजा राममोहन राय, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, ज्योतिबा फुले, विष्णुशास्त्री, दादाभाई नौरोजी, करसनदास मलजी, गोपाल हरि देशमुख, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, स्वामी दयानंद सरस्वती, सैयद अहमद खान और इकबाल जैसे समाज सुधारकों ने की। इन्होंने महिलाओं की पीड़ा, जातीय भेदभाव की पीड़ा, धार्मिक सुधारों की आवश्यकता के महत्व और आधुनिक शिक्षा के महत्व को समझा और अपना पूरा जीवन रूढ़ियों, कुप्रथाओं, कुर्रतियों, अंधविश्वासों और धार्मिक-कर्मकांडों आदि के बंधनों को तोड़ने में लगा दिया। इसके परिणामस्वरूप भारतीय समाज में कुछ सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन आया।

इस प्रकार 15 अगस्त 1947 ई. को भारतवासियों ने लंबे संघर्ष के बाद ब्रिटिश साम्राज्यवाद रूपी गुलामी की जंजीरों से छुटकारा पाया, लेकिन अंग्रेज जाते-जाते भी भारतवासियों को भारत और पाकिस्तान में बांट गए। इस विभाजन ने दोनों देशों के लोगों के दिलों में नफरत के बीज बोए। भारतवासी आजादी की खुशी मनाने की बजाए अपने-अपने आशियाने की तलाश में घर से बेघर होकर भटक रहे थे। एक-दूसरे की जान के दुश्मन बन गए थे। लाखों लोगों का कत्लेआम हुआ और आगे चलकर इसी सांप्रदायिकता की

आग से प्रभावित होकर नाथूराम गोडसे नाम के असामाजिक तत्व ने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की गोली मारकर हत्या कर दी।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि स्वतन्त्रतापूर्व भारत की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और परिस्थितियों ने स्वातंत्र्योत्तर भारत की परिस्थितियों का निर्माण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस शोध-प्रबंध में स्वतंत्रता से लेकर आपातकाल की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को स्पष्ट करने का प्रयास किया जा रहा है।

1.1 स्वातंत्र्योत्तर भारत की आर्थिक पृष्ठभूमि

भारत की जनता और उनके जननेताओं ने वर्षों पहले स्वराज का जो सपना देखा था, वह 15 अगस्त 1947 को पूरा हुआ। किन्तु यह स्वराज केवल राजनीतिक था। भारत को आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आजादी को अभी पाना था। आजादी से भारतवासियों की अपेक्षा और आशाएँ बहुत बढ़ गई थी। ब्रिटिश कालीन भारत की स्थिति बहुत ही दयनीय हो चुकी थी। इसके विषय में महात्मा गांधी ने दांडी में अपने भाषण के दौरान कहा था कि, “भारत में ब्रिटिश शासन ने इस देश को नैतिक, भौतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विनाश के कगार पर पहुँचा दिया है।”¹ लेकिन जब सत्ता अंग्रेजों के हाथों से निकलकर भारतवासियों के हाथों में आ गई थी तब इन शासकों के सामने भारत की दयनीय स्थिति को सुदृढ़ बनाने की चुनौती थी। दूसरी तरफ भारतवासियों की उम्मीदों पर खरा उतरने का दबाव था। इसलिए भारत के कर्णधारों ने सबसे पहले भारत की शासन व्यवस्था को चलाने के लिए लिखित संविधान बनाया। इसे बनाते समय, छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी बातों का ध्यान रखा गया।

आजादी के समय भारत की आर्थिक स्थिति सबसे ज्यादा दयनीय थी, इसलिए तत्कालीन नेहरू सरकार के सामने प्रथम लक्ष्य भारत की आर्थिक स्थिति को मजबूत करना था। इसके विषय में नेहरू लिखते हैं, “मैं तब तक आराम से नहीं बैठ सकता जब तक कि इस देश के प्रत्येक व्यक्ति, स्त्री और बच्चे को एक उचित व्यवहार और न्यूनतम जीवन स्तर की सुविधा प्राप्त नहीं हो जाती... एक राष्ट्र को जांचने के लिए पांच-छह वर्ष की अवधि बहुत छोटी होती है। आप दस साल और इंतजार कीजिए और पाएँगे कि हमारी योजनाएँ इस देश का नजारा पूरी तरह ऐसे बदल देंगी कि दुनिया भौंच्चकी रह जाएगी।”²

स्वतंत्रता के बाद नेहरू सरकार के सामने देश की आर्थिक समस्या चिंता का विषय थी इसलिए आर्थिक समस्याओं को हल करने के लिए 1951 में योजना आयोग का गठन किया गया। आयोग का मुख्य काम देश की आर्थिक समस्याओं को ध्यान में रखते हुए, योजना बनाना और फिर उनको लागू करके देश

¹ प्रो. विपिन चंद्र, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ.सं.- 304

² प्रो. विपिन चंद्र, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, आजादी के बाद भारत, पृ.सं.- 184

को प्रगति के पथ पर चलाना था। प्रत्येक योजना की अवधि 5 वर्ष होती थी जिसे आपातकाल की स्थिति में कम किया जा सकता था। योजना आयोग के अध्यक्ष प्रधानमंत्री होते थे, साथ ही एक मनोनीत उपाध्यक्ष भी होता था जो कैबिनेट मंत्री के समान शक्ति रखता है। प्रथम पंचवर्षीय योजना को तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने संसद में 8 दिसंबर 1951 को पेश किया था। इस योजना का लक्ष्य 2.1% सकल घरेलू उत्पाद रखा गया। योजना में मुख्य रूप से शरणार्थियों के पुनर्वास और कृषि को प्राथमिकता दी गई थी। देश के सामने शरणार्थियों के पुनर्वास की समस्या थी। विभाजन के समय देश में शरणार्थियों की संख्या बढ़ गई थी, इसलिए सरकार के सामने पुनर्वास को लेकर चिंता थी। दूसरी तरफ अंग्रेजों ने भारत वर्ष के पूरे अर्थतंत्र को ही बर्बाद कर दिया था। भारत का अर्थतंत्र पूरी तरह कृषि पर आधारित था। अंग्रेजों ने भारत की कृषि को विकसित करने में कोई भूमिका नहीं निभाई बल्कि वे जोंक समान भारतीय अर्थतंत्र और कृषि व्यवस्था का खून चूसते रहे। भारतीय कृषि व्यवस्था को आधुनिक औद्योगिक परिवर्तनों से दूर रखा। भारतीय किसानों के सामने हमेशा उच्च कोटि के बीज और खाद की समस्या रही। इसलिए नेहरू सरकार ने कृषि की स्थिति को सुधारने पर विशेष ध्यान दिया था। शरणार्थियों के कारण नेहरू सरकार के सामने खाद्यान्न की समस्या थी। वह कृषि का विकास करके भारत को आत्मनिर्भरता के पथ पर लाना चाहते थे। प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि में पांच इस्पात संयंत्रों की नींव रखी गई, जिससे भारतीय जनता को रोजगार मिल सके और भारत की प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाया जा सके। साथ ही नेहरू सरकार की तरफ से राष्ट्रीय आय को लगातार बढ़ाने का आश्वासन दिया गया। दूसरी पंचवर्षीय योजना में नेहरू सरकार ने कृषि के स्थान पर भारी उद्योगों को प्राथमिकता दी, क्योंकि वे भारत में औद्योगिक उत्पादों के घरेलू उत्पादन को प्रोत्साहन देना चाहते थे। भारी उद्योगों के साथ-साथ श्रम आधारित छोटे और बड़े उद्योगों को भी प्रोत्साहन दिया गया ताकि सामान्य उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन किया जा सके। इस योजना में विदेशी निवेश पर भी विचार किया गया। तीसरी पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य आत्मनिर्भर एवं स्वयं स्फूर्ति अर्थव्यवस्था की स्थापना रखा गया। इस योजना में प्रथम योजना की तरह कृषि को प्राथमिकता दी गई। वैसे तीसरी योजना में कृषि और उद्योग दोनों पर पहली बार समान रूप से ध्यान रखा गया।

तीसरी योजना की अवधि में भारत को चीन (सन् 1962) और पाकिस्तान (सन् 1965) से दो युद्धों का सामना करना पड़ा। साथ ही इस समय भारत में भीषण सूखा पड़ने के कारण स्थिति और ज्यादा गंभीर हो गयी। अचानक मुद्रा का अवमूल्यन और कीमतों में वृद्धि हो गई जिसके कारण यह योजना अपने उद्देश्यों को पूरा करने में पूर्णतः असफल रही। गंभीर परिस्थितियों के कारण चौथी पंचवर्षीय योजना को अगले तीन वर्षों के लिए स्थागित कर दिया गया। प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं के अध्यक्ष जवाहरलाल नेहरू रहे, जिसे इतिहासकार 'नेहरू युग' के रूप में लिखते हैं। नेहरू युग में भारत की आर्थिक स्थिति ब्रिटिश काल की तुलना में बेहतर हुई, क्योंकि भारत की राष्ट्रीय उत्पाद आय औसतन 4% प्रति वर्ष के हिसाब से बढ़ी। इस दौरान कृषि के क्षेत्र में आजादी के बाद क्रांतिकारी सुधार देखने को मिले। इतिहासकार बिपिन चंद्र

लिखते हैं, “कृषि के क्षेत्र में आजादी के बाद व्यापक सुधार लागू किए गए। ग्राम स्तर पर कृषि के विकास के लिए तथा सामुदायिक विकास से संबंधित कार्य का जाल बिछा दिया गया। सिंचाई, ऊर्जा, कृषि अनुसंधान इत्यादि क्षेत्रों में आधारभूत संरचना के विकास के लिए बड़े पैमाने पर निवेश किया गया। इन सारे कदमों के फलस्वरूप खेती का काफी विकास हुआ। सन् 1965-66 को छोड़कर प्रथम तीन योजनाओं के दौरान भारतीय कृषि का विकास तीन फ्रीसदी के वार्षिक दर से हुआ। यह औपनिवेशिक काल के अंतिम पचासेक वर्षों के दौरान हासिल विकास की दर से 7.5 गुना ज्यादा थी।”¹ वे आगे लिखते हैं, “उद्योग और कृषि के अलावा योजनाओं ने शिक्षा और स्वास्थ्य समेत मूल ढांचे के विकास पे सबसे अधिक जोर दिया। औपनिवेशिक काल में इन क्षेत्रों की उपेक्षा की गई थी। प्रथम तीन योजनाओं के दौरान यातायात और संचार पर वास्तविक योजना खर्च करीब 13 अरब रुपए था।”² ये नेहरू युग की सफलता है कि उन्होंने स्वातंत्र्योत्तर भारत में आधुनिक औद्योगिक उद्योग, बांधों का निर्माण, वैज्ञानिक ज्ञान-अर्जन केंद्रों, शोधशालाओं-विश्वविद्यालयों की स्थापना तथा कृषि में वैज्ञानिक तकनीक के प्रयोग पर जोर दिया। इसमें शक की कोई गुंजाइश नहीं है कि नेहरू युग में भारत ने विकास किया, लेकिन तेजी से बढ़ती जनसंख्या के अनुपात में विकास का अनुपात उतना नहीं रहा जितना होना चाहिए था। भारत के साथ हुए दो युद्धों और सूखे ने स्थिति को और ज्यादा गंभीर बना दिया था। युद्ध के कारण भारतीय सरकार ने परिस्थितियों को देखते हुए प्रतिरक्षा के सामानों पर भारी खर्च कर दिया था। दूसरी ओर सूखे के कारण कृषि उत्पादन में भारी गिरावट हो गई, जिसके प्रभाव से भारत के आर्थिक विकास की गति थोड़ी धीमी हो गई। परिणामस्वरूप भारत की आर्थिक स्थिति में ज्यादा सुधार नहीं हो सका।

युद्धों और सूखा ने देश की आर्थिक स्थिति को इतना भयावह बना दिया जिसका असर स्पष्ट रूप से चौथी पंचवर्षीय योजना पर दिखता है। ये परिस्थिति भारतीय आर्थिक दृष्टिकोण से दुखदाई थी क्योंकि मुद्रास्फीति दर बढ़ गई थी। इसके कारण विदेशी मुद्रा और देशी मुद्रा के बीच का संतुलन बिगड़ गया। दूसरी तरफ अनाज के भंडार सूखे के कारण खाली पड़े थे। अमेरिका से अनाज का आयात करना पड़ा। अमेरिका देश की नाजुक परिस्थितियों का फायदा उठाने के लिए भारत पर अपनी शर्तें लादना चाहता था। इस संदर्भ में इतिहासकार बिपिन चंद्र जी लिखते हैं, “भारतीय अर्थतंत्र के लिए यह एक अत्यंत गंभीर परिस्थिति थी। मुद्रास्फीति दर बहुत ही कम विदेशी मुद्रा संतुलन, अनाज भंडार का कम होना जिससे कुछ इलाकों में अकाल की स्थिति पैदा हो गई, इसके फलस्वरूप भारी आयात, और लगभग आधा आयात विदेशी सहायता के रूप में। उस वक्त अमेरिका सहायता करने वाला सबसे महत्वपूर्ण देश था। ठीक ऐसी स्थितियों में उसने सन् 1965 के भारत-पाक युद्ध के बहाने सहायता बंद कर दी। साथ ही, पी. एल. 480 के तहत गेहूं की दूरगामी सहायता जारी रखने से इंकार कर दिया। राष्ट्रपति जान्सन के शब्दों में अमेरिका भारत को

¹ प्रो. विपिन चंद्र, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, आजादी के बाद भारत, पृ.सं.- 457

² प्रो. विपिन चंद्र, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, आजादी के बाद भारत, पृ.सं.- 460

‘कगार पर’ रखना चाहता था ताकि वह अमेरिकी हितों के अनुरूप नीतियों से अधिक दूर न भागे। अब अमेरिका भारत पर अपनी नीतियां बनाने के लिए दबाव डालने लगा।”¹

चौथी पंचवर्षीय योजना के पूर्व भारत की राजनीतिक स्थिति उथल-पुथल की रही। नेहरू की मृत्यु के बाद कांग्रेस की कमान संभालने को लेकर मनमुटाव हो गया, जिसका असर सन् 1967 के आम चुनावों में स्पष्ट रूप से दिखता है। कांग्रेस किसी तरह क्षेत्रीय पार्टियों की सहायता से सरकार बना पाई थी। प्रधानमंत्री के रूप में पहली बार किसी महिला ने शपथ ली। इंदिरा गांधी के कार्यकाल में सन् 1969 में चौथी पंचवर्षीय योजना की शुरुआत होती है। देश की तत्कालीन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए इस योजना में भारत को स्थिरता के साथ आर्थिक विकास और अधिक से अधिक आत्मनिर्भर बनाने पर जोर दिया गया। अनाज की कमी को देखते हुए कृषि के विकास पर ध्यान दिया गया जिसके लिए पीडीएस को संगठित किया गया। योजना में आत्मनिर्भरता के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए पहली बार किसी सरकार द्वारा आयात पर जोर दिया गया। साथ ही आर्थिक शक्ति के केंद्रीकरण को रोकने के लिए एमआरटीपी एक्ट व पिछड़े क्षेत्रों में उद्योगों को स्थापित करने पर बल दिया गया। इस योजना का 5.7% राष्ट्रीय आय वेतन वृद्धि का लक्ष्य रखा गया। तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने सन् 1971 के चुनावों को देखते हुए चौथी पंचवर्षीय योजना में ‘गरीबी हटाओ’ और ‘सामाजिक न्याय के साथ विकास’ के लक्ष्य को जोर दिया। सन् 1971 में एक बार फिर भारत को पाकिस्तान के साथ युद्ध लड़ना पड़ा। युद्ध के बाद पूर्वी पाकिस्तान आजाद होकर बांग्लादेश बना। इस दौरान करीब एक करोड़ शरणार्थी भारत आये, जिसका प्रभाव भारत के अर्थतंत्र पर पड़ा। युद्ध की स्थिति से देश संभल ही रहा था कि सन् 1972 और सन् 1974 में फिर से भारत को अकाल का सामना करना पड़ा। परिणामस्वरूप भारत की आर्थिक स्थिति सुधरने के बजाय बिगड़ती चली गई। पंचवर्षीय योजना अपने लक्ष्य से भटक कर बहुत पीछे रह गई।

सन् 1974 में पांचवी पंचवर्षीय योजना की शुरुआत इंदिरा गांधी के शासन काल में हुई। इस योजना के समय देश की आर्थिक स्थिति बहुत दयनीय थी इसलिए एक बार फिर ‘गरीबी हटाओ’ के नारे को प्राथमिकता दी गई। साथ ही निर्धन वर्ग की न्यूनतम आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए कार्यक्रम निर्धारित किए गए। देश की बढ़ती जनसंख्या को देखते हुए पहली बार परिवार नियोजन को प्रभावी ढंग से लागू करने का मन इंदिरा सरकार ने बनाया। देश को आत्मनिर्भर बनाने के लिए एक बार फिर से आय का बेहतर वितरण और देशीय बचत दर में महत्वपूर्ण वृद्धि करने की नीति अपनाई गई। इस योजना के द्वारा देश को थोड़ी राहत अवश्य मिली। लेकिन यह राहत ज्यादा दिन बरकरार नहीं रह सकी, सन् 1979-80 में स्वातंत्र्योत्तर भारत का सबसे बड़ा अकाल आया जिसने देश की जनता का पूरा गणित बिगाड़ कर रख दिया।

¹ प्रो. विपिन चंद्र, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, आजादी के बाद भारत, पृ.सं.- 466

स्वतंत्रता के बाद देश के आर्थिक विकास और पुनर्निर्माण का कार्य नेहरू सरकार ने उत्साहपूर्वक शुरू किया था। आर्थिक विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाओं ने आधार का काम किया। सरकारों ने समय-समय पर योजनाओं के लक्ष्यों को सिद्ध करने के लिए कई कार्यक्रम चलाए जिनका वर्णन ऊपर विस्तार से किया गया है। अब प्रश्न उठता है कि इन योजनाओं ने देश की जनता को कहाँ तक प्रभावित किया? ये योजनाएँ देश की आर्थिक दशा को सुधारने में कितनी सफल हुईं? सरकार से जनता की जो आशाएँ थी उन पर वह कितनी खरी उतरी?

जिस समय भारत आजाद हुआ उस समय भारत में विकास की गति ना के बराबर चल रही थी। गरीबी और बेरोजगारी का आतंक फैला हुआ था। कृषि के क्षेत्र में किसी तरह की आधुनिक तकनीक का प्रयोग नहीं हो रहा था। भारत की सामान्य जनता, किसान और वंचित वर्गों की आर्थिक स्थिति बहुत दयनीय थी। वे किसी तरह अपना जीवन गुजर-बसर कर रहे थे। उनके जीवनचर्या में आजादी से पहले और बाद कोई अंतर नहीं आया। इनको बड़ी उम्मीद थी कि आजादी के बाद उनकी स्थिति में परिवर्तन होगा। ऐसा नहीं है कि सरकार को इन आशाओं और अपेक्षाओं की जानकारी नहीं थी। उनको पता था कि जनता उनसे उम्मीद लगाए बैठी है। जिसकी ओर इशारा करते हुए नेहरू अपने भाषण में कहते हैं, “हमारे चारों ओर ढेरों समस्याओं और मुसीबतों के होते हुए भी, जो अक्सर लगता है हमारे ऊपर हावी हो रहा है, इस देश में आशा का माहौल बना हुआ है; भविष्य के प्रति एक विश्वास और मौलिक सिद्धांतों में आस्था बनी हुई है जिन्होंने हमें यहाँ तक पहुँचाया है। सुबह की रोशनी फैल रही है और भारत के दीर्घ और जटिल इतिहास में एक नए युग का सूत्रपात हो रहा है।”¹ जैसा कि नेहरू सरकार ने देश की परिस्थितियों को देखते हुए सन् 1951 में पंचवर्षीय योजना की शुरुआत की। इन योजनाओं के माध्यम से देश की आर्थिक दशा सुधारने के लिए लगातार योजना बनती रही। देश में कृषि के विकास के लिए और आधुनिक औद्योगिक उद्योगों की प्रगति के लिए महत्वकांक्षी योजनाएँ बनाई और लागू होती रही। और देश स्तर पर कार्यक्रमों को चलाने के लिए अपार धनराशि का बजट पेश किया जाता रहा लेकिन उम्मीद के मुताबिक इन क्षेत्रों में प्रगति नहीं हो सकी। योजनाओं के लिए जितनी धनराशि का बजट पेश किया गया। उतनी धनराशि भ्रष्टाचार के कारण योजनाओं पर खर्च नहीं हुई इसलिए योजनाएँ अपने लक्ष्यों से भटक गयीं। और योजनाओं का लाभ देश के गांव के वंचित-पिछड़े वर्ग तक नहीं पहुँच सका। परिणामस्वरूप योजनाओं से देश के मुट्ठी भर लोग लाभान्वित हुए जो पहले से ही मलाई चाट रहे थे। और देश में समय के साथ-साथ अमीर-गरीब के बीच की खाई बढ़ती ही गयी। समाज में भ्रष्टाचार, घूसखोरी और मुनाफाखोरी आदि की प्रवृत्ति लगातार बढ़ती ही गई। पंचवर्षीय योजनाओं ने आर्थिक स्थिति को सुधारने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। देश में बड़े स्तर पर भारी उद्योगों के साथ-साथ कुटीर और लघु उद्योग-धंधों के विकास पर सरकार ने ध्यान दिया। इससे आम लोगों को रोजगार मिला। लेकिन यह भी सच है कि आवश्यकतानुसार रोजगार सृजन में सरकार

¹ प्रो. विपिन चंद्र, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, आजादी के बाद भारत, पृ.सं.- 185

असफल रही। परिणामस्वरूप देश में बेरोजगारी की समस्या बढ़ने लगी, जो आने वाले समय में सरकार के लिए बड़ी समस्या बनी। भारत एक कृषि प्रधान देश है इसलिए तत्कालीन सरकारों ने पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि के विकास को बढ़ावा देने के लिए सबसे ज्यादा खर्च किया। भारत में किसानों के लिए उत्तम कोटि के बीज और खाद की समस्या हमेशा से रही है। इसके अतिरिक्त खेती मानसून पर आधारित होने के कारण भारतीय किसानों के लिए सिंचाई की समस्या रहती है। भारत सरकार ने सिंचाई की समस्या को देखते हुए निवेश तो किया लेकिन वह भी पर्याप्त साबित नहीं हुआ। सिंचाई के अभाव में अच्छी फसल खराब हो जाती और सरकार को अनाज के अभाव के कारण विदेशों से आयात करना पड़ता था। परिणामस्वरूप भारत के अर्थतंत्र पर अतिरिक्त भार बढ़ता गया। उद्योगों और कृषि की योजनाओं के अतिरिक्त सरकार ने शिक्षा तथा स्वास्थ्य जैसी मूलभूत आवश्यकताओं के विकास पर भी ध्यान दिया। लेकिन भारतीय समाज में फैली गैरबराबरी ने निचले तबके को शिक्षा से जुड़ने के मार्ग को कभी सुगम नहीं बनने दिया। सरकारी योजनाओं के सही वितरण न होने के कारण भी समस्या बढ़ती गई। यही स्थिति स्वास्थ्य सेवाओं के साथ भी रही। भ्रष्टाचार के कारण दवाइयों की कालाबाजारी होने लगी, इसलिए सरकार की ओर से दी जा रही स्वास्थ्य सेवाएँ जरूरतमंदों तक पहुँचने से पहले दम तोड़ने लगी।

पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से सरकार देश को आत्मनिर्भर बनाने के लिए प्रयासरत थी। सरकार ने आत्मनिर्भरता के प्रश्न को अधिकांश योजनाओं में मुख्य लक्ष्य के रूप में प्रस्तुत भी किया। लेकिन जब भी ऐसा लगता कि सब कुछ ठीक-ठाक चल रहा है, अचानक कोई घटना होती जो पूरी योजना के गणित को बिगाड़ देती थी। सन् 1960 के आसपास भारत की आर्थिक दशा सुधर रही थी, उसी समय सन् 1962 में चीन ने युद्ध छेड़ दिया। युद्ध के बाद पड़े भीषण अकालों के कारण स्थिति सुधारने के बजाय और बिगड़ती गई। सन् 1965 में एक बार फिर पाकिस्तान से युद्ध करना पड़ा। युद्ध के बाद फिर सूखा पड़ गया और देश आर्थिक मंदी में चला गया। इसी समय अचानक तेल की कीमतों में वृद्धि हो गई, भारतीय बाजारों पर जिसका बहुत विपरीत असर पड़ा।

भारत की शुरुआती सरकारों ने देश की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए प्रयास किये, ग्रामीण क्षेत्रों में भी थोड़े-बहुत परिवर्तन देखने को मिलते हैं। लोगों के घरों में बिजली पहुँची, उनके रहन-सहन, खाने-पीने में परिवर्तन दिखने लगा। देश में स्वास्थ्य सेवाओं में थोड़ा सुधार हुआ, उपचार के अभाव में होने वाली मृत्यु की संख्या में थोड़ी कमी आई। लेकिन यह पर्याप्त नहीं था। अच्छी शिक्षा, रोजगार और बेहतर जीवन की चाह में लोग बड़ी संख्या में गाँवों से शहरों की ओर पलायन करने लगे।

स्वातंत्र्योत्तर भारत की आर्थिक पृष्ठभूमि के अध्ययन से यह पता चलता है कि सत्ता में आई तमाम सरकारों ने देश की आर्थिक स्थिति सुधारने के भरसक प्रयास किये। परिणामस्वरूप, देश की आर्थिक स्थिति में थोड़े परिवर्तन हुए भी, लेकिन ये परिवर्तन भारत की विस्तृत जनसंख्या के लिए पर्याप्त नहीं थे। सरकार

की योजनाओं का लाभ आम जनता तक नहीं पहुँच रहा था। इसलिए स्वतंत्रता के बाद भी लोगों की स्थिति में कोई खास परिवर्तन देखने को नहीं मिल रहा था। जनता को लगने लगा कि उन्होंने स्वतंत्रता से पहले जो सपने संजोए थे, सरकार उन पर ईमानदारी से काम नहीं कर रही है। परिणामस्वरूप देश से लोगों की उम्मीदें और सपने धीरे-धीरे टूटने लगे। तत्कालीन परिस्थितियों के कारण जनता का सरकार और उसकी नीतियों से मोहभंग होने लगा था।

स्वतंत्रता के बाद की सरकारों ने कृषि के तकनीकी विकास को महत्व दिया लेकिन संस्थागत कमियों के कारण योजनाएँ सफल नहीं हो सकीं। विदेशी निवेश को लेकर सरकार संकोच की स्थिति में रही।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि स्वातंत्र्योत्तर भारत की आर्थिक पृष्ठभूमि बेहद अस्थिर रही। देश ने निश्चित रूप से आर्थिक विकास किया, लेकिन आर्थिक विकास की इस दौड़ में इस देश की अधिकांश जनता अपनी उम्मीदों के विपरीत पहले की तरह बदहाली में ही जीती रही।

1.2 स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीतिक पृष्ठभूमि

सन् 1857 की क्रांति के बाद भारत में राजनीतिक गतिविधियाँ तेज हो गईं। सन् 1885 में कांग्रेस की स्थापना होती है। कांग्रेस की स्थापना के बाद भारत में राजनैतिक बहसों का माहौल मजबूत होता है। देश में लगातार स्वदेशी शासन और आजादी के लिए राष्ट्रीय आंदोलन तेज होते हैं। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा कि कांग्रेस शुरू में एक राजनीतिक संगठन या पार्टी नहीं थी बल्कि देश को एक साथ लाने का वार्षिक मंच था। इसके बावजूद कांग्रेस में आपसी मतभेद हमेशा चलते रहे। इसकी चरम परिणति सन् 1907 में कांग्रेस के नरमदल और गरमदल के नेताओं के विभाजन के रूप में देखने को मिलती है। देश की राजनीतिक गतिविधियों पर अंग्रेजों के 'फूट डालो और राज करो' की नीति से गहरा धक्का लगता है। इस नीति के तहत वे भारत में मुसलमान और हिंदुओं को बांटने का काम करते हैं, मुस्लिम लीग एवं अन्य धार्मिक संगठनों की स्थापना को इसके परिणाम के रूप में भी देखा जा सकता है। इन सारी घटनाओं के बाद भी भारत में राष्ट्रीय आंदोलन और आजादी की आवाज कमजोर नहीं पड़ी। भारत में गाँधी के आगमन पर राजनीतिक गतिविधियों में नई ऊर्जा का संचार होता है। सन् 1920 के बाद भारत में कम्युनिस्ट विचारधारा पनपने लगती है। भारत में कम्युनिस्ट विचारधारा के अनेक संगठनों की स्थापना होती है। दूसरी तरफ, सन् 1922 के बाद से क्रांतिकारी आतंकवाद की विचारधारा भी जोर पकड़ती है। क्रांतिकारी आतंकवाद की विचारधारा से सबसे अधिक युवा प्रभावित हुए। इसके बाद भारत की राजनीति में युवाओं के द्वारा युवा संगठनों की स्थापना लगातार देखने को मिलती है। इन युवा संगठनों ने भारत को भगत सिंह, सुभाष चंद्र बोस और जवाहर लाल नेहरू आदि जैसे युवा दिए, जिन्होंने आजादी की उम्मीदों को जिंदा

रखा। सन् 1927 में भारत की राजनीतिक परिस्थितियों में व्यापक परिवर्तन देखने को मिलते हैं। पूरे देश में राष्ट्रीय भावना के साथ साइमन कमीशन का विरोध होता है। किसान अपनी मांगों को लेकर आंदोलन करते हैं। सन् 1931 में किसानों की मांगों को ध्यान में रखते हुए गाँधी सविनय अवज्ञा आंदोलन करते हैं और दांडी में नमक कानून तोड़ते हैं। दूसरी ओर इन सारी राजनीतिक गतिविधियों के साथ-साथ भारत में साम्प्रदायिक समस्याएँ बढ़ रही थी, जिसका भारत की एकता खंडित करने में महत्वपूर्ण योगदान रहा। इसने आजादी की लड़ाई को भी धीमा किया। सांप्रदायिकता की आग के कारण भारत और पाकिस्तान के विभाजन की चर्चाओं ने जोर पकड़ा। सन् 1935-1945 के बीच भारत की राजनीतिक परिस्थितियाँ बहुत असामान्य रही। सन् 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध शुरू होने के बाद भारत में आजादी की लड़ाई और तेज हो गई। सन् 1942 में 'भारत छोड़ो आंदोलन' ने विद्रोह को हवा देने का काम किया। परिस्थिति में बदलाव होता देख अंग्रेजों की चापलूसी करने वाले रजवाड़ों की जनता ने भी विद्रोह शुरू कर दिया। भारत में बढ़ते विद्रोह ने अंग्रेजों के हाथ-पांव फुला दिए। परिणामस्वरूप आजादी की मांग तेज हो गई। मुस्लिम लीग ने जिन्ना के नेतृत्व में पाकिस्तान की मांग को फिर से उठाना शुरू कर दिया। भारत विभाजन के मुद्दे को लेकर गाँधी और जिन्ना के बीच कई बार असफल बातचीत हुई। गाँधी किसी हाल में विभाजन नहीं चाहते थे। उन्होंने माउंटबेटन के सामने जिन्ना को प्रधानमंत्री बनाने की बात की थी, जिसे कांग्रेस ने निरा पागलपन कहा था। आखिरकार 15 अगस्त 1947 ई. को भारत का विभाजन हो गया और उसके साथ-साथ दोनों देशों में व्यापक स्तर पर जान-माल की हानि हुई जिसे कोई नेता नहीं रोक सके।

देश के विभाजन के बाद, आजाद भारत और पाकिस्तान में व्यापक स्तर पर सांप्रदायिक दंगे होने लगे। मारकाट, लूट-चोरी, हत्या और बलात्कार जैसी दिल दहला देने वाली घटनाएँ हो रही थी। देश में चारों तरफ हाहाकार मचा हुआ था। सत्य और अहिंसा के पुजारी महात्मा गाँधी की 30 जनवरी 1948 ई. को नाथूराम गोडसे नाम के असामाजिक तत्व द्वारा गोली मारकर हत्या कर दी जाती है। इस घटना ने पूरे देश को झकझोर कर रख दिया। आजादी मिलने के साथ-साथ देश के लाखों लोगों की हत्या ने देश के लोगों की स्मृति पर एक गहरा दर्द छोड़ दिया।

स्वतंत्रता के समय भारत में प्रमुख रूप से दो राजनीतिक दल कार्य कर रहे थे- एक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और दूसरी भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी। स्वतंत्रता के बाद कई राजनीतिक पार्टियाँ अस्तित्व में आने लगी जैसे- रामराज्य परिषद, द्रविण मुनेत्र कषगम पार्टी, किसान मजदूर-प्रजापार्टी, भारतीय जनसंघ, समाजवादी क्रांतिकारी दल, झारखंड पार्टी, मुस्लिम लीग, लोकसेवा संघ और तमिलनाडु टावर्स पार्टी आदि। इस प्रकार प्रथम आम चुनावों से पहले राजनीतिक दलों की भरमार हो गई।

26 जनवरी 1950 ई. को संविधान लागू होने के बाद, भारत में प्रथम आम चुनाव हुए। स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू, राष्ट्रपति डॉक्टर राजेंद्र प्रसाद तथा गृहमंत्री सरदार वल्लभ

भाई पटेल बने। उजड़े हुए आशियाने को देश की प्रथम सरकार ने फिर से संवारने का काम धीरे-धीरे शुरू किया। नेहरू ने देश की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए सन् 1951 में योजना आयोग का गठन किया क्योंकि नेहरू ने देश की दशा दिशा सुधारने के लिए कमर कस ली थी। इसके विषय में इतिहासकार बिपिन चंद्र लिखते हैं कि, “नेहरू ने भारतीय राष्ट्र को सुदृढ़ किया, नागरिक अधिकार और संसदीय जनवाद पर आधारित राजनीतिक व्यवस्था की नींव रखी; धर्मनिरपेक्षता, सामाजिक न्याय और सामाजिक उग्र सुधारवाद वर्ग को राष्ट्रीय राजनीतिक प्रणाली मूल आधार बनाया; गुटनिरपेक्षता, स्वतंत्रता, अंतरराष्ट्रीय मामलों में आत्मसम्मान, भारत के आंतरिक एवं बाहरी हितों को प्रोत्साहन, विश्व शांति और उपनिवेशवाद-विरोध को अपनी विदेश नीति का आधार बनाया; नियोजन आरंभ किया, शक्तिशाली सार्वजनिक क्षेत्रों की आधारशिला रखी, भारत को आत्मनिर्भर स्वतंत्र अर्थव्यवस्था के रास्ते पर खड़ा; और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को आगे बढ़ाया। उन्होंने जनता को एक समाजवादी आदर्श प्रदान किया तथा समता, समानता और समान अवसर पर आधारित एक व्यापक समाजवादी समाज के लक्ष्य को लोकप्रिय बनाया।... सत्ता की राजनीति के कुशल खिलाड़ी होते हुए भी अपने राजनीतिक व्यवहार में हमेशा सज्जनता, उदारता और सौम्यता से कार्य किया।”¹ नेहरू सरकार ने देश की परिस्थितियों में परिवर्तन अवश्य किया लेकिन उनकी सरकार कई मोर्चों पर असफल भी रही। विपिन चंद्र आगे लिखते हैं, “इसमें कोई शक नहीं है कि असफलताएँ भी अनेक थीं: अपर्याप्त भूमि सुधार, सरासर दोषपूर्ण और अपर्याप्त शिक्षा-व्यवस्था, व्यापक गरीबी और आर्थिक असमानता, लिंग और जाति आधारित शोषण, अकार्यकुशल प्रशासन, बढ़ता भ्रष्टाचार और कांग्रेस पार्टी का पूँजीवादी मानसिकता का विकास। गरीब किसान, खेतिहार मजदूर और शहरी गरीब हालांकि जागृत किए गए, परंतु वे तब भी दिन-प्रतिदिन प्रभावशाली सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक सत्ता से वंचित रहे और उनका आत्मनिर्भर राजनीतिक क्रिया-कलाप दूर की चीज बना रहा।”² इतिहासकार विपिन चंद्र के कुछ वक्तव्यों से सहमत नहीं हो सकते हैं क्योंकि व्यापक गरीबी और विशाल आर्थिक असमानता, लिंग और जाति आधारित शोषण ये भारतीय समाज में हजारों वर्षों से मौजूद रहे हैं और समाज के भीतरी सतह तक पहुँच चुके हैं। मुझे लगता है कि ऐसी गहरी गैरबराबरी और शोषण का चक्र इतनी आसानी से खत्म नहीं हो सकता। इसके लिए लंबे संघर्ष, ईमानदार प्रशासन और न्यायप्रिय राजनीतिक प्रतिनिधित्व की आवश्यकता है।

देश का राजनीतिक प्रतिनिधित्व करने वाले लोग वैश्विक कूटनीति की गहरी परतों को अभी तक समझ नहीं पाए थे। देश अपनी समस्याओं को हल करने में लगा हुआ था। उधर 'हिंदी-चीनी, भाई-भाई' का नारा लगा रहे पड़ोसी देश चीन ने अचानक युद्ध छेड़ दिया। इस युद्ध के बाद भारत ने अपनी विदेश नीतियों पर विचार करना शुरू किया, क्योंकि जिस पर भाई की तरह विश्वास किया। उसने ही पीठ पीछे छुरा घोपने

¹ प्रो. विपिन चंद्र, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, आजादी के बाद भारत, पृ.सं.- 248-249

² प्रो. विपिन चंद्र, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, आजादी के बाद भारत, पृ.सं.- 149

का काम किया था। इस घटना के बाद नेहरू की आदर्शवादी विदेश नीति को धक्का लगा। और साथ ही भारत चीन के बीच हुआ पंचशील समझौता धरा का धरा रह गया। युद्ध में भारत की हार का कारण हमारी शांति और अहिंसा की नीति भी रही। चीन से हुए युद्ध की दुखद घटनाओं को अभी भारतीय जनता भूली भी नहीं थी कि सन् 1965 में दूसरा पड़ोसी देश पाकिस्तान युद्ध छेड़ देता है। इस बार भारत ने पुरानी गलतियों से सबक लेते हुए पाकिस्तान को ईंट का जवाब पत्थर से दिया। युद्ध के बाद भारत पाकिस्तान के बीच ताशकंद समझौता होता है, जिसमें भारत युद्ध में जीते हुए पाकिस्तान के क्षेत्र को वापस कर देता है। समझौते में भारत की तरफ से बहुत ज्यादा उदारवादी रवैया अपनाया जाता है जिससे भारत के जनमानस में सरकार को लेकर अच्छी राय नहीं बनती है। ताशकंद समझौते के बाद हृदय गति रुक जाने के कारण प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री की मृत्यु हो जाती है जो भारत की राजनीतिक दृष्टिकोण से बहुत बड़ी क्षति थी। इन दोनों युद्धों के बाद भारत के विकास की गति रुक जाती है। इसी दौरान पड़ने वाले अकालों के कारण परिस्थितियाँ और भयावह हो जाती हैं। खाद्य पदार्थों की कीमतें आसमान छूने लगती हैं। दूसरी तरफ लाल बहादुर शास्त्री की मृत्यु के बाद भारत की राजनीति में उथल-पुथल मच जाती है। देश के प्रधानमंत्री के पद को लेकर कांग्रेस में मतभेद होने लगता है। एक बार फिर से मोरारजी देसाई ने प्रधानमंत्री पद के लिए दावेदारी पेश की। कांग्रेस पार्टी ने नेहरू की बेटी को तवज्जो दी। इसके बाद भी पार्टी में मतभेद खत्म नहीं हुआ। इन राजनीतिक गतिविधियों का असर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से भारत की आर्थिक विकास पर पड़ रहा था। इस विषय में इतिहासकार बिपिन चंद्र लिखते हैं, “इस दौर की राजनीतिक घटनाओं का आर्थिक नीतियों पर गहरा प्रभाव पड़ा। सन् 1967 के आम चुनावों में कांग्रेस को केंद्र में और राज्य में बड़ा धक्का लगा। प्रधानमंत्री ने जवाब में बड़ी मूलगामी नीति का प्रदर्शन किया। इससे कांग्रेस में मतभेद पैदा हो गए, और आखिरकार नम्बर सन् 1969 में पार्टी में फूट पड़ गई। फूट के बाद इंदिरा गाँधी अपनी सरकार कम्युनिस्ट पार्टियों और कुछ क्षेत्रीय पार्टियों के समर्थन से ही बचा सकी। इससे उनकी नीतियों में मूलगामी वामपंथी झुकाव और भी तेज हुआ। दिसंबर सन् 1970 में उन्होंने आम चुनावों की घोषणा कर दी। ‘गरीबी हटाओ’ और ‘मूलगामी समाजवादी नीतियों के वादों’ पर चुनाव लड़ते हुए मार्च सन् 1971 में भारी विजय प्राप्त हुई।”¹ इंदिरा गाँधी को सन् 1971 के आम चुनावों में मिली जीत के बाद एक बार फिर से पाकिस्तान, पूर्वी पाकिस्तान में सैन्य कार्यवाही करनी शुरू कर देता है। पाकिस्तानी सेना के अमानवीय रवैये के कारण बड़ी संख्या में शरणार्थियों का भारत में आगमन शुरू होता है। बिगड़ती परिस्थितियों ने भारत को एक बार फिर से युद्ध की आग में झोंक दिया। इंदिरा गाँधी ने भारत की सेना को युद्ध के लिए तैयार रहने को कहा और भारतीय सेना ने समय की नजाकत को समझते हुए पाकिस्तान पर आक्रमण कर दिया। लम्बी कार्यवाही के बाद आखिरकार पूर्वी पाकिस्तान आजाद होकर, स्वतंत्र देश बांग्लादेश बना। युद्ध के बाद भारत-पाकिस्तान के बीच शिमला में एक समझौता हुआ जिसे शिमला समझौते के नाम से जाना गया। इसके

¹ प्रो. विपिन चंद्र, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, आजादी के बाद भारत, पृ.सं.- 467

अनुसार युद्ध के दौरान भारत की सेना ने पाकिस्तान का जो क्षेत्र कब्जाया था, उसे वापिस कर दिया। यह समझौता भारत की प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी और पाकिस्तान के प्रधानमंत्री जुल्फिकार अली भुट्टो के बीच हुआ था।

स्वतंत्रता के बाद सन् 1951 में हुए प्रथम आम चुनाव में कांग्रेस ने बड़ी जीत दर्ज की क्योंकि स्वतंत्रता के पहले से ही कांग्रेस सबसे बड़ी पार्टी थी। कांग्रेस ने अपनी पुरानी साख पर ही चुनाव लड़ा था। कांग्रेस की जीत पहले से ही निश्चित थी। भारत में विपक्षी दल बन गए थे लेकिन अभी इनकी छवि कांग्रेस जैसी बन नहीं पाई थी। कांग्रेस के बाद दूसरी बड़ी पार्टी सोशलिस्ट पार्टी थी। सोशलिस्ट पार्टी के पास जयप्रकाश नारायण जैसे बड़े राजनेता थे जो लोकप्रियता के मामले में नेहरू से किसी भी प्रकार से कमतर नहीं थे। जयप्रकाश नारायण के अतिरिक्त सोशलिस्ट पार्टी के पास डॉक्टर राम मनोहर लोहिया, आचार्य नरेंद्र देव, अच्युत पटवर्धन और अशोक मेहता जैसे बड़े चेहरे मौजूद थे। वैसे सोशलिस्ट पार्टी स्वतंत्रता पूर्व कांग्रेस के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम करती थी। स्वतंत्रता से ठीक पहले सोशलिस्ट पार्टी ने कांग्रेस से कुछ मतभेद के कारण अपने आप को अलग कर लिया। परिणामस्वरूप सोशलिस्ट पार्टी ने संविधान सभा का हिस्सा बनने से भी इनकार कर दिया था। सोशलिस्ट पार्टी के नेता यह मान चुके थे कि कांग्रेस की प्रासंगिकता उनके साथ होने से ही है, लेकिन सन् 1951 के आम चुनावों में कांग्रेस को मिली जीत ने उनका यह भ्रम तोड़ दिया। सोशलिस्ट पार्टी को अपने गढ़ों में ही भारी हार का सामना करना पड़ा।

कांग्रेस के अंदर भी वामपंथ और दक्षिणपंथ को लेकर मतभेद चल रहे थे। कांग्रेस का झुकाव धीरे-धीरे वामपंथ की ओर जा रहा था। उधर दूसरी तरफ जे. बी. कृपलानी ने सन् 1951 में किसान मजदूर प्रजा पार्टी की स्थापना कर ली थी। यह पार्टी गाँधी के सिद्धांतों पर चलती थी। लेकिन आम चुनाव में पार्टी को भारी हार का सामना करना पड़ा। हार के बाद सोशलिस्ट और किसान मजदूर प्रजा पार्टी दोनों ने एक दूसरे में विलय होने का फैसला कर लिया जिसके बाद कांग्रेस को मजबूत विपक्ष का सामना करने की चुनौती मिली। दोनों पार्टियों में इस बात को लेकर मतभेद होने लगा कि भारतीय राजनीति में एक विपक्ष के रूप में पार्टी की क्या भूमिका रही है। पार्टी की विपक्ष के रूप में हमेशा नगण्य भूमिका रही। जिसका असर आने वाले आम चुनावों में भी स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। पार्टी अपने आखिरी दिन पूरे कर रही थी। जिसके विषय में इतिहासकार बिपिन चंद्र लिखते हैं, “इन घटनाओं का प्रतिबिंब प्रथम आम चुनावों में पी.एस.पी. के धीमे ह्रास से स्पष्ट होता रहा। सन् 1957 में पार्टी ने लोक सभा की 19 सीट और कुल मतों का 10.4 प्रतिशत प्राप्त किया। जबकि सन् 1962 में 12 सीट और 6.8 प्रतिशत मत, सन् 1967 में 13 सीट और 3.1 मत प्राप्त किए। अंततः सन् 1971 में पार्टी की करीब-करीब मृत्यु ही हो गई जब उसने मात्र दो सीटों और 1 प्रतिशत मत प्राप्त किया। पार्टी के बचे हुए लोगों ने सोशलिस्ट पार्टी के साथ मिलकर संयुक्त सोशलिस्ट

पार्टी की आधारशिला रखी।”¹ सोशलिस्टों के पतन का मुख्य कारण कांग्रेस से अलग अपनी छवि नहीं बना पाना भी रहा, क्योंकि जो मुद्दे इनके थे उन्हें कांग्रेस ने भी अपना लिया था। इसके विषय में बिपिन चंद्र आगे लिखते हैं, “सोशलिस्टों की असफलता का एक कारण कांग्रेस से अलग विशिष्ट पहचान स्थापित न कर पाना भी रहा। खासकर जब कांग्रेस ने आवडी अधिवेशन में अपने को समाजवादी निर्माण के लिए प्रतिबद्ध करने की घोषणा की, तो यह और मुश्किल हो गया। दरअसल यह अपनी अर्थपूर्ण भूमिका मात्र कांग्रेस के अंग के रूप में अदा कर सकते थे क्योंकि कांग्रेस के साथ ही, ये अपने कई आदर्शों के साझेदार थे। उदाहरण के लिए राष्ट्रवाद, धर्मनिरपेक्षता, संसदीय लोकतंत्र पर आधारित राजनीति, नागरिक अधिकार और सामाजिक परिवर्तन आदि के प्रति समर्पण- दोनों दलों का समान ही था।”²

कम्युनिस्ट पार्टी उभरकर सामने आई। भाकपा ने स्वतंत्रता से पहले सोशलिस्ट पार्टी की तरह कांग्रेस के अंग के रूप में ही काम किया था। यह पार्टी बुद्धिजीवियों, विद्यार्थियों, वंचित-शोषित, पिछड़े और किसानों आदि के बीच बहुत ज्यादा लोकप्रिय थी। पार्टी ने कुछ आपसी मतभेदों के कारण राष्ट्रीय आंदोलनों में बढ़-चढ़कर भाग नहीं लिया था। पार्टी ने भारत की आजादी को झूठी कहा था। कम्युनिस्ट मानते थे कि नेहरू सरकार अंग्रेजों के चापलूसों की सरकार है। पार्टी के पास पी. सी. जोशी, बी.टी. रणदिवे जैसे बड़े नाम थे। भाकपा ने पहले आम चुनावों में अपनी लोकप्रियता की झलक दिखाई। पहले लोकसभा चुनाव में पार्टी नेता 68 सीटों पर चुनाव लड़ा और 23 सीटों पर विजय का परचम लहराया। और चुनाव के बाद विपक्ष की सबसे बड़ी पार्टी के रूप उभरकर सामने आई। इस प्रकार भाकपा आने वाले चुनावों में बेहतर करती रही। सन् 1956 और सन् 1961 के चुनाव में पार्टी को क्रमशः 27 (8.92 प्रतिशत मत) और 29 (9.94 प्रतिशत मत) सीटें प्राप्त हुई। भाकपा ने केरल, आंध्र प्रदेश और पश्चिम बंगाल विधानसभा चुनाव में लगातार अच्छा मत प्राप्त किया। केरल में तो बहुमत प्राप्त किया। भाकपा भारत की राजनीति में लगातार अच्छा प्रदर्शन कर रही थी, लेकिन पार्टी के कार्यकर्ताओं के बीच मतभेद बढ़ने लगा और परिणामस्वरूप पार्टी सन् 1964 में दो हिस्सों में बंट गई। बिपिन चंद्र लिखते हैं, “अंततः सन् 1964 में भाकपा दो हिस्सों में बंट गई: एक भाग पहले ‘दक्षिणपंथी’ ‘मध्यमार्गी’ रुझान का प्रतिनिधित्व करती थी जो भाकपा के नाम से प्रचलित रही और दूसरा भाग पहले के ‘वामपंथी’ रुझान का प्रतिनिधित्व करती थी जो भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) या भाकपा के नाम से कुछ समय बाद जानी गई। व्यक्तिगत और गुप्त संबंधी मतभेदों के अतिरिक्त यह विभाजन मूलतः सैद्धांतिक आधार और स्वरूप के अनुसार हुआ।”³ आगे भी समय के साथ-साथ दोनों गुटों में से कई कम्युनिस्ट पार्टियाँ अस्तित्व में आईं। जब लाल बहादुर शास्त्री की मृत्यु के बाद

¹ प्रो. बिपिन चंद्र, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, आजादी के बाद भारत, पृ.सं.- 273-274

² प्रो. बिपिन चंद्र, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, आजादी के बाद भारत, पृ.सं.- 274

³ प्रो. बिपिन चंद्र, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, आजादी के बाद भारत, पृ.सं.- 278

कांग्रेस में प्रधानमंत्री के पद की उम्मीदवार को लेकर मतभेद हुआ था तो सन् 1967 के आम चुनावों में कांग्रेस की लड़खड़ाती नैया को कम्युनिस्ट पार्टियों ने पार लगाने में पूरा सहयोग दिया था।

स्वतंत्रता के बाद सन् 1951 में डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी की अध्यक्षता में भारतीय जनसंघ नाम की एक पार्टी का उदय हुआ। यह मूलतः एक सांप्रदायिक पार्टी थी जिसकी अपनी कोई स्पष्ट विचारधारा नहीं थी। समय को देखते हुए अपनी नीतियों में कभी भी परिवर्तन कर लेती थी। इसके आधार का काम आर. एस. एस. करता था क्योंकि गाँधी की हत्या के बाद आर.एस.एस. को भारत में प्रतिबंधित कर दिया गया था। आर.एस.एस. की तरह पार्टी के निशाने पर हमेशा मुस्लिम समाज रहता था, लेकिन धर्मनिरपेक्ष जनवादी संविधान होने के कारण ये कभी खुलकर विरोध नहीं कर पाई। दूसरी तरफ कांग्रेस पर हमेशा मुस्लिम तुष्टिकरण का आरोप लगाता रहा। जनसंघ अपने आप को गैर सांप्रदायिक घोषित करती रही, और औपचारिक तौर पर पार्टी में मुस्लिम चेहरों को रखती रही। पार्टी ने पहले पांच आम चुनावों में अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रखा। दूसरी पार्टियों के साथ मिलकर चुनाव लड़ती रही लेकिन उसके बाद जैसे-जैसे हिंदूवादी ताकतें मजबूत होती गयीं। पार्टी ने अपना असली चेहरा दिखाना शुरू कर दिया। सन् 1977 में भारतीय जनसंघ का विलय जनता पार्टी में हो गया।

सन् 1959 में सी. रामगोपालाचारी, मीनू मसानी, एन. जी. रंगा और के. एम. मुंशी आदि ने अखिल भारतीय पार्टी की स्थापना की। पहले भी यह पार्टी अपने स्तर पर चुनावों में हिस्सा लेती रही थी। यह पार्टी पूरी तरह धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत को मानने वाली थी, जिसके कारण भारतीय जनसंघ के साथ गठबंधन में मुश्किल आती रही। यह नेहरू के गुट निरपेक्षता की विदेश नीति का हमेशा विरोध करती रही। पार्टी सन् 1962 के आम चुनावों में 18 सीटों पर जीत दर्ज करने में कामयाब रही लेकिन सन् 1967 में सी. रामगोपालाचारी की मृत्यु के बाद से पार्टी का लगातार पतन होता गया। सन् 1971 के आम चुनावों में अखिल भारतीय पार्टी 8 सीटों पर ही सिमट गई।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि आज़ादी के बाद भारत की राजनीति में कांग्रेस का ही आधिपत्य रहा। कई विपक्षी राजनीतिक विचारों ने स्वर उठाना शुरू किया किन्तु कमजोर विपक्ष के कारण कांग्रेस एकछत्र राज करती रही। उसके बावजूद भारत को प्रगति के पथ पर चलाने में असफल सिद्ध हुई।

सन् 1971 के चुनाव में इंदिरा गाँधी के नेतृत्व में कांग्रेस दो-तिहाई सीटों से सत्ता में आई। इंदिरा गाँधी ने अगले वर्ष उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु, केरल और उड़ीसा आदि राज्यों को छोड़कर देश के अन्य सभी राज्यों में विधानसभा के चुनाव करवाए और सभी राज्यों में सरकार बनाई। कांग्रेस के सितारे चमचमा रहे थे लेकिन आने वाले वर्षों में हवा बदलनी शुरू होती है। 1971 के चुनाव से पहले 'गरीबी हटाओ' के नारे की असफलता, बढ़ती बेरोजगारी, समाज में जाति-धर्म का बढ़ता महत्व, ग्रामीण स्तर पर बढ़ता शोषण,

प्रशासनिक कार्यालयों में व्याप्त भ्रष्टाचार, शिक्षा का गिरता स्तर, बढ़ती आर्थिक विषमताएँ, कृषि समस्याएँ तथा आत्मनिर्भरता आदि के क्षेत्र में सरकार बेहद निराशाजनक प्रदर्शन कर रही थी। जनता कांग्रेस के शासन से अंदर ही अंदर ऊब चुकी थी। भारत में बढ़ती बेरोजगारी, बढ़ती महंगाई और खाद्य पदार्थों की कमी आदि ने जनता को कांग्रेस के प्रति क्षोभ से भर दिया। ये कांग्रेस के प्रति जनता के मोहभंग के तात्कालिक कारण सिद्ध हुए।

कांग्रेस के शासन में उपजी सामाजिक परिस्थितियों से परेशान होकर जनता, विद्यार्थी और बुद्धिजीवी वर्ग ने शहरों और महानगरों के सड़कों पर उतरना शुरू कर दिया। छात्र आंदोलन की शुरुआत गुजरात से होती है। यहाँ छात्रों का आक्रोश फूटकर सड़कों पर दिखाई देने लगता है। साथ ही मौके का फायदा उठाने के इरादे से आंदोलनों में विपक्षी दल भी शामिल होने लगते हैं। पूरे राज्य में जगह-जगह अराजकता फैल जाती है। शहरों में लूटपाट, हड़ताल, आगजनी की घटनाएँ महीने से ज्यादा होती रही जिसके जवाब में पुलिस द्वारा लाठीचार्ज, गोलाबारी, आंसू गैस के गोले और बड़ी संख्या में गिरफ्तारी की गयी। मामले को बढ़ता देख इंदिरा गाँधी ने विधानसभा को भंग कर के राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करवा दिया।

गुजरात के आंदोलन की सफलता को देखते हुए बिहार राज्य में बड़ी संख्या में छात्र आंदोलन शुरू हो गए। छात्रों ने विधानसभा का घेराव किया। पुलिस कार्यवाही में 70 लोगों की जान गई। घटना के तुरंत बाद छात्रों के साथ विपक्षी नेताओं की फ़ौज आंदोलन में शामिल हो गयी। आंदोलन जल्द ही व्यापक स्तर पर फैल गया क्योंकि छात्र आंदोलन में राजनीति से संन्यास ले चुके बिहार के जनवादी नेता जयप्रकाश नारायण शामिल हो चुके थे। इस छात्र आंदोलन ने धीरे-धीरे जेपी आंदोलन का नाम ले लिया। जयप्रकाश नारायण ने बिहार से निकलकर पूरे उत्तर भारत में आंदोलन को फैलाना शुरू कर दिया। जेपी आंदोलन जल्द ही व्यापक स्तर पर छात्रों, वंचित, शोषित-पीड़ित, पिछड़े तथा बुद्धिजीवी वर्ग आदि के बीच सक्रिय हो गया। आंदोलन की लपटें दिल्ली तक पहुँचने लगी। दूसरी तरफ इंदिरा गाँधी के खिलाफ राज नारायण द्वारा दायर याचिका का फैसला सुनाते हुए अदालत ने उन्हें भ्रष्ट आचरण में लिप्त होने का दोषी पाया और अगले छः वर्षों तक चुनाव न लड़ने की सजा सुनाई। इसके बाद विपक्षी पार्टी के नेता लगातार इंदिरा गाँधी पर लगातार पद त्यागने का दबाव बनाने लगे। 25 जून को विपक्षी नेताओं ने रैली करके घोषणा की कि इंदिरा गाँधी के त्यागपत्र के लिए 29 जून को राष्ट्रव्यापी सविनय अवज्ञा आंदोलन किया जाएगा और प्रधानमंत्री के आवास का घेराव किया जाएगा। जयप्रकाश नारायण ने जनता और सरकारी कर्मचारियों से सरकारी काम काज न करने की अपील की। इंदिरा गाँधी ने बिगड़ती स्थिति को देखते हुए, अगले दिन 26 जून सन् 1975 को संविधान की धारा 352 के तहत आपातकाल की घोषणा कर दी। इसके साथ ही भारत के राजनितिक इतिहास में एक दुर्भाग्यपूर्ण अध्याय जुड़ गया। आपातकाल की घोषणा के बाद आंदोलन में सम्मिलित सभी छोटे-बड़े नेताओं, छात्र नेताओं तथा आंदोलन में किसी भी तरह जुड़े व्यक्तियों की

गिरफ्तारी की गयी। गिरफ्तार किए गये नेताओं में जयप्रकाश नारायण, अटल बिहारी वाजपेयी, मोरारजी देसाई और चंद्रशेखर आदि बड़े नाम थे। गिरफ्तार किये गये लोगों को धीरे-धीरे छोड़ा गया। देश में आपातकाल की अवधि उन्नीस महीनों तक रही। जनता आपातकाल की लंबी अवधि से परेशान हो चुकी थी। आपातकाल के बाद इंदिरा गाँधी ने मार्च सन् 1977 में लोकसभा चुनाव कराने की घोषणा कर दी। कांग्रेस को चुनाव में हार का सामना करना पड़ा। इस प्रकार आपातकाल की घटना भारतीय राजनीति के लिए बदलाव के क्षण लेकर आई क्योंकि गिरता आर्थिक विकास, कृषि उत्पादन में कमी, बढ़ते भ्रष्टाचार, कल्याणकारी कार्यों में कमी, पुलिस और अफसरशाही का बढ़ता आतंक और भ्रष्ट अधिकारियों के द्वारा नागरिक अधिकारों का हनन आदि समस्याओं ने जनता का सरकार के प्रति मोह भंग करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

कहा जा सकता है कि स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीतिक परिस्थियाँ संतोषजनक नहीं रही। भारत की तत्कालीन सरकारें स्वतंत्रता से पहले और बाद में किए गए वादों पर खरी नहीं उतरी। कुछ योजनाएँ सरकार द्वारा लागू की गईं तो भ्रष्टाचार के कारण उनका लाभ आम जनता तक नहीं पहुँचा। ये योजनाएँ मंजिल पर पहुँचने से पहले दम तोड़ देती थीं। परिणामस्वरूप भारत की जनता का तत्कालीन सरकार से मोहभंग हो गया। राजनीतिक पार्टियाँ देशहित को त्याग कर अपने-अपने हितों को साधने के चक्कर में एक-दूसरे का पाँव खींचती रही। स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीति में विपक्ष भी अपनी भूमिका निभाने में बिल्कुल असफल दिखता है।

1.3 स्वातंत्र्योत्तर भारत की सामाजिक पृष्ठभूमि

भारतीय समाजों में जितनी विविधता है, वैसी विविधता शायद ही किसी अन्य देश में देखने को मिलती हो। यह विविधता भारतीय समाज में जीवन के प्रत्येक स्तर पर दिखाई देती है जैसे, संस्कृति, धर्म, भाषा, वेश-भूषा, रहन-सहन, खान-पान, गाँव-शहर तथा रीति-रिवाज आदि। इस विविधता के कारण ही ‘अनेकता में एकता’ और ‘चारकोस पर पानी बदले, बारहकोस पर वानी’ जैसी लोकोक्तियाँ सुनने को मिलती हैं। भारत के विभिन्न समाजों को देखकर ऐसा लगता है जैसे तरह-तरह के फूलों का कोई सुन्दर गुलदस्ता हो।

भारत में विभिन्न समुदायों के लोग एक साथ मिल-जुल कर रहते हैं। सभी समुदायों ने आजादी की लड़ाई को एक साथ लड़ा। आजादी के कुछ वर्षों पहले तक सब ठीक-ठाक चल रहा था लेकिन कुछ मतभेदों के कारण हिंदू-मुस्लिम समुदायों में दरार आ गई। इस दरार को बड़ा करने में दोनों समुदायों के मुठ्ठीभर लोगों ने बराबर का योगदान दिया जिसके परिणामस्वरूप देश का विभाजन हुआ। देश के विभाजन ने दोनों समुदायों के बीच संदेह, घृणा, ईर्ष्या और द्वेष आदि का भाव भर दिया जिसके कारण दोनों के बीच

विश्वास की डोरी पतली होती रही है। आलम यह है कि आजादी के सात दशक बाद भी एक-दूसरे के बीच मधुर संबंध नहीं बन पाए हैं। स्वतंत्रता के बाद सांप्रदायिक और जातिगत भावनाओं के कम होने की उम्मीद लोगों ने लगाई थी। भारत के संविधान में सभी भेदभाव को समाप्त करने के का प्रावधान था। इस विषय में इतिहासकार विपिन चंद्र लिखते हैं, “आजादी के बाद जातीय अन्याय और असमानता दूर करने की दिशा में बड़ी कोशिशें की गई। संविधान ने धर्म, जाति, लिंग, भाषा, वर्ण इत्यादि के भेदभाव से परे सभी नागरिकों को राजनीतिक अधिकार प्रदान किए। इनमें जनजातियाँ भी थीं। साथ ही धारा 17 में विशेष तौर पर कहा गया: ‘अस्पृश्यता समाप्त कर दी गई है और इसके किसी भी रूप में अमल पे पाबंदी है। छुआछूत से संबंधित कोई भी भेदभाव कानून की नजरों में दंडनीय अपराध होगा’... ऐसे अपराधों के लिए दंड, लाइसेंस रद्द किया जाना और सार्वजनिक सहायता बंद करना शामिल है। सन् 1976 में नागरिक अधिकार संरक्षण (संशोधन) एक्ट पारित किया गया। इसमें अपराधियों के लिए और भी कठोर सजा, विशेष अफसरों और अदालतों द्वारा पीड़ित व्यक्तियों के लिए कानूनी सहायता, इत्यादि के प्रावधान रखे गए।”¹ इसके बावजूद भारतीय समाज में ऊँच-नीच का जातिगत जहर घोलने वाली ताकतें लगातार मजबूत होती रही। समाज में हिंदू-मुस्लिम, दलित-सवर्णों आदि के संघर्ष खुलकर देखने को मिले हैं। भारत में जातिवाद की समस्या जड़ बन गई है। धर्मनिरपेक्ष संविधान होने के बावजूद कट्टरपंथी ताकतों ने कानून की धज्जियाँ उड़ाने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

स्वतंत्रता के बाद भी भारत की सामाजिक गैरबराबरी में कोई खास परिवर्तन देखने को नहीं मिला जिसके कारण समाज में निराशा की भावना बढ़ती गई। दूसरी तरफ धार्मिक-पाखंड और आडंबरों में भी कोई विशेष कमी नहीं आई, जिसने भारतीय समाज के सामाजिक विकास की गति को प्रभावित किया।

भारतीय समाज में बढ़ती बेरोजगारी और आर्थिक तंगी ने पारिवारिक में आपसी प्रेम को नष्ट करने का काम किया है। परिवार में आपसी मन-मुटाव में वृद्धि देखने को मिलती है। मनमुटाव इतना बढ़ गया है कि पति-पत्नी, पिता-पुत्र, मां-पुत्र, भाई-भाई, भाई-बहन जैसे करीबी रिश्तों में भी आत्मीयता की कमी आई है। आगे चल कर भूमंडलीकरण ने स्थिति को और भी गंभीर बना दिया। भूमंडलीकरण प्रभाव के कारण भारत की युवा पीढ़ी पाश्चात्य संस्कृति की चकाचौंध में डूब गई है। इस वजह से युवाओं में अपने परिवार, समाज और देश के प्रति उदासीनता बढ़ती जा रही है। इसके परिणामस्वरूप सामाजिक मूल्यों में हास देखने को मिल रहा है।

स्वतंत्रता के बाद सरकारों की विकास चेतना के केंद्र में गाँवों के स्थान पर शहर ज्यादा रहे। स्वतंत्रता से पहले कांग्रेस ने गाँव की आर्थिक और सामाजिक स्थिति सुधारने तथा लोगों को शिक्षित और आत्मनिर्भर बनाने के सपने दिखाए, लेकिन गाँवों में लोगों का जीवन आज भी मुश्किलों से भरा हुआ है। इसके विपरीत

¹ प्रो. विपिन चंद्र, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, आजादी के बाद भारत, पृ.सं.- 646

नगरों, कस्बों, शहरों और महानगरों का विकास तीव्र गति से हुआ है। लेकिन जैसे-जैसे लोगों ने गाँव को छोड़कर शहरों की तरफ जाना शुरू किया तब शहरों के विकास की अवधारणा की असलियत जाहिर हो गई। शहरों में अमीर-गरीब के बीच की खाई साफ़ दिखने लगी। नगरों में गाँव के वंचित लोगों का जीवन मुश्किलों से भरा ही रहा।

महात्मा गाँधी ने कहा था कि भारत की आत्मा गाँवों में बसती है। यह सच है कि भारत की अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है, लेकिन इसमें भी कोई शक नहीं है कि आजादी के बाद औद्योगीकरण की क्रांति के प्रभाव से लोगों ने शहरों और नगरों की तरफ रुख किया। नगरों में सस्ती और सुरक्षित आवासीय व्यवस्था की कमी और जनसंख्या वृद्धि ने जीवन की मुश्किलों को नया शक्ल दे दिया। लोग दरबों के समान छोटे-छोटे घरों में रहने को मजबूर हो गये हैं। एक वर्ग विशेष के जीवनस्तर के चकाचौंध को दिखा कर उसे ही सबका सच बताने की पूंजीवादी साजिश शुरू हो गई। अधिकांश लोग अपनी सीमित आय में जीवन बिताने को मजबूर हो गये हैं। नगरों में रहने वाले लोग भीड़ के बीच भी खुद को अकेला महसूस करने लगे हैं। उनके चारों तरफ इतना शोर-शराबा है कि वे अक्सर अपनी भी आवाज नहीं सुन पाते। कोई किसी की बात सुनने के लिए दो पल का समय नहीं निकाल पा रहा है। लेकिन इस भागमभाग वाली जिंदगी को जीने वाले को यह भी मालूम नहीं है कि उसका मुकाम क्या है? वह अपनों को छोड़कर बिना मंजिल के अनजान रास्तों पर भागे चले जा रहे हैं। दूसरी तरफ गाँवों में अधिकांश लोग जमींदारों, सूदखोरों एवं तथाकथित उच्च जातियों द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों से परेशान होकर जीवन व्यतीत कर रहे हैं। अमीरी-गरीबी की खाई एवं उचित शिक्षा के अभाव ने जातिवाद और सामाजिक बिखराव को और बढ़ावा दिया है। अशिक्षित होने की स्थिति में लोगों को पंडित-पुरोहितों से लेकर सरकारी कर्मचारियों और अधिकारियों आदि सभी ने शोषण का शिकार बनाया है। गाँव का जीवन आज भी मूलभूत आवश्यकताओं के अभाव के कारण मुश्किल बना हुआ है। इन सब के बावजूद वे अंधविश्वास, अमानवीय प्रथा एवं धार्मिक कर्मकांडों से जुड़े हुए हैं। यँ तो संयुक्त परिवार की अपनी समस्याएँ भी हैं लेकिन ग्रामीण परिवेश में उसके अपने सकारात्मक बिंदु भी हैं। भूमंडलीकरण के प्रभाव के कारण नगरों के मूल्यों का गाँवों में आगमन हुआ जिससे नगरों की समस्याएँ गाँव में देखने को मिलने लगी। एकल परिवार और अकेलेपन का अनुभव अब यहाँ भी दिखने लगा है।

लम्बे समय से भारतीय समाज में सामंत, जमींदार, साहूकार और पंडों-पुरोहितों आदि द्वारा जाति और वर्ग के आधार पर शोषण किया गया है। भारत में शोषक वर्ग हमेशा से शोषित वर्ग का शोषण करता आया है। शोषित वर्ग को लगा था कि आजादी के बाद स्थितियों में बदलाव होगा लेकिन अंग्रेजों के चले जाने के बाद भारत में बंदरबांट शुरू हुआ। औद्योगिक क्रांति के बाद भारतीय समाज में लूट की संस्कृति में दिन-दूनी रात चौगुनी वृद्धि हुई। वर्तमान समय में प्रत्येक जरूरतमंद व्यक्ति का शोषण हो रहा है और जरूरतों को पूरा करने का उत्तरदायी अधिकांश व्यक्ति शोषक बनने का कोई मौका नहीं छोड़ते हैं।

आजादी के बाद भारत की सरकारों ने कृषि और किसान के नाम पर न जाने कितनी योजनाएँ चलाई, करोड़ों के बजट पेश किए गए। फिर भी भारतीय किसान 'होरी' के समान अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा, भोजन, अच्छी परवरिश और उनकी आकांक्षाओं को पूरा करने में असमर्थ रहता है। वह अपनी इच्छाओं को दिल में दबाए हुए ही दुनिया को छोड़ कर चला जाता है। अब प्रश्न यह उठता है कि किसानों को बढ़ावा देने के नाम पर जो करोड़ों का बजट संसद में बैठकर पास किया जाता है, आखिर वह वास्तविक जरूरतमंद लोगों तक पहुंचता क्यों नहीं है? कृषि में निवेश के बारे में इतिहासकार बिपिन चंद्र एक आंकड़ा प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं कि, "कृषि में सरकारी निवेश काफी बढ़ गया। खेती को दी जानेवाली संस्थागत वित्त सन् 1968 तथा 1973 के बीच दुगुनी हो गई। 1965 में कृषि मूल्य कमीशन बिठाया गया। इसकी कोशिश यह थी कि किसान के लिए निरंतर उत्पादक मूल्य के जरिए बाजार की गारंटी की जाए। सार्वजनिक निवेश, संस्थागत कर्जों, उत्पादक मूल्य और कम कीमत पर नई तकनीकी उपलब्ध कराने से किसान द्वारा निजी निवेश के मुनाफे की क्षमता बढ़ गई।... सन् 1960-61 तथा सन् 1970-71 के बीच बिजली और डीजल के पम्प सेटों की संख्या 421000 से बढ़कर 24 लाख हो गई, ट्यूबवेलों की संख्या 90000 से बढ़कर 460000 और ट्रैक्टरों की संख्या 31000 से बढ़कर 140000 हो गई। साथ ही रासायनिक खादों, नाइट्रोजन और फास्फोरस की मात्रा सन् 1960-61 में 306000 मीट्रिक टनों से बढ़कर सन् 1970-71 में 2350000 मीट्रिक टन हो गई।"¹ ये आंकड़े कागजों पर तो दिखाई देते हैं लेकिन जमीनी हकीकत यह है कि भारतीय के किसानों को अच्छा और सस्ता खाद-बीज भी समय पर नहीं मिल पाता है। सरकार द्वारा बनाई गई योजनाओं का लाभ किसानों तक पहुंचने से पहले ही शासन और प्रशासन में बैठे लोगों द्वारा हजम कर लिया जाता है। किसान भी वोट बैंक बनके रह गया है। चुनाव के समय विभिन्न राजनीतिक पार्टियाँ मंचों से किसानों की कर्ज माफी, फसल के उचित मूल्य की गारंटी जैसी की घोषणाएँ करते हैं। इस तरह के वायदे न तो जमीन पर दिखते हैं, न कोई ठोस समाधान करते हैं और न ही व्यवस्था परिवर्तन की उम्मीद लाते हैं।

किसानों की तरह ही समाज के निचले पायदान पर जीवन निर्वाह करने को मजबूर श्रमिक और मजदूर वर्ग की स्थिति भी दयनीय बनी हुई है। जीवन के प्रत्येक स्तर पर इनका शोषण किया जाता है। तेज धूप हो या ठंड, सुबह से लेकर शाम तक काम करने के बाद भी इन्हें न्यूनतम मजदूरी नहीं मिल पाती है। यही स्थिति प्राइवेट कंपनियों में काम करने वाले मजदूरों की है। गाँवों में तो मजदूरों से बेगार तक कराई जाती है। दूसरी तरफ महिला श्रमिकों की स्थिति और खराब है। उनको न सिर्फ समान काम के लिए कम मजदूरी दी जाती है, बल्कि उनको बेहद असुरक्षा के माहौल में काम करना पड़ता है।

¹ प्रो. विपिन चंद्र, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, आजादी के बाद भारत, पृ.सं.- 584

पितृसत्तात्मक व्यवस्था स्त्रियों को सदैव पुरुषों से कमतर मानता है और उन्हें उपभोग की वस्तु समझता है। मीरा से लेकर निर्भया तक, सभी का शोषण और दमन इस सामाजिक व्यवस्था के अन्दर किया गया। स्त्रियाँ घर में पिता, पति, भाई और पुत्र से, बाहर बाकी समाज से अपने अस्तित्व को बचाने की लड़ाई लड़ रही हैं। भारतीय समाज की परम्पराओं, रुढ़ियों और कुरीतियों के जाल ने महिलाओं की प्रगति के रास्तों को बंद कर रखा है। उन्हें दहेज-प्रथा, बाल विवाह, अनर्मे ल विवाह, मानव तस्करी, भ्रूणहत्या, यौन-शोषण और घरेलू हिंसा जैसी गंभीर समस्याओं का सामना करना पड़ता है। पुरुषवादी समाज ने उनको सदैव अधिकारों से वंचित रखने का प्रयास किया है। लेकिन पिछले कुछ दशकों में स्त्रियाँ अपने हकों को लेकर लामबंद होने लगी हैं। स्त्रीवादी आन्दोलन, आधुनिक शिक्षा आदि के प्रभाव से स्त्रियों के बीच जागरूकता बढ़ी है और वे अपने मुद्दों को पहले की अपेक्षा थोड़े बेहतर तरीके से सामने ला पा रही हैं। महिलाओं में चेतना और आत्मविश्वास विकसित हो रही है, अब वे अपनी लड़ाई खुद लड़ने लगी हैं।

स्वतंत्रता के बाद महिलाओं के प्रति सुधारवादी दृष्टिकोण दिखने मिलता है। संविधान लागू होने के बाद आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक मामलों में पुरुष और महिलाओं के अधिकार समान हो चुके थे। महिलाओं ने मध्यकालीन मूल्यों के दबाव को तोड़ कर, पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर आगे बढ़ने के लिए कमर कस चुकी थी, लेकिन सामाजिक और पारिवारिक बन्धनों से जकड़ी महिलाओं के लिए राह आसान नहीं थी। इसके बावजूद स्त्रियाँ अपने खिलाफ हो रहे अन्याय और अत्याचारों के खिलाफ आवाज़ उठा रही हैं।

स्वतंत्रता के बाद महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति में सुधार आया। महिलाओं के लिए प्राथमिक विद्यालयों से लेकर महाविद्यालयों के द्वार खुलना बहुत महत्वपूर्ण बदलाव लेकर आया। वह पुरुषों के साथ बैठकर शिक्षा ग्रहण करने लगी। दूसरी तरफ महिलाओं ने अपने जीवन के महत्वपूर्ण निर्णय खुद लेने शुरू किए हैं। विवाह जैसे महत्वपूर्ण निर्णयों के लिए, वह घर और समाज दोनों से लड़ने को तैयार है। वहीं विवाह के बाद होने वाले अत्याचारों को सहन करने के बजाए, तलाक़ लेने में भी हिचकिचाहट नहीं करती हैं, क्योंकि आधुनिक महिला अत्याचार के साथ-साथ अत्याचार को सहन करने को भी अपराध समझती हैं। आखिर वह अन्याय सहन ही क्यों करे? महिलाएं समाज को विकसित करने में बराबर की भागीदार हैं। वे पुरुषों की दासी नहीं हैं बल्कि उनका अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। इस सार्वभौमिक सत्य को पुरुषवादी समाज सदा से नकारता आया है लेकिन यह अब ज्यादा दिन तक संभव नहीं है। अब महिलाएं जगह-जगह पुरुषों से अपने अधिकारों को लेकर संघर्ष करती दिखाई दे रही हैं।

महिलाओं की स्वतंत्रता, उनकी आर्थिक स्वतंत्रता पर ज्यादा निर्भर करती है। जो महिलाएं आर्थिक रूप से पुरुष पर आश्रित नहीं हैं वे अन्य महिलाओं की अपेक्षा निर्णय लेने में ज्यादा स्वतंत्र रहती हैं। आर्थिक स्वतंत्रता न होने के कारण महिलाओं की स्थिति दयनीय बनी हुई है। महिलाओं की स्वतंत्रता के लिए

शिक्षित और आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनना ही होगा। साथ ही परम्पराओं के बन्धनों को भी तोड़ना होगा। हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि आजादी के बाद महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन देखने को मिलते हैं। महिलाओं ने निरन्तर अपनी सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षणिक आदि स्थिति में सुधार किया है। लेकिन यह भी उल्लेखनीय है कि ये परिवर्तन बहुत धीरे-धीरे हो रहा है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज में विभिन्न प्रकार के परिवर्तन दिखाई देते हैं लेकिन ये परिवर्तन पर्याप्त सिद्ध नहीं हो सके क्योंकि स्वतंत्रता से भारतीय जनता बहुत ज्यादा की उम्मीद लगाई हुई थी। धर्मनिरपेक्ष संविधान होने के बावजूद समाज में धर्म और जाति के नाम पर भेदभाव और छुआ-छूत कम होने के बजाए बढ़ा है, बस उसके तौर-तरीकों में परिवर्तन आया है। देश की आजादी के बाद बड़े ऐलानों के बावजूद जमींदारी उन्मूलन भी पूरी तरह सफल नहीं हो सका। आज भी जमीन कुछ जातियों के कब्जे में ही है। आजादी के बाद पुरुष और स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में संतोषजनक परिवर्तन अवश्य देखने को मिलते हैं। लेकिन सरकार शिक्षित वर्ग को उचित रोजगार मुहैया कराने में असफल नजर आती है। दूसरी तरफ पाश्चात्य संस्कृति और शिक्षा के प्रभाव के कारण नैतिक मूल्यों में गिरावट देखने को मिलती है। समाज में संयुक्त परिवार के स्थान पर एकल परिवार दिखते हैं, साथ ही आत्मीय संबंधों में आत्मीयता की कमी हुई है। आजादी के बाद भी बहुजन वर्ग, किसान, दलित, आदिवासी, पिछड़े, मजदूर आदि की स्थिति दयनीय बनी हुई है। ऐसा नहीं है कि सरकार ने इनके आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षणिक तथा न्यायिक अधिकारों के लिए प्रयास नहीं किया है। सरकार ने समय-समय पर इनके लिए अनेक योजनाओं को लागू किया लेकिन व्यवस्था में बैठे भ्रष्टाचारियों और शोषकों ने उनको अधिकारों से वंचित रखा है। व्यवस्था में बैठे मुठ्ठी भर लोग ही मलाई चाट रहे हैं। दूसरी तरफ, सामंतों, जमींदारों, महाजनों, साहूकारों, पंडों-पुरोहितों आदि द्वारा शोषण सदियों से होता रहा है, आजाद भारत में इनकी टोली में राजनेता भी शामिल हो गये हैं। आजादी के साथ-साथ साम्प्रदायिकता एक विकट समस्या के रूप में उभरकर सामने आती है। जिसके कारण साम्प्रदायिक घटनाओं में लगातार बढ़ोत्तरी दिखाई देती है।

1.4 स्वातंत्र्योत्तर भारत की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

प्राचीन काल से ही भारतीय समाज की मिश्रित संस्कृति रही है। भारत हजारों संस्कृतियों का सम्मूचय है। यहाँ 'चार कोस पर पानी, बारह कोस पर वाणी' बदल जाती है। संस्कृति के प्रत्येक स्तर, धर्म, रीति-रिवाज, भाषा, वेशभूषा, रहन-सहन, खान-पान आदि पर विविधता दिखाई देती है। भारत में रहने वाले विभिन्न समुदायों के लोगों की जीवन-शैली एक-दूसरे से भिन्न है। ये धर्म, सम्प्रदाय, जातियों तथा उपसम्प्रदायों में विभाजित हैं। सभी की धार्मिक पद्धति में अंतर है। यहाँ तक कि जाति के आधार पर भी पूजा पद्धति में भिन्नता दिखती है।

संख्या की दृष्टि से भारत में हिन्दू और मुस्लिम धर्म के लोग सबसे अधिक हैं। जीवन के विभिन्न स्तरों पर इनमें विविधता दिखती है। अफसोस इन दोनों धर्मों के बीच धार्मिक कट्टरता, परस्पर अन्तर्विरोध और विलगाव की प्रवृत्ति दिखती है। हिन्दू, मुस्लिम के अतिरिक्त भारत में सिख, ईसाई, बौद्ध, जैन और प्रकृति पूजक आदि धर्म एवं विश्वास के लोग रहते हैं।

आज़ादी की लड़ाई में कंधे से कंधा मिलाकर लड़ने वाले भारतवासियों को आज़ादी के साथ-साथ साम्प्रदायिक दंगों की पीड़ादायक विरासत भी मिली। साम्प्रदायिकता के इस बीज को अंकुरित करके पौधा, पौधे से कांटेदार वृक्ष बनाने का काम भारत के राजनेताओं, पंडे-पुरोहितों, मुल्ला-मौलवियों आदि ने किया। आज़ादी से पहले साम्प्रदायिक दंगों का रूप ऐसा नहीं था लेकिन आज़ादी के बाद साम्प्रदायिक दंगों की बाढ़ सी आती दिखाई देती है। यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना चाहिए कि ये साम्प्रदायिक दंगे लोकतांत्रिक भारतीय समाज में हो रहे थे, जिसमें आज़ादी के बाद धर्मनिरपेक्ष संविधान लागू हो चुका था। भारतीय समाज में धार्मिक और जातिवाद का विष घोलने वालों पर संवैधानिक मूल्यों का कोई प्रभाव दिखाई नहीं देता है। इन साम्प्रदायिक दंगों की आग पर राजनेताओं ने अपनी राजनीतिक रोटियां सेंकने का काम किया। नफरत की राजनीति से मिली सत्ता कुर्सियों के पैर न जाने कितने बेगुनाहों की लाशों पर टिके हुए हैं।

आधुनिक समय में सभी धर्मों की आध्यात्मिक गरिमा निरंतर कम हो रही है क्योंकि धर्म पर पूंजीपतियों, धर्म के ठेकेदारों और क्रूर राजनेताओं जैसी बाहरी शक्तियों का हस्तक्षेप लगातार बढ़ा है। हिन्दू और मुस्लिम धर्म पर इसका प्रभाव स्पष्ट दिखता है। इन दोनों धर्मों में धार्मिक अंधविश्वास बढ़ता ही जा रहा है। धर्म के फर्जी ठेकेदार लगातार सामने आ रहे हैं। इसके कारण ये दोनों धर्म अपने मूल धार्मिक मूल्यों से लगातार दूर होते जा रहे हैं। आज़ादी के 70 वर्ष बाद भी स्थिति ज्यों की त्यों बनी हुई है। हिन्दू धर्म में जातिवाद की आपराधिक विरासत को आश्रय मिला हुआ है। आज भी जाति के आधार पर लोगों के साथ व्यवहार तय होता है। इंसानों की बराबरी की बात करने वाले मुस्लिम धर्म में भी उच्च और निम्न जातियों के बीच भेदभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

प्राचीन काल से ही भारतीय समाज अपनी अति धार्मिकता के कारण परम्परावादी, रीति-रिवाजों, धार्मिक अंधविश्वास, रूढ़ियों और कुंठाओं से ग्रसित रहा है। इसी कारण भारतीय समाज में मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक का जीवन धार्मिक कर्मकांडों के नियमों से बंधा रहता है। हिन्दू-मुस्लिम धर्म के समान अन्य धर्म भी इस बीमारी से पीड़ित हैं। सभी धर्म लकीर के फ़कीर बने हुए हैं। इसी कारण भारतीय संस्कृति में कहीं न कहीं जड़ता बनी हुई है।

भारतीय संस्कृति का एक दूसरा पक्ष है जो भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में कम ही मिलता है, वह भारत की मिश्रित संस्कृति है। कुछ बुराइयों के बावजूद भारत में अनेक धर्म और सम्प्रदाय के लोग अपनी-

अपनी धार्मिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक मान्यताओं के साथ सहअस्तित्व बना कर प्रसन्नतापूर्वक रहते हैं। यह भारतीय संस्कृति की अपने आप में विशेष सुन्दरता है। भारत में प्राचीन काल से ही विदेशियों का आना-जाना रहा है। इन्होंने भारत की संस्कृति को प्रभावित किया। भारत की संस्कृति पर कोई धर्म या समुदाय एकाधिकार का दावा नहीं कर सकता है, कि भारतीय संस्कृति हमारी संस्कृति है। यहाँ समय-समय पर अनेक संस्कृति के लोग आए और यहीं के होकर रह गये। भारतीय संस्कृति ने उनको और उनकी संस्कृति ने भारतीय संस्कृति को आत्मसात किया है। तब जाकर वर्तमान भारतीय संस्कृति का स्वरूप बनता है। भारतीय संस्कृति अनेक संस्कृति रूपी फूलों का सुंदर गुलदस्ता है।

भारतीय संस्कृति की झलक देखने के लिए लाखों पर्यटक प्रति वर्ष भारत आते हैं। भारत की संस्कृति की झलक यहाँ की धार्मिक मान्यताओं, रीति-रिवाजों, पर्व-त्यौहारों, खान-पान, वेशभूषा, भाषा, लोकगीतों, चित्रकारी, मंदिरों, मस्जिदों, प्राचीन और मध्यकालीन इमारतों आदि में स्पष्ट दिखाई देती है।

स्वतंत्रता के बाद जब भारत की आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक स्थितियों में परिवर्तन होने शुरू हुए तो इन परिवर्तनों का प्रभाव भारतीय संस्कृति पर पड़ना स्वाभाविक था। औद्योगिक क्रांति के दौर में सांस्थानिक रूप से देश के कायापलट का प्रयास चल रहा था। लेकिन भारत के लोगों के मन में पुराने सांस्कृतिक और सामाजिक मूल्यों के प्रति श्रद्धा और आस्था अभी तक बनी हुई थी। भारत की संस्कृति पर भौतिकता का प्रभाव पड़ रहा था। आधुनिक शिक्षा ने भी अपना रंग दिखाना शुरू कर दिया था। लोगों में धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और पारिवारिक परम्पराओं के प्रति विरोध दिखने लगा। लोगों ने आजादी के बाद परम्परावादी तौर-तरीकों को चुनौती देना शुरू किया। कुछ लोगों ने अंतर्जातीय विवाह, प्रेम-विवाह, विधवा-विवाह तथा दहेज प्रथा निषेध आदि की तरफ कदम उठाए, इससे भारत की संस्कृति की जड़ता को धक्का लगाना शुरू हुआ। इन परिवर्तनों ने पुरानी और नयी पीढ़ी के बीच टकराहट को जन्म दिया। नयी पीढ़ी के मुखर होने से सांस्कृतिक धारणाएँ बदलने लगीं। स्त्री को हमेशा से दबाकर रखने की पुरुषवादी व्यवस्था में भी परिवर्तन दिखने लगा। स्त्रियाँ अब अपने अधिकारों को मांगने और लड़कर लेने को कमर कस चुकी थीं। स्त्रियों के मुखर होने के कारण स्त्री-पुरुष के संबंधों में थोड़े प्रगतिशील बदलाव दिखाई देने लगते हैं।

पारिवारिक स्तर पर संयुक्त परिवार के स्थान पर एकल परिवार का चलन बढ़ा है। एकल परिवार के कारण परिवार के आत्मीय संबंधों में भी आत्मीयता की कमी दिखाई देने लगी है। लोगों में संवेदना की कमी हुई है। लेकिन ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि इसके लिए एकल परिवार ही जिम्मेदार है। दूसरी तरफ धार्मिक मान्यताओं का लोप होता जा रहा है। आधुनिक समय में मनुष्य ने अपने जीवन को प्रतियोगिता से जोड़ दिया है। वह किसी भी कीमत पर अन्य से आगे रहने की प्रवृत्ति से ग्रसित हो चुका है। वह अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिए किसी भी स्तर पर जाकर धर्म, समाज, परिवार, आत्मीय सम्बन्ध और मित्र आदि को छोड़ सकता है। उसके लिए सांस्कृतिक, सामाजिक और पारिवारिक मूल्य कोई महत्व नहीं रखते हैं।

उपभोक्तावादी संस्कृति की चकाचौंध ने लोगों की सोचने की शक्ति पर नियंत्रण कर लिया है, जिसने बाजार और मुनाफे की संस्कृति को जन्म दिया। लोग रोजगार और अच्छी सुविधाओं की खोज में नगरों की तरफ रुख कर चुके हैं। इसने भी भारत की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर गहरा असर डाला है।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि स्वातंत्र्योत्तर भारत अपेक्षा-उपेक्षा, आशा-निराशा, योजना-विफलता, उम्मीद और मोहभंग के बीच करोड़ों भारतीयों के संघर्ष की जमीन रहा। वर्तमान में लोकतांत्रिक भारत के जनमानस को समझना है तो उनके सामूहिक अवचेतन को भी समझना होगा। आज़ादी को लेकर जो उम्मीद और अपेक्षा भारत के लोगों में थी, उसे असफल होता देख मोहभंग की स्थिति पैदा हुई। आज लोकतांत्रिक मूल्यों की हत्या होते हुए देख कर भी जनता में कोई गुस्सा नहीं दिखाई देता, कहीं न कहीं इसकी एक वजह यह भी कही जा सकती है कि एक बड़ी आबादी में इन मूल्यों के प्रति मोहभंग पहले ही हो चुका था। ऐसे में इस देश के भविष्य के लिए यही बेहतर होगा कि लोगों में संवैधानिक अधिकारों के प्रति जागरूकता लायी जाए, इसके लिए देश की सत्ता को सही अर्थों में जनता के हितों के बारे में काम करना होगा।

दूसरा अध्याय:

नयी कविता और दुष्यंत कुमार का काव्य

2.1 नयी कविता की पृष्ठभूमि

स्वतन्त्रता के बाद भारत की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों के साथ-साथ साहित्य के क्षेत्र में भी परिवर्तन दिखाई देने लगे। इन्हीं परिवर्तनों की जमीन से नयी कविता का जन्म हुआ है। नयी कविता अपने युग विशेष की आवश्यकता है। नयी कविता में स्वतन्त्रता के बाद के प्रथम दशक की परिस्थितियों का संवेदनात्मक और यथार्थ रूप से चित्रण किया गया है। भारतीय समाज में फैली आस्था-अनास्था, घुटन, संकट, संत्रास, भ्रष्टाचार, अत्याचार, तंगी, कलह, राग-द्वेष, उदासी, विफलता, ग्लानि और क्षोभ आदि के बिम्बात्मक दृश्य देखने को मिलते हैं। ये बिम्बात्मक दृश्य मानवता, प्रमाणिकता और बौद्धिकता तथा आधुनिकता आदि से परिपूर्ण नजर आते हैं।

‘नयी कविता’ के ऐतिहासिक परिवेश पर विचार किया जाये तो, प्रयोगवाद के बाद विकसित हुई हिंदी कविता को नयी कविता कहा जाता है। ‘नयी कविता’ शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम ‘अज्ञेय’ ने सन् 1952 में ‘आकाशवाणी पटना’ से एक रेडियो-वार्ता में किया था। वैसे कुछ विद्वान् ‘दूसरा सप्तक’ (सन् 1951) के बाद लिखी गयी कविताओं को नयी कविता के अंतर्गत रखकर देखते हैं, क्योंकि कुछ कवियों ने ‘दूसरा सप्तक’ की भूमिका में अपने द्वारा लिखित कविताओं के लिए नयी कविता शब्द का प्रयोग किया है। दूसरी तरफ, लक्ष्मीकान्त वर्मा नयी कविता की शुरुआत ‘नये पत्ते’ (सन् 1953) पत्रिका के प्रकाशन से मानने के पक्षधर हैं। लेकिन नयी कविता की शुरुआत प्रमाणिक रूप से साहित्यिक संस्था ‘परिमल’ से जुड़े हुए, साहित्यकार जगदीश गुप्त, रामस्वरूप चतुर्वेदी और विजयदेवनारायण साही के सम्पादन में, सन् 1954 में प्रकाशित होने वाली ‘नयी कविता’ पत्रिका से मानी जाती है। ‘नयी कविता’ पत्रिका 1954 से सन् 1967 तक निरंतर प्रकाशित होती रही, जो एक अर्धवार्षिक पत्रिका थी। इसमें छपने वाले ज्यादातर कवि ‘तार सप्तक’ के ही थे। जगदीश गुप्त नयी कविता के प्रथम प्रकाशन को याद करते हुए लिखते हैं कि, “‘नयी कविता’ राजकमल प्रकाशन से एक सहयोगी साहित्यिक प्रयास के रूप में प्रकाशित हो तथा उसका सम्पादन मैं करूँ यह प्रस्ताव भारती का था। उसके प्रकाशन के लिए जिनसे मैंने चंदा उगाहा उन में कई कवि पिछली पीढ़ी के भी थे, हम-उम्र सहयोगी और साथी तो थे ही। पन्त जी ने प्रथम अंक के लिए विशेष टिप्पणी लिखी

और चेक भी दिया। महादेवी जी ने पैसा तो दिया पर इस सुझाव के साथ कि इस का नाम 'नयी कविता' न रखकर मात्र 'कविता' रखा जाये। जाहिर है कि मैंने उनके पैसे का उपयोग किया और सुझाव, जिससे मैं सहमत नहीं था, अपने पास रख लिया।"¹ डॉ. बच्चन सिंह नयी कविता के नामकरण के पीछे डी. एच. लॉरेंस के कविता-संग्रह 'न्यू पोयम्स' और सम्पादित कविता-संग्रह 'न्यू सिग्नेचर' की प्रेरणा मानते हैं।

जिस रूप में हमें नयी कविता प्राप्त हुई है। उससे पहले नयी कविता विभिन्न कविता आंदोलनों के उतार-चढ़ावों से होकर विकसित हुई है इसलिए नयी कविता ने छायावाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद आदि कविता की धाराओं से कुछ न कुछ ग्रहण किया है। छायावाद के कवि मूलभूत विषयों को छोड़कर कल्पनाओं की उड़ान के साथ वन, झील, पर्वत, पहाड़ और फूलों से भरे खेतों आदि में सौन्दर्य का रसपान करने में ज्यादा व्यस्त रहे, लेकिन बाद में जमीन पर वापस आना ही पड़ा। 'कुकुरमुत्ता' और 'तोड़ती पत्थर' इसका प्रमाण हैं। समय की जरूरत को देखते हुए पन्त जी ने 'रूपाभ' के सम्पादकीय में लिखा कि, "इस युग की वास्तविकता ने जैसा उग्र रूप धारण कर लिया है इससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गए हैं।"² इसके बाद हिंदी कविता कल्पना के सिंहासन से उतरकर, यथार्थ की गलियों में विचरण करने लगी और प्रगतिवादी कविता की परम्परा की शुरुआत हुई। प्रगतिवादी कविता में जनवादी और यथार्थ जीवन की प्रवृत्ति देखने को मिलती है। शोषक वर्ग के अत्याचारों का विरोध और शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति के भाव को पहली बार हिंदी कविता में मुखर रूप से अभिव्यक्ति मिली। बाद में प्रगतिवाद पर अति-राजनीतिक होने के लिए आरोप लगे, क्योंकि यह कविता शोषितों की पीड़ा से परिचित होने के बावजूद, उनकी मूलभूत समस्याओं को हृदय की अनुभूति के साथ उतनी सफलता से नहीं उठा पाई। दूसरी तरफ, प्रगतिवाद की काव्यधारा से अलग होकर, अज्ञेय ने अनुभूतिक चेतना के साथ 'तार सप्तक' (सन् 1943) का संकलन किया जिसमें अज्ञेय के अतिरिक्त मुक्तिबोध, नेमीचन्द्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरजा कुमार माथुर और रामविलास शर्मा जैसे कवि शामिल थे। अज्ञेय ने 'तार सप्तक' की भूमिका में 'प्रयोगवाद' शब्द का कई बार प्रयोग किया, जिसके कारण आलोचक 'तार सप्तक' के कवियों की कविता के लिए 'प्रयोगवाद' शब्द का प्रयोग करने लगे। प्रयोगवाद को विद्वान् छायावाद और प्रगतिवाद की प्रतिक्रिया की उपज भी मानते हैं। एक ओर जहाँ प्रगतिवादी वस्तु को महत्व देते थे, प्रयोगवादियों ने रूप को ज्यादा महत्व दिया। इन कवियों ने अपनी अनुभूति के लिए नयी भाषा को गढ़ने का काम किया

¹ जगदीश गुप्त, नयी कविता स्वरूप और समस्याएँ, पृ.सं.- 3

² देवराज, नयी कविता, पृ.सं.- 55

इसलिए इसमें शामिल सभी कवि कुछ न कुछ नवीन दृष्टिकोण के साथ युगीन परिवेश को ध्यान में रखकर कविता लिखने लगे। जिसके विषय में डॉ. देवराज लिखते हैं, “प्रगतिवाद के बाद की कविता संवेदना के स्तर पर अपने से पहली कविता से भिन्न है। इन कवियों ने एक ओर व्यक्ति के आंतरिक संघर्ष को अभिव्यक्ति दी वहीं उस बाहरी संघर्ष को भी पहचाना जो व्यक्ति, समुदाय और समाज के स्तर पर चल रहा था। जो हर स्तर पर व्यक्ति को ही दबाने की चेष्टा कर रहा था। ‘तार सप्तक’ की अनेक कविताएँ ऐसी हैं जिनमें युग व्याप्त द्वंद्व और परिवेशगत सजगता मुखरित हुई है।”¹ प्रयोगवादी कवियों की कुछ खामियों के चलते आलोचक कविता का मूल्यांकन करने के बजाए प्रयोगवाद की समीक्षा में व्यस्त रहे, क्योंकि प्रयोगवादी कवि सामाजिक समस्याओं को भूलकर कविता के रूप को संवारने में ही लगे रहे। साथ ही प्रयोगवादी कविता अति बौद्धिकता और वैयक्तिकता से ग्रस्त हो गयी थी। दूसरी तरफ, प्रयोगवादियों के साथ ‘वाद’ शब्द जुड़ने के कारण कविता के क्षेत्र में गुटों का गठन होने लगा। इस प्रकार कविता की जो परम्परा छायावाद से शुरू हुई थी वह छोटे दशक के शुरू होते-होते नयी कविता में परिवर्तित होने लगी अर्थात् छायावाद की कविता से जो मूलभूत परिवर्तन होने शुरू हुए थे वे नयी कविता में मुखरित होते दिखते हैं।

2.2 नयी कविता के विषय में विद्वानों के विचार

हिंदी कविता के आलोचकों के बीच नयी कविता को लेकर हमेशा मतभेद रहे हैं। सभी ने अपने-अपने तर्कों के आधार पर अपने-अपने विचारों के माध्यम से नयी कविता को परिभाषित करने का प्रयास किया है, वैसे तो नयी कविता ही नहीं बल्कि किसी भी साहित्यिक विधा को शब्दों में बांधकर परिभाषित करने का कार्य हमेशा से ही चुनौतीपूर्ण रहा है। नयी कविता के विषय में विद्वानों के निम्न मतों को देख सकते हैं-

डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं, “नयी कविता ने स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद के भारतीय समाज के यथार्थ को सही अर्थ में अनुभव के स्तर पर भोगा और अभिव्यक्त किया है। उसने सत्य का अनुभव ही नहीं किया, वरन अपनी बौद्धिक दृष्टि से अनुभवों का मूल्यांकन भी किया है।”²

जगदीश गुप्त ने नयी कविता को छायावाद और प्रगतिवाद के बाद की तथा प्रयोगवाद को आत्मसात करने वाली कविता कहा है। वे लिखते हैं, “नयी कविता प्रगतिवादी यथार्थ के आघात से उत्पन्न छायावाद

¹ देवराज, नयी कविता, पृ.सं.- 63

² डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.सं.- 637

के स्वप्न-भंग के बाद की कविता है, जिस में व्यक्त भावनाएँ कुहासे के बीच पनपने वाले तंद्रालस से युक्त न हो कर दिन की तेज रोशनी के बीच विषमताओं से घिरे मनुष्य की भावनाएँ हैं।¹ एक अन्य लेख में वे लिखते हैं कि, “नयी कविता के उन्मेष और वाद-रहित मानवीय जीवन दृष्टि तथा विकसित एवं परिष्कृत सौंदर्यबोध ने प्रयोगवाद को दुर्गति तक पहुँचने या बिखर जाने से बचा लिया। यही नहीं उसने उन सार्थक तत्त्वों को नयी भूमिका प्रदान की तथा कला-चेतना और शिल्पगत सजगता के अनेक पक्षों का उद्घाटन करते हुए उसे पूरी तरह आत्मसात कर लिया है।”²

गिरजाकुमार माथुर का कहना है कि, “मौजूदा कविता के अंतर्गत वह दोनों ही प्रकार की कविताएँ कही जाती रही हैं, जिनमें एक ओर या तो शैली, शिल्प और माध्यमों के प्रयोग होते रहे हैं या दूसरी ओर समाजोन्मुखता पर बल दिया जाता रहा है। लेकिन नयी कविता हम उसे मानते हैं, जिसमें इन दोनों के स्वस्थ तत्वों का सन्तुलन और समन्वय है। यह नयी कविता नये शिल्प और उपमानों के प्रयोग के साथ समाजोन्मुखता और मानवता को एक साथ अंजलि में भरे भविष्य की ओर अग्रसर हो रही है।”³

रामस्वरूप चतुर्वेदी ने नयी कविता के विषय में लिखा है कि, “नयी कविता संपूर्ण जीवन की कविता है, केवल महिमाशाली अंशों तक वह अपने को सीमित नहीं रखती।”⁴

डॉ. बच्चन सिंह नयी कविता को वैयक्तिकता और सामाजिकता के समन्वय का प्रयास बताते हुए विषय में लिखते हैं कि, “नयी कविता छायावाद, प्रगतिवाद, और प्रयोगवाद से बहुत कुछ ग्रहण करती हुई भी उनसे मुक्त होने की दिशा में अग्रसर हुई। दूसरे शब्दों में, रोमांस की कल्पना, वादग्रही सामाजिकता और प्रयोगवादी रुपाग्रह से मुक्ति की कोशिश में इसने वैयक्तिकता और सामाजिकता के समन्वय का प्रयास किया है।”⁵

जबकि डॉ. अमरनाथ नयी कविता को प्रयोगवाद के विकास के रूप में ही देखने के पक्षधर हैं। वे लिखते हैं, “नयी कविता अनेक अर्थों में प्रयोगवाद का नया विकास मानी जा सकती है। उसने प्रयोगवाद की अनेक उपलब्धियों को आत्मसात किया है। इसी साम्य के कारण अनेक कवि प्रयोगवाद और नयी

¹ जगदीश गुप्त, नयी कविता स्वरूप और समस्याएँ, पृ.सं.- 193

² जगदीश गुप्त, नयी कविता स्वरूप और समस्याएँ, पृ.सं.- 382

³ देवराज, नयी कविता, पृ.सं.- 9

⁴ रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ.सं.- 236

⁵ बच्चन सिंह, आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द, पृ.सं.- 55

कविता दोनों के क्षेत्र में प्रविष्ट होते हैं और उनके विषय में यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि कहां तक वे प्रयोगवादी हैं और कहां तक नयी कविता के कवि।”¹

डॉ. रामदरश मिश्र नयी कविता को किसी वाद से न जोड़कर समय और मानवतावादी व्यापक जीवन दृष्टि की कविता मानते हैं जो यथार्थ की भावभूमि और बौद्धिकता की कसौटी पर लिखी जाती रही है। जिसके विषय में, वे लिखते हैं कि, “इस प्रकार नयी कविता की सबसे बड़ी विशेषता है, कथ्य की व्यापकता। वह कोई वाद नहीं है, वह व्यापक जीवन दृष्टि है। कथ्य कहां नहीं है? प्रयोगवाद और प्रगतिवाद ने कथ्य को बाँट लिया था, किंतु नयी कविता ने मानव को उसके समग्र परिवेश में सही रूप में अंकित करना चाहा है। नयी कविता की दृष्टि है किंतु यह मानवतावाद मिथ्या आदर्शों की परिकल्पनाओं पर आधारित नहीं है, बल्कि यथार्थ की तीखी चेतना, अपने परिवेश से जुड़े मनुष्य के बौद्धिक प्रयासों और उसकी संवेदना के उलझे हुए नाना स्तरों तक अनुभूति और चिंतन दोनों दिशाओं से पहुंचने की चेष्टाओं पर अवलम्बित है। इसने छोटे-बड़े का भेद नहीं रखा, छोटी-बड़ी अनुभूतियों, सत्यों, क्षणों, स्थितियों, घटनाओं और दृश्यों का बनावटी अंतर नहीं स्थापित किया।”² एक अन्य जगह वे लिखते हैं कि, “नयी कविता भारतीय स्वतंत्रता के बाद लिखी गयी उन कविताओं को कहा गया है जिनमें परम्परागत कविता से आगे भावबोधों की अभिव्यक्ति के साथ ही नए मूल्यों और नए शिल्प विधान का अन्वेषण किया गया है।”³

गजानन माधव मुक्तिबोध प्रगतिवाद की परम्परा से नयी कविता के विकास को जोड़ते हैं- “नयी कविता के विभिन्न कवियों की अपनी-अपनी विशेष शैलियाँ हैं। इन शैलियों का विकास अनवरत है। आगे चलकर जब वे प्रौढ़ होंगी, नयी कविता विशेष रूप से ज्योतिमान होकर सामने आएगी। साथ ही, नयी कविता में स्वयं कई भाव-धाराएँ हैं, एक भाव धारा नहीं। इनमें से एक भाव-धारा में प्रगतिशील तत्व पर्याप्त हैं... मेरा अपना मत है, आगे चलकर नयी कविता में प्रगतिशील तत्व और भी बढ़ते जायेंगे और वह मानवता के अधिकाधिक समीप आयेगी।”⁴

¹ डॉ. अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृ.सं.- 190

² डॉ. अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृ.सं.- 191

³ डॉ. ललिता अरोड़ा, नयी कविता का अनुशीलन, पृ.सं.- 39

⁴ गजानन माधव मुक्तिबोध, नयी कविता का आत्मसंघर्ष, पृ.सं.- 150-151

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी नयी कविता के विषय में लिखते हैं कि, “छायावादी काव्यधारा से भिन्न प्रवृत्तियों और नये तत्वों से समन्वित जो काव्यकृतियाँ प्रकाशित हुई हैं, उन्हें हम नई कविता कह सकते हैं। ये कविताएँ प्रगतिवादी नाम से भी पुकारी जाती हैं।”¹

विद्वानों के उपरोक्त मतों का विवेचन और विश्लेषण करने के बाद कहा जा सकता है कि ज्यादातर विद्वान् नयी कविता को विभिन्न वादों से जोड़ कर देखते हैं, क्योंकि उनका मानना है कि नयी कविता ने विभिन्न वादों से सार रूप में महत्वपूर्ण तत्वों को ग्रहण किया है। अर्थात् नयी कविता रूपी नदी में अनेक वाद रूपी नदियों का पानी मिलकर बह रहा है। कुछ हद तक यह सत्य भी है लेकिन नयी कविता के कवि अपने आपको किसी भी ‘वाद’ से मुक्त मानते हैं क्योंकि वह अपने को किसी भी सिद्धान्त, विचारधारा, सम्प्रदाय और दृष्टिकोण आदि के बंधन से बचाते रहे हैं। साथ ही नयी कविता में सहज रूप से छायावाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद आदि कविताओं की कुछ प्रवृत्तियाँ आ गयी हैं जिन्हें नकारा नहीं जा सकता है। दूसरी तरफ, नयी कविता प्रयोगवाद के विरोध में नहीं बल्कि उसको मुक्तभाव से आत्मसात करते हुए, विकसित हुई है। नयी कविता में पहली बार मनुष्य से सम्बन्धित प्रत्येक विषय पर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से कविता लिखी गयी है। साथ ही नयी कविता ने व्यापक कथ्य के साथ-साथ नए शिल्प-विधान को भी अपनाया। नयी कविता ने भारतीय स्वतंत्रता के बाद के परिदृश्य को व्यापक स्तर पर मनुष्य के आत्म-संघर्ष, नए मानवीय मूल्यों, आस्था-अनास्था, परम्पराओं का बौद्धिकता की कसौटी पर स्वीकार-अस्वीकार, जय-पराजय और क्षणवाद तथा लघुमानव की वकालत आदि विषयों को कविता के लिए चुना। साथ ही नयी कविता ने अभिव्यक्ति के लिए, छन्द के बन्धनों को तोड़ दिया। गद्य और पद्य के समन्वय के साथ अपने आपको सहज और सरल रूप में पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया जिसके परिणाम स्वरूप नयी कविता लोक भाषा के माध्यम से पाठकों के साथ आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करने के लिए निरंतर प्रयासरत रही है। प्रमुख रूप से कहा जाये तो नयी कविता अपने युग की प्रकृति के अनुरूप रचने वाली कविता है।

नयी कविता के प्रमुख कवियों का सम्बन्ध प्रयोगवाद से रहा है जो बाद में नयी कविता में निरन्तर लिखते रहे हैं। प्रयोगवाद के जन्मदाता अज्ञेय और मुक्तिबोध दोनों प्रयोगवाद के ही नहीं बल्कि नयी कविता के भी प्रमुख कवि थे। इन्होंने अपनी कविताओं में नए विषय और शिल्प के माध्यम से नयी कविता को समृद्ध किया। नयी कविता के कवियों ने हमेशा नये विषयों की खोज की, चाहे इसके लिए इन्होंने देश-विदेश की पृष्ठभूमि से ही अपने विषयों को क्यों ना उठाया हो। नयी कविता के शुरूआती दौर में राजनीतिक

¹ डॉ. विजय द्विवेदी, नयी कविता: स्रोत और सिद्धांत, पृ.सं.- 14

विरोध धीमा था। इस कमी को जहाँ शमशेर बहादुर सिंह और दुष्यंत कुमार सरीखे कवियों ने पूरा किया, तो वहीं रघुवीर सहाय और केदारनाथ सिंह जैसे कवियों ने आम आदमी को प्रतिष्ठित करने का काम किया, साथ ही प्रकृति के एक नये सौन्दर्य से भी परिचित कराया। नयी कविता में शिल्प के प्रति आकर्षण प्रयोगवाद के कारण है क्योंकि नूतन अर्थ व्यंजना वाले शब्द और नये उपमान और प्रतीकों के प्रति प्रयोगवाद का मोह रहा है। अज्ञेय ने अपनी कविता में लिखा भी है कि ‘ये उपमान मैले हो गये हैं। देवता इन प्रतीकों से कूच कर गये हैं और कभी वासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।’¹ शिल्प का महत्व देने वाले नए कवियों में अजीत कुमार, वीरेन्द्र जैन, लक्ष्मीकान्त वर्मा, गिरिजा कुमार माथुर और धर्मवीर भारती आदि प्रमुख हैं। हाँ, ये दूसरी बात है कि नयी कविता के कवि शिल्प के स्तर पर कितने सफल और असफल हुए हैं यह भी अध्ययन का विषय है। नयी कविता के स्तम्भ कवियों में अज्ञेय, मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह, कुंवरनारायण, लक्ष्मीकान्त वर्मा, जगदीश गुप्त, रामदरश मिश्र, श्रीकान्त वर्मा, धूमिल, राजकमल चौधरी, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, विजयदेव नारायण साही, शमशेरबहादुर सिंह, धर्मवीर भारती, भवानी प्रसाद मिश्र, नरेश मेंहता और दुष्यंत कुमार आदि नाम प्रमुख हैं।

2.3 नयी कविता और दुष्यंत कुमार का काव्य

यूँ तो साहित्य की किसी विधा को तय प्रवृत्ति अथवा विशेषता में बांधना संभव नहीं है। किन्तु उसके मुख्य स्वर और स्वरूप की पहचान करना अध्येताओं का दायित्व हो जाता है। आलोचकों ने नयी कविता को स्थापित करने के लिए समय-समय पर अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार इसकी प्रवृत्तियों को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। मैं यहाँ आलोचकों द्वारा नयी कविता के संदर्भ में बताई गयी प्रवृत्तियों को सार रूप में ग्रहण करके दुष्यंत कुमार की कविताओं का विवेचन-विश्लेषण किया जायेगा। एक बात स्पष्ट करना आवश्यक है कि ये प्रवृत्तियाँ नयी कविता की अंतिम अथवा पूर्ण प्रवृत्ति नहीं अपितु प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। इनके अध्ययन से नयी कविता के सन्दर्भ में दुष्यंत कुमार की कविताओं के अधिकांश पक्षों का अध्ययन सुनिश्चित हो जाएगा। हम यहाँ प्रवृत्ति केन्द्रित बिन्दुवार अध्ययन के द्वारा दुष्यंत कुमार की कविताओं को ‘नयी कविता’ के संदर्भ में समझने का प्रयास करते हैं-

2.3.1 कथ्य की व्यापकता और दृष्टि की उन्मुक्तता- नयी कविता ने व्यक्ति के जीवन से संबंधित कई विषयों को पहली बार व्यापक स्तर पर उठाया है इसलिए नयी कविता का स्वर विभिन्न रूपों में सुनाई

¹ अज्ञेय, ‘कलगी बाजरे की’ शीर्षक कविता(‘हरी घास पर क्षण भर’ कविता संग्रह), कविता कोश, 10/04/2021

देता है। नयी कविता के कवियों ने जितनी विविधता के साथ अपने जीवन को जिया है, उतनी ही विविधता उनकी कविता में भी देखने को मिलती है। नयी कविता ने जीवन को जीवन के रूप में ही देखने का प्रयास किया है। वह जीवन को किसी कल्पना लोक से नहीं जोड़ती है। वह जीवन को सम्पूर्णता में स्वीकार करती है। उसके लिए जीवन का कोई भी अंश त्यागने योग्य नहीं है। वह व्यक्ति को उसकी अच्छाई और बुराई के साथ स्वीकार करती है। दूसरी ओर नयी कविता के कवि अपने ऊपर छायावाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद आदि के प्रभाव को स्वीकार नहीं करते हैं अर्थात् वे किसी भी बने-बनाये रास्ते पर चलने का समर्थन नहीं करते हैं। नयी कविता और उसके कवि बहते हुए पानी के समान हैं जिन्होंने अपना रास्ता स्वयं निर्धारित किया है, जिसके कारण नयी कविता का क्षेत्र अपनी पूर्ववर्ती कविताओं से व्यापक हो गया है। ऐसा भी नहीं है कि नयी कविता अपनी पूर्ववर्ती कविताओं से पूर्णतः अलग है। नयी कविता ने पुराने जीवन मूल्यों को नये दृष्टिकोण के साथ स्वीकार किया और जो स्वीकार करने योग्य नहीं थे उन्हें अस्वीकार कर दिया। इस संदर्भ में डॉ. देवराज लिखते हैं कि, “अपने वैज्ञानिक दृष्टिकोण के कारण ही नयी कविता ने परम्परागत आध्यात्मिकता व ईश्वर तथा धर्म सम्बन्धी स्थापनाओं को स्वीकार नहीं किया, उसकी मान्यता है कि धर्म और ईश्वर सम्बन्धी धारणाएँ मनुष्य के सामाजिक अन्तःकरण और नैतिक संवेदनशीलता को कमजोर बनाती है।”¹ इसलिए नयी कविता ने धर्म, दर्शन, नीति और आचार-विचार आदि सभी जीवन-मूल्यों को नये दृष्टिकोण से जांचा-परखा है। उसने जीवन को नयी अनुभूति, चिंतन और उन्मुक्तता से छुआ है। नयी कविता ने निम्न और मध्यम वर्ग के व्यक्तियों को कविता का विषय बनाकर, उन्हें स्थापित किया है। दुष्यंत कुमार की कविता का क्षेत्र व्यापक तो है ही, साथ ही यह नये दृष्टिकोण की कविता भी है। दुष्यंत अपनी कविता में जिन्दगी की तलाश करते नजर आते हैं। वे अपनी ‘जिन्दगी कहाँ?’ शीर्षक कविता में लिखते हैं-

“जिन्दगी दिखाई देती है
कब्रों में या दरगाहों में
मंदिरों में या श्मशानों में
मिट्टी से दबी हुई
मिट्टी में मिली हुई
पूजा के बोलों पर काँपती

¹ देवराज, नयी कविता, पृ.सं.- 72

या घुटनों के बल झुकी हुई”¹

2.3.2 अनुभूति की सच्चाई तथा यथार्थबोध- नयी कविता के कवियों ने समाज में रहकर जैसा जीवन जिया और देखा, उसे वैसी ही सच्ची और यथार्थ अनुभूति के साथ व्यक्त किया है। नयी कविता ने व्यक्ति से सम्बन्धित छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी अनुभूति को कविता के विषय रूप में स्वीकार किया है। जीवन की अनुभूति को कवि बिना किसी मिर्च-मशाले के यथार्थ रूप में कविता में व्यक्त करता है। कविता को पढ़ते समय पाठक को आत्मीयता की अनुभूति होती है। इस संदर्भ में मनोज भारती अपने ब्लॉग ‘बूंद-बूंद इतिहास’ में नयी कविता के विषय में लिखते हैं कि, “अनुभूति क्षण की हो या समूचे काल की, किसी सामान्य व्यक्ति (लघुमानव) की हो या विशिष्ट पुरुष की, आशा की हो या निराशा की वह सब कविता का कथ्य है। समाज की अनुभूति कवि की अनुभूति बन कर ही कविता में व्यक्त हो सकती है। नई कविता इस वास्तविकता को स्वीकार करती है और ईमानदारी से उसकी अभिव्यक्ति करती है। इसमें मानव को उसके समस्त सुख-दुखों, विसंगतियों और विडंबनाओं को उसके परिवेश सहित स्वीकार किया गया है। इसमें न तो छायावाद की तरह समाज से पलायन है और न ही प्रयोगवाद की तरह मनोग्रंथियों का नग्न वैयक्तिक चित्रण या घोर व्यक्तिनिष्ठ अहंभावना। यह कविता ईमानदारी के साथ व्यक्ति की क्षणिक अनुभूतियों को, उसके दर्द को संवेदनापूर्ण ढंग से अभिव्यक्त करती है”² दुष्यंत कुमार की कविता में अनुभूति की सच्चाई स्पष्ट रूप से दिखाई देती है क्योंकि इन्होंने समाज में रहकर जो देखा और भोगा, उसे पूरी ईमानदारी और यथार्थ के साथ अपनी कविता में व्यक्त किया है। इस संदर्भ में धर्मवीर भारती जी लिखते हैं कि, “दुष्यंत की कविता न कमल और गुलाब है, न कैक्टस यानी नागफनी या थूहरा वह तो उस गेंदे की तरह है जिसकी प्रत्येक जमीन अपनी है और जिसे हर ऋतु और मौसम में खिलना, खुलना और महकना है। हवा-धूप, सर्दी-गरमी, घटा और मेंघ के आते-जाते गतिशील रूपों और व्यापारों को सहना ही नहीं, उनके साथ निरंतर सहज संवाद करते हुए अपनी अथक जीवनी-शक्ति का प्रणाम देते रहना है।”³ और दुष्यंत ‘जभी तो’ शीर्षक कविता में लिखते हैं कि-

“नफरत औ’ भेद-भाव

केवल मनुष्यों तक सीमित नहीं रह गया है अब

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार की रचनावली- 1, पृ.सं.- 333

² मनोज भारती, ‘बूंद-बूंद इतिहास’ ब्लॉग पेज, 21 अगस्त, 2012

³ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार की रचनावली- 1, पृ.सं.- 97

मैंने महसूस किया है/ मेरे घर में ही
 बिजली का सुंदर औ' भड़कदार लट्टू-
 कुरसी के टूटे हुए बेंत पर/ खस्ता तिपाई पर,
 फटे हुए बिस्तर पर, छिन चारपाई पर,
 कुम्हलाए बच्चों पर,/ अधनंगी बीवी पर
 रोज व्यंग करता है,/ जैसे वह कोई 'मिल-ओनर' हो।"¹

2.3.3 विसंगति और विडम्बना- स्वतंत्रता के बाद भारत की सरकारों ने देशवासियों को तरह-तरह के सपने दिखाए लेकिन ये सपने समय के साथ-साथ टूटते चले गये। जिसके कारण भारतीय समाज में विसंगति और विडम्बनाओं का उभार देखने को मिलता है क्योंकि इसके कारण सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक आदि स्तर पर समाज में विरोधाभास स्पष्ट रूप से दिखने लगा। यह वह दौर था जब जनता का भारतीय सरकारों द्वारा दिखाये गए मनमोहक सपनों से मोहभंग होने लगा था। परिणाम स्वरूप नयी कविता में आक्रोश, नाराजगी, घृणा और विद्रोह आदि की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। दुष्यंत कुमार की कविताओं में समाज में फैली विडम्बना और विसंगति देखने को मिलती है। स्वतंत्रता के बाद देशवासियों ने जो सपने संजोये थे देश का माहौल उसके विपरीत बन रहा था। देश के लोग अपने आपको ठगा हुआ महसूस करने लगे। देश की सरकारों ने जनता की मूलभूत जरूरतों को पूरा नहीं किया जिसका परिणाम भी जनता को ही भोगना पड़ा। जिसके विषय में दुष्यंत कुमार जी अपने 'एक कंठ विषपायी' काव्य नाटक के 'सर्वहत्' पात्र से कहलवाते हैं-

“क्योंकि यह
 विधाता के नियमों की विडम्बना है।
 चाहे न चाहे/ किंतु
 शासक की भूलों का उत्तरदायित्व

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार की रचनावली-1, पृ.सं.- 351

प्रजा को वहन करना पड़ता है,
उसे गलित मूल्यों का दंड भरना पड़ता है।
और मैं मनुष्य नहीं हूँ
मैं प्रजा भी हूँ।”¹

2.3.4 द्वन्द्व और संघर्ष- नयी कविता में द्वंद और संघर्ष का स्वर स्पष्ट रूप से सुनाई देता है, क्योंकि नयी कविता आत्मसंघर्ष की कविता है जिसमें व्यक्ति अपने लघु अस्तित्व को बचाने के लिए परम्पराओं और आधुनिकता के द्वंद से निरंतर संघर्ष करता दिखाई देता है। नयी कविता में व्यक्त इस द्वंद के विषय में मुक्तिबोध लिखते हैं कि, “आज की कविता, किसी न किसी प्रकार से, अपने परिवेश के साथ द्वन्द्व स्थिति में उपस्थिति होती है, जिसके फलस्वरूप यह आग्रह दुर्निवार हो उठता है कि कवि हृदय द्वंद्वों का भी अध्ययन करे, अर्थात् वास्तविकता में बौद्धिक दृष्टि द्वारा भी अन्तःप्रवेश करे, और ऐसी विश्व दृष्टि का विकास करे, जिससे व्यापक जीवन जगत की व्याख्या हो सके, तथा अंतर्जीवन के भीतर के आन्दोलन, आर-पार फैली हुई वास्तविकता के संदर्भ से, व्याख्यायित, विश्लेषित और मूल्यांकित हों।”² नयी कविता का यह संघर्ष सामाजिक समस्याओं को उठाता है। साथ ही व्यवस्था और व्यक्ति के बीच के संघर्षों से उत्पन्न प्रश्नों पर नयी कविता विस्तार से चर्चा करती है। नयी कविता में समाज में उत्पन्न हुई विषम परिस्थितियों को बदलने की छटपटाहट भी दिखती है। दुष्यंत कुमार ने समाज में फैले द्वन्द्व और संघर्ष को अपने काव्य नाटक में बड़े स्तर पर उठाया है। इनके काव्य नाटक के ज्यादातर पात्र खंडित मूल्यों को संजोये रखना चाहते हैं जिसके परिणाम स्वरूप पात्रों में द्वन्द्व और संघर्ष देखने को मिलता है। नाटक में सती द्वारा शंकर से प्रेम विवाह किये जाने के कारण, राजा दक्ष अपने को अपमानित अनुभव करते हैं। ये सब उनके परम्परा और खंडित मूल्यों से चिपके रहने के कारण होता है। दुष्यंत नाटक में लिखते हैं-

“शंकर! शंकर!!

वह, जिसने घर की परम्परा तोड़ी है,

वह, जिसने मेरे यश पर कालिख पोती है,

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार की रचनावली- 2, पृ.सं.- 58

² गजानन माधव मुक्तिबोध, नयी कविता का आत्मसंघर्ष, पृ.सं.- 44

जिसके कारण/ मेरा माथा नीचा है सारे समाज में

मेरे ही घर में अतिथि रूप में आए?

यह तुम क्या कहती हो?”¹

2.3.5 लोकोन्मुखता और मानववादी चेतना- नयी कविता में लोकोन्मुखता और मानववादी चेतना की प्रवृत्ति पायी जाती है और इसका यह मतलब नहीं है कि इससे पहले की कविताओं में लोकोन्मुखता और मानववादी चेतना की प्रवृत्ति नहीं थी। नयी कविता के विषय में आशय है कि इसमें पहली बार लोक के उन विषयों पर कविता लिखी गई जिन्हें कविता का विषय बनाना पूर्ववर्ती कवियों ने महत्वपूर्ण नहीं समझा, जिन्हें निम्न स्तर का समझा गया। नयी कविता में लोक जीवन के बिम्बों और प्रतीकों का सुंदर, सजीव, प्रभावी और संवेदनापूर्ण चित्रण देखने को मिलता है। इन कविताओं को पढ़कर ऐसा लगता है जैसे यह अनुभूति कवि की न होकर स्वयं पाठक की ही हो क्योंकि इसमें प्रकृति और ग्रामीण जीवन के मनमोहक बिम्ब देखने को मिलते हैं। साथ ही नयी कविता के कवियों ने मानववादी चेतना को भी विशेष महत्व दिया है। नयी कविता में मानवीय मूल्यों को नयी तरह से स्थापित करने का प्रयास किया गया है। दुष्यंत कुमार की कविताओं में लोक की गहरी अनुभूति कथ्य और शिल्प दोनों स्तर पर है। ‘सूर्यास्त : एक इम्प्रेशन’ शीर्षक कविता में प्रकृति का मोहक बिम्ब देखने को मिलता है-

“सूरज जब/ किरणों के बीज-रत्न

धरती के प्रांगण में/ बोकर/ हारा-थका/ स्वेद-युक्त

रक्त-वदन/ सिंधु के किनारे/निज थकान मिटाने की

नए गीत पाने को/ आया,

तब निर्मम उस सिंधु ने डुबो दिया,

ऊपर से लहरों की अँधियाली चादर ली ढाँप

और शांत हो रहा।”²

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार की रचनावली- 2, पृ.सं.- 30

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार की रचनावली- 1, पृ.सं.- 360

2.3.6 वादमुक्तता- नयी कविता किसी 'वाद' या 'परम्परा' की लीक पर चलने का समर्थन नहीं करती है, बल्कि उसने स्वतंत्र रूप से अपना रास्ता स्वयं चुना है। जो नयी कविता की बहुत बड़ी विशेषता है। नयी कविता कवि को अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप विषय और शिल्प के स्तर पर भाषा, मुक्तछंद, बिम्ब और प्रतीक आदि को चुनने की स्वतंत्रता देती है इसलिए नयी कविता को वादमुक्ति की कविता कहा जाता है। नयी कविता के पहले की कविता किसी न किसी 'वाद' से जुड़ी हुई थी। इन 'वादों' से आगे बढ़कर नयी कविता लिखी गयी है। नया कवि 'वादों' में न उलझकर सीधे-सीधे समाज की समस्याओं का चित्रण कविता में करने के लिए आतुर दिखता है, लेकिन नया कवि किसी साहित्यिक परम्परा का विरोध नहीं करता है। नयी कविता के ज्यादातर कवियों का सम्बंध पिछली साहित्यिक परम्पराओं से भी रहा है जिसका प्रभाव नयी कविता पर स्पष्ट दिखता है। यह प्रभाव नयी कविता पर बोझ नहीं है। इस संदर्भ में डॉ. देवराज लिखते हैं कि, "नयी कविता सचेत कविता है और वह किसी भी वाद की संकीर्णता को स्वीकार नहीं करती है। यह तो कहा जा सकता है कि नयी कविता में विविध वादों से सम्बद्ध रचनाएँ हुई हैं किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि उसने किसी विचारधारा विशेष का समर्थन किया है या उसे मानव-कल्याण का अंतिम उपाय घोषित करके एक ही दिशा में बढ़ना प्रारम्भ कर दिया है।"¹ दुष्यंत कुमार की कविताओं पर किसी भी वाद का प्रभाव नहीं है। स्वयं दुष्यंत भी किसी साहित्यिक परम्परा से अपने आप को अलग मानते हैं।

2.3.7 अतिवैक्तिकता- नयी कविता में सामाजिकता के स्थान पर वैक्तिकता की अभिव्यक्ति अधिक दिखती है, यह वैक्तिकता कविता के कथ्य और शिल्पगत स्तर पर मौजूद है। नयी कविता का कवि अधिक स्वतंत्र होने के कारण वैक्तिक हो गया है। परिणाम स्वरूप नयी कविता में वैक्तिक अभिव्यक्ति अधिक दिखाई देती है। समाज में बढ़ते अजनबीपन और परायापन के चलते व्यक्ति आत्म केन्द्रित होता जा रहा है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति पर विश्वास करने के लिए तैयार नहीं है क्योंकि स्वतंत्रता के बाद मानवीय मूल्यों का तेजी से पतन हुआ। जिसका असर नयी कविता में अति वैक्तिकता के रूप में सामने आता है। वैयक्तिकता के संदर्भ में जगदीश गुप्त लिखते हैं कि, "नयी कविता समाज की सजीव एवं सजग इकाई के रूप में व्यक्ति को प्रधानता देती है। व्यक्ति के माध्यम से ही वह लोक मंगल तक पहुँचना चाहती है। ऐसी व्यवस्था को जिसमें व्यक्ति अपनी सार्थकता और सजगता खो दे, वह समाज के लिए कल्याणकारी नहीं

¹ देवराज, नयी कविता, पृ.सं.- 80

समझती।”¹ एक अन्य जगह गुप्त जी नयी कविता की वैयक्तिकता के विषय में लिखते हैं कि, “नयी कविता हृदय तक ही संसार को सीमित कर लेने के विचार से प्रेरणा ग्रहण नहीं करती। उसकी वैयक्तिकता छायावाद की वैयक्तिकता से भिन्न है। वह संसार को उस के यथार्थ रूप में ग्रहण करते हुए मानव-मात्र के हृदय और बुद्धि दोनों पक्षों को युगानुरूप एक नवीन अन्विति में ढाल देने की कल्पना करती है और अपनी प्रेरणा किसी स्वप्न से नहीं जाग्रत जीवन से सर्वतोमुखी विषय संघर्ष ग्रहण करती है।”² दुष्यंत कुमार की कविताओं में वैयक्तिकता की अनुभूति तो होती है लेकिन यह वैयक्तिकता सामाजिकता के ज्यादा करीब दिखती है। दुष्यंत की पीड़ा अपनी होते हुए भी जनसामान्य की ज्यादा लगती है। इस संदर्भ में ‘व्यक्तिवाद’ शीर्षक कविता को देखा जा सकता है-

“चारों दिशाओं में व्याप्त
दुःख-भरे कलापों की आकृतियाँ
तुम्हारी पुतलियों में नहीं सिहरती हैं
अंतर का शून्य तुम्हे सहलता है।
पैरों के तले बिछी/ रौंधी हुई घास-सी धरती
पग-पग तुम्हें हुलहुलाती है
यही दर्द मुझको इस सीमा के/ बाहर निकालता है।”³

2.3.8 व्यंग्यात्मकता- नयी कविता में गहरे और तीखे व्यंग्य की प्रवृत्ति देखने को मिलती है। इससे पहले की कविता में व्यंग्य दिखता है लेकिन नयी कविता का व्यंग्य खंजर के समान सीने में उतरता चला जाता है। नयी कविता ने सीधे समस्या को चित्रित न करके, उस समस्या के मूल में जाकर व्यवस्था पर सीधा वार किया है जो उसके लिए दोषी है। नयी कविता के व्यंग्य का क्षेत्र व्यापक है। नये कवि ने मोहभंग की स्थिति, राजनीतिक अराजकता, सामाजिक रूढ़ियाँ, मान्यता और परम्परा, धार्मिक कर्मकांड और क्रिया-कलाप, भ्रष्टाचारी और खोखली व्यवस्था तथा स्वतंत्रता के बाद की समसामयिक समस्याओं आदि विषयों

¹ जगदीश गुप्त, नयी कविता स्वरूप और समस्याएँ, पृ.सं.- 216

² जगदीश गुप्त, नयी कविता स्वरूप और समस्याएँ, पृ.सं.- 202

³ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार की रचनावली- 1, पृ.सं.- 393

पर व्यंग्यात्मक कविता लिखी है। दुष्यन्त कुमार की कविता आम आदमी की कविता है। आम आदमी की पीड़ा और समस्याओं के लिए जिम्मेदार ताकतों पर कवि व्यंग्य रूपी वर्षा अपनी कविता में करता है। तथाकथित देशप्रेमियों पर व्यंग्य करते हुए, कवि 'देश-प्रेम' कविता में लिखते हैं-

“जब लोग घंटो राष्ट्र के नाम पर आँसू बहाते हैं
मेरी आँख में एक बूंद पानी नहीं आता है।
अकसर ऐसा लगता है कि मातृभूमि पर मरने के लिए
भाषणों से भरी सभाओं/ और प्रदर्शन की भारी भीड़ में
लगता है कि मैं ही हूँ मूर्ख/ कायर-गद्दार!!
मुझे ही सुनाई पड़ता है/ देश-प्रेम,
जो संकट आते ही/ समाचार-पत्रों में डोंडी पिटवाकर
कहलाया जाता है-/ बार-बार”¹

2.3.9 क्षणवाद- नयी कविता ने एक क्षण से लेकर एक काल विशेष को भी कविता का विषय बनाया है। व्यक्ति जीवन के एक-एक क्षण को जीना चाहता है। साथ ही एक क्षण अपने आप में स्वतंत्र और महत्वपूर्ण होता है इसलिए क्षणवादी चेतना जीवन का महत्वपूर्ण अंश बनती है। आज जीवन इतनी तेजी से बदल रहा है कि व्यक्ति जिस संवेदना को एक क्षण महसूस करता है अगले ही क्षण उसके चेतन मन में दूसरी संवेदना घर कर जाती है, इसलिए नयी कविता एक क्षण को भी अभिव्यक्त करती है। इस संदर्भ में डॉ. देवराज लिखते हैं कि, “नयी कविता में क्षणवाद की यह सम्पूर्ण प्रक्रिया व्यक्ति के आज के गतिमय जीवन को लेकर काफी तेज है। क्षण कालहीन होता है, उसमें सत्य और यथार्थ के साक्षात्कार की सर्वाधिक गहन गति होती है, उसमें अगले क्षण की प्रेरणा छिपी होती है, यह सत्य की उपलब्धि कराता है, इसमें आत्माभिव्यक्ति का सूक्ष्म रूप विद्यमान होता है, आदि सिद्धांत क्षणवाद के संदर्भ में स्थापित किए गए हैं।”² डॉ नगेन्द्र क्षणवाद को नयी कविता से जोड़ते हुए लिखते हैं कि, “नयी कविता जीवन के एक-एक क्षण को सत्य मानती है और उस सत्य को पूरी हार्दिकता और पूरी चेतना से भोगने का समर्थन करती है। क्षण-बोध

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार की रचनावली- 2, पृ.सं.- 167

² देवराज, नयी कविता, पृ.सं.- 81-82

शाश्वत बोध का विरोधी नहीं, उसे प्राप्त करने की यथार्थ प्रक्रिया है। क्षणों में दिखायी पड़ने वाला जीवन-सौन्दर्य, क्षणों में अनुभूत होने वाली जीवन की व्यथा या उल्लास, क्षणों में लक्षित होने वाली मनः स्थिति या बाह्य व्यापार, क्षणों की सीमा में स्फुर्जित हो जाने वाला कोई सत्य छोटा नहीं है। अनुभूति-शून्य, व्यथारिक्त इतिहास असत्य है, निरर्थक हैं। इसलिए नयी कविता अनुभूतिपूर्ण गहरे क्षण, प्रसंग, व्यापार या किसी भी सत्य को उसकी आन्तरिक मार्मिकता के साथ पकड़ लेना चाहती है। इस प्रकार जीवन के सामान्य-से-सामान्य दीखने वाले व्यापार या प्रसंग नयी कविताओं में नया अर्थ पा जाते हैं।¹ दुष्यंत कुमार की कविताओं में एक क्षण से लेकर काल विशेष की अनुभूति को विषय बनाया गया है। इस संदर्भ में ‘तीन मनःस्थितियाँ’ शीर्षक कविता को देखा जा सकता है-

“सामने खिलती नए आलोक की-सी रेख

मैं कि जिसकी छह में सारी व्यथाएँ फेंक

एक युग के लिए जीता एक क्षण की देख

वही पीड़ित हास्य बनकर अश्रु ढलने को

मुझे उकसाता परिस्थितियाँ बदलने को।”²

2.3.10 अतियथार्थवाद- नयी कविता का कवि कल्पना की ऊँची उड़ान नहीं भरता है बल्कि भोगे हुए जीवन को यथार्थ रूप में कविता में प्रस्तुत करता है। नयी कविता का यथार्थ अपनी पूर्ववर्ती कविताओं के यथार्थ से अलग है जिसके संदर्भ में डॉ. अमरनाथ लिखते हैं कि, “नये कवियों का मानना है कि संपूर्ण यथार्थ से हमारा सरोकार न होकर केवल उतने से है, जितने को अनुभव किया या भोगा है। इसी अर्थ में यह यथार्थ पहले के यथार्थ से भिन्न है। यथार्थ तो प्रेमचन्द का भी था, प्रगतिवादियों का भी था, उससे पहले के साहित्य का भी था। लेकिन उस यथार्थ में बुराई यही थी कि वह निजी अनुभव के एकांत क्षणखंडों से बाहर जाकर समाज और मनुष्य की बात करता था। वास्तविक यथार्थ का उद्घाटन तो इन नये कवियों ने किया है। यथार्थ वह है जिसे व्यक्ति ने भोगा हो, बाकी सब अयथार्थ है।”³ नयी कविता में व्यक्ति

¹ डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.सं.- 614

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार की रचनावली- 1, पृ.सं.- 318

³ डॉ. अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृ.सं.- 260-261

के जीवन-संघर्ष को सुख-दुःख, जीत-हार और भय-वितृष्णा आदि के साथ, उसी रूप में प्रस्तुत किया गया है जिस रूप में व्यक्ति ने भोगा है।

दुष्यंत कुमार की कविताओं में यथार्थवादी प्रवृत्ति पायी जाती है। उन्होंने समाज में आम आदमी की पीड़ा, दुःख, दर्द, शोषण, अन्याय और अत्याचार आदि को देखा और भोगा है। साथ ही समाज में फैली अशांति, गरीबी, बेरोजगारी, अनीति और भ्रष्टाचार आदि समस्याओं को निर्भिक होकर अपनी कविताओं में यथार्थ रूप में उठाया है। कवि ने 'सत्य के लिए' शीर्षक कविता में बिहार प्रान्त में पड़े अकाल से होने वाली त्रासदी का यथार्थ चित्रण किया है-

“त्रस्तजन-मन को मथता/ जन का हाहाकार

अन्न को लिए तरसता/ उत्तर, मध्य प्रदेश

मृत्यु के तट पर बैठा/ जर्जर बुद्ध विहार

देश में व्याप्त तरुण विक्षोभ/ समाजोन्मुख चेतना विलुप्त”¹

2.3.11 बौद्धिकता- “नयी कविता बौद्धिकता की छाया में विकसित हो रही है, अतः उसमें एक अन्तर्निहित आलोचनात्मकता मिलती है: यथार्थ चित्रण का आग्रह, सूक्ष्म व्यंग्य तथा शैलीगत वैचित्र्य एवं नये-नये अर्थों को ध्वनित करने वाला अभिनव प्रतीक-विधान आदि जिन्हें नयी कविता की प्रमुख विशेषताएँ कही जा सकती हैं, सभी के पीछे प्रेरणा का बुद्धिगत रूप स्पष्ट झलकता है।”² बौद्धिकता नयी कविता की बड़ी विशेषता है। नयी कविता हृदय की अपेक्षा मस्तिष्क से अधिक काम लेती है। नयी कविता में विचारों के साथ-साथ बौद्धिकता का संतुलित समावेश देखने को मिलता है इसलिए नयी कविता विवेक और सतर्कता की कविता है। नया कवि जीवन में आने वाली समस्याओं के लिए भगवान या भाग्य को दोष न देकर, स्वयं व्यक्ति को ही उसके लिए उत्तरदायी मानता है। साथ ही इन समस्याओं को व्यक्ति ही हल कर सकता है। नयी कविता कई बार बौद्धिकता के कारण सहज, सरल और सरसता के स्थान पर सूखी सी लगती है लेकिन दुष्यंत कुमार की कविताओं में बौद्धिकता होने के बावजूद वह सूखी नहीं लगती है जिसके विषय में प्रभाकर क्षोत्रिय लिखते हैं कि, “दुष्यंत समाज और व्यक्ति की अंतर्रचना के ऐसे साक्षी कवि हैं, जिनमें पारदर्शी आधुनिक संवेदन और बौद्धिक परिष्कृति एक साथ है। रोमानी आत्मराग उनके संपूर्ण सृजन

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार की रचनावली- 1, पृ.सं.- 435

² जगदीश गुप्त, नयी कविता स्वरूप और समस्याएँ, पृ.सं.- 102

में इस तरह बिंधा है कि उनकी कविताएँ बौद्धिकता के बावजूद प्रिय हुई और रागात्मकता के बावजूद नई”¹
इस संदर्भ में ‘परम्परा’ शीर्षक कविता को देखा जा सकता है-

“भौतिक समस्याएँ/ उत्तर बन आती हैं

मेरी तुम्हारी समस्या का/ प्रश्न रह जायेगा

एक मर्यादा का हाथ/ बढ़ा आता है

मुझे गुदगुदाता है/ मन उदास होने न पाएगा।

ऐसी परिस्थिति को/ मेरे मनोबल

भला कब तक सहेंगे/ लगता है होगा

इस बार भी वही केवल/ प्रश्न मिट जायेंगे उत्तर रहेंगे।”²

2.3.12 आधुनिकता बोध- आधुनिकता बोध नयी कविता की एक महत्वपूर्ण विशेषता है क्योंकि नयी कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि आधुनिकता बोध से अधिक प्रभावित है। नयी कविता में आधुनिकता के जिस रूप को अपनाया गया है उसका परम्परा से कोई सम्बन्ध नहीं है। ना ही किसी परम्परा का विरोध करना उसका लक्ष्य होता है। वह केवल उन परम्पराओं, मान्यताओं, रूढ़ियों, रीति-रिवाजों और जीवन मूल्यों आदि का विरोध करती है जो व्यक्ति या समाज के विकास में अवरोध उत्पन्न करती हैं। इस संदर्भ में राजी सेठ लिखती हैं कि, “आधुनिकता एक निरंतर ऐतिहासिक वर्तमान है, जो वस्तुओं और स्थितियों के प्रति निष्ठावान है, जिसके मूल में एक ऐसी संघर्षशील दृष्टि है, जो जीवन-मूल्यों के रूढ़ या निष्प्राण हो जाने का विरोध करती है और नये सार्थक प्रतिमानों की स्थापना करना चाहती है।”³ नयी कविता आधुनिक व्यक्ति की कविता है। आधुनिकताबोध और नयी कविता के सम्बंध में मुक्तिबोध लिखते हैं कि, “नयी कविता की आत्मा है आधुनिक भाव-बोध। आज का सुशिक्षित मनुष्य अपने परिवेश-परिस्थितियों से जो संवेदनात्मक प्रतिक्रियाएँ करता है, वे संवेदनात्मक प्रतिक्रियाएँ या उनका सामान्यीकरण नयी कविता में प्रकट होता है। ऐसे सुशिक्षित मनुष्य का दृष्टिकोण मध्ययुगीन धार्मिक दृष्टि से अनुप्राणित अथवा छायावादी

¹ ‘मधुमती’ पत्रिका, अंक-जनवरी, 1977, पृ.सं.- 175

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार की रचनावली- 1, पृ.सं.- 398

³ देवराज, नयी कविता, पृ.सं.- 82

भावुकता से परिपूर्ण कल्पना-प्रधान (मैं दृष्टि की बात कर रहा हूँ) नहीं होता। विज्ञान के इस युग में, उसकी दृष्टि यथार्थोन्मुख तथा संवेदनशील होती है।”¹ दुष्यंत कुमार की कविताओं में आधुनिकताबोध स्पष्ट झलकता है। इन्होंने अपनी कविताओं में आधुनिक जीवन की समस्याओं को उठाया है। कवि ने आधुनिक समस्याओं का चित्रण करने के लिए पौराणिक कथ्यों को भी माध्यम बनाया है। दुष्यंत का ‘एक कंठ विषपायी’ काव्य नाटक इसका प्रमाण है। ‘दिग्विजय का अश्व’ शीर्षक कविता में आधुनिक बोध को देखा जा सकता है-

“अस्तबल में बंधा यह निर्वाक प्राणी!

उस ‘चमेंली’ गाय के बछड़े सरीखा

आज बंधन हीन होकर/ यहाँ कितना रम गया है!

यह कि जैसे यहीं जन्मा हो, पला हो।

आज है कटिबद्ध हम सब/ फावड़े लाठी संभाले।

कृष्ण, अर्जुन इधर आएँ/ हम उन्हें आने न देंगे

अश्व ले जाने न देंगे।”²

2.3.13 कुंठाओं और वर्जनाओं से मुक्ति का सन्देश- नयी कविता का विषय क्षेत्र इतना व्यापक है कि वह समाज में फैली कुंठाओं और वर्जनाओं को भी तोड़ती है। साथ ही उन्हें कविता का विषय बना, यथार्थ की कसौटी पर कसकर कविता में अभिव्यक्त करती है। वह आदर्श की बात नहीं करती है लेकिन अनुभूति के प्रति पूरी ईमानदारी से बात रखती है। नयी कविता ने व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन पर कविता लिखी है इसलिए नयी कविता में कुंठाओं और वर्जनाओं की मुक्ति का स्वर सुनाई देता है। यह स्वर दुष्यंत कुमार की कविताओं में बड़े फलक पर सुनाई देता है लेकिन यह स्वर व्यक्तिगत की अपेक्षा, सामाजिक आधिक लगता है। कवि की ‘कुंठा’ शीर्षक कविता को देखा जा सकता है-

“मेंरी कुंठा/ रेशम के कीड़ों-सी/ ताने-बाने बुनती,

¹ गजानन माधव मुक्तिबोध, नयी कविता का आत्मसंघर्ष, पृ.सं.-119

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार की रचनावली- 1, पृ.सं.- 345

तड़प-तड़पकर/ बाहर आने को सिर धुनती/ स्वर से
 शब्दों से/ भावों से/ औ' वीणा से कहती-सुनती,/ गर्भवती है
 मेरी कुंठा कुंवारी कुंती!/ बाहर आने दूँ
 तो लोक-लाज मर्यादा/ भीतर रहने दूँ/ तो घुटन, सहन से ज्यादा
 मेरा यह व्यक्तित्व/ सिमटने पर आमादा।...
 गर्भवती अपनी कुंठा का कर्ण बहा लूँ
 मुझको इससे मोह नहीं है इसे विदा दूँ।”¹

2.3.14 राजनैतिक चेतना- स्वतंत्रता के बाद भारत की राजनीति बहुत ही उथल-पुथल भरी रही है जिसका प्रभाव नयी कविता पर भी देखा जा सकता है। भारत के नेताओं ने भारतवासियों से वोट मांगने और ठगने के सिवा कोई दूसरा काम नहीं किया है। देश के नेताओं द्वारा किये गये वादे समय की आंधी में न जाने कहां उड़ गये। दुष्यंत कुमार की कविताओं में राजनीतिक चेतना का स्वर बहुत ही मुखर रूप से उभरा है। कवि समाज में उत्पन्न समस्याओं के लिए सरकारों और भ्रष्ट राजनीति को दोषी मानता है। इनकी कविताएँ इसके विपक्ष में खड़ी दिखती हैं। कविताओं में व्यवस्था का विरोध इतना कड़ा है कि इनकी कविताओं की गूँज सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों में सुनाई देती है। स्वयं दुष्यंत अपनी एक गजल में लिखते हैं-

“मेरी जुबान से निकली तो सिर्फ नज़्म बनी,
 तुम्हारे हाथ में आई तो एक मशाल हुई।”²

‘गली से राजपथ पर’ शीर्षक कविता में राजनेताओं के विषय में कवि लिखता है-

“ये गली/ जिसके धड़कते वक्ष पर
 थमें जख्मी पाँव रखकर

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार की रचनावली- 1, पृ.सं.- 335

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार की रचनावली- 2, पृ.सं.- 289

दूर की उन बस्तियों को चले गए अनेक
और उधर से/ लौट पाया नहीं कोई एक
आज तक रख बुद्धि और विवेक/ जीवित है”¹

2.3.15 आशा, विश्वास, वेदना, निराशा और अनास्था- नयी कविता आशा, उम्मीद और विश्वास आदि की कविता है क्योंकि आजादी से पहले भारतवासियों ने जो पापड़ बेले थे, आजादी मिलने के बाद उनकी आँखों में आशा, उम्मीद और विश्वास आदि की चमक आई थी। उन्हें लगा कि देश की परिस्थितियों में बदलाव आयेगा लेकिन सरकारों द्वारा दिखाए गये सपने समय के साथ-साथ टूटने लगे जिसके कारण देश की जनता का मोहभंग होने लगा। परिणामस्वरूप देश में वेदना, निराशा और अनास्था का माहौल बनता गया। इस बनते माहौल से नयी कविता का कवि भी अपने आपको नहीं बचा पाया जिसके परिणाम स्वरूप कविता में उपरोक्त भावों का प्रभाव देखा जा सकता है। दुष्यंत कुमार की ‘शिलालेख’ शीर्षक कविता में, ये सारे भाव एक साथ उपस्थित हैं-

“मैं हूँ वह शिलालेख
विस्फोटातुर ज्वालामुखी पर्वत के अंतर में
बोझ की तहों तले दबा हुआ
जिस पे इस युग की परिभाषाएँ
इच्छाएँ, आशाएँ/ कुंठाएँ, घुटन, वेदनाएँ
सब अंकित हैं”²

2.3.16 नया शिल्प-विधान- नयी कविता के कवियों ने नये विषय के साथ-साथ, कविता रचने के लिए नया शिल्प-विधान भी चुना। शिल्प विधान का यह नयापन शिल्प के प्रत्येक स्तर पर दिखता है। नयी कविता ने भाषा, रस, बिम्ब, प्रतीक, उपमान और छन्द आदि सभी को लोक-भूमि से ग्रहण किया है जिन्हें पढ़कर अपनेपन का भाव आता है। नयी कविता की भाषा बोलचाल की भाषा के करीब है। नये

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार की रचनावली- 1, पृ.सं.- 447

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार की रचनावली- 1, पृ.सं.- 387

कवियों ने किसी भी भाषा के शब्दों से परहेज नहीं किया है। नयी कविता की भाषा पद्यात्मक के स्थान पर गद्यात्मक ज्यादा लगती है। नयी कविता में रसानुभूति के स्थान पर सह-अनुभूति मिलती है। नये कवियों ने कविता के लिए नये प्रतीक, बिम्ब और उपमानों को गढ़ा है। साथ ही उन पुराने प्रतीक, बिम्ब और उपमानों आदि का त्याग कर दिया है जो रूढ़ और गतिहीन हो गये हैं लेकिन कुछ को नये आधुनिकता के साथ ग्रहण भी किया है। नये कवियों ने लय, तुक और छन्द आदि के बंधन से कविता को मुक्त कर दिया है। नये कवि अपनी बात को कविता में प्रभावशाली ढंग से रखने के लिए कविता के किसी भी बंधन से पूरी तरह मुक्त हैं। दुष्यंत कुमार की 'मापदंड बदलो' शीर्षक कविता नये कवि की मंशा को जाहिर करती नजर आती है-

“मैं नया बनने के लिए खराद पर चढ़ रहा हूँ,

लड़ता हुआ

नई राह गढ़ता हुआ आगे बढ़ रहा हूँ”¹

दुष्यंत कुमार द्वारा स्वयं गढ़े प्रतीक और उपमान को 'मैं और मेरा दुःख' शीर्षक कविता में देखा जा सकता है-

“दुःख :/ किसी चिड़िया के अभी जन्मे बच्चे जैसा-सा;

किंतु सुख :/ तमंचे की गोली जैसा

मुझको लगा है।”²

दुष्यंत कुमार की भाषा, बिम्ब और छन्दमुक्तता आदि को 'दिन निकलने से पहले' शीर्षक कविता से जाँच सकते हैं जिसमें आम बोलचाल की भाषा के शब्द और ध्वनि-बिम्ब के सौन्दर्य को देखा जा सकता है-

“मनुष्यों जैसी/ पक्षियों की चीखें और कराहे गूँज रही हैं,

टीन के कनस्तरों की बस्ती में

हृदय की शक्ल जैसी अंगीठियों से

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार की रचनावली- 1, पृ.सं.- 333

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार की रचनावली- 1, पृ.सं.- 342

धूँआ निकलने लगा,/ आटा पीसने की चक्कियों
जनता के सम्मिलित नारों की-सी आवाज़ में
गड़गड़ाने लगी है।”¹

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि विषय, शैली और विचार के जिस नयेपन के साथ नयी कविता का आगमन हुआ दुष्यंत कुमार उस परम्परा के प्रतिनिधि कवियों में से हैं। उनकी कविताओं में नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ मौजूद हैं। दुष्यंत कुमार ने नयी कविता की वैचारिकता को गहराई दी, उनकी शैली ने कविता को आम जन से जोड़ा। नयी कविता जिस तरह से व्यक्ति और समाज दोनों को साथ ले कर चलती है, दुष्यंत की कविता भी इन दोनों को साथ लेकर चली है। दुष्यंत की कविताओं की शक्ति यह भी है कि तात्कालिक समस्याओं पर केन्द्रित उनकी कविताएँ आज भी प्रासंगिक ही हैं। कोई कवि ऐसी रचना अंतर्मन से जनता से जुड़े बिना कर ही नहीं सकता। कह सकते हैं कि दुष्यंत कुमार को पढ़ना नयी कविता को समझने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार की रचनावली- 1, पृ.सं.- 347

तीसरा अध्याय:

साठोत्तरी हिंदी कविता और दुष्यंत कुमार का काव्य

3.1 साठोत्तरी हिंदी कविता की पृष्ठभूमि

किसी भी साहित्य पर अपने तत्कालीन परिवेश की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। भारतीय साहित्य पर भी स्वतंत्रता के बाद के परिवेश का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। सैकड़ों वर्षों की गुलामी के बाद भारतवासियों ने स्वतंत्र भारत में साँस ली थी। भारतवासियों ने अच्छे दिनों की चाहत में देश की कमान नेताओं को सौंपकर, स्वयं आशा, इच्छा, उम्मीद, आकांक्षा और महत्वाकांक्षा आदि के सपने देखने में खो दी। सरकारें आती-जाती रही और योजनाओं के बिन भोली-भाली जनता के नाम पर ठगते रहे लेकिन यह खेल ज्यादा दिनों तक नहीं चल सका। जनता समझ चुकी थी कि सत्ता गोरे अंग्रेजों के जाने के बाद काले अंग्रेजों ने हथिया ली है। जनता के सपने ताश के घरों की तरह ढहने लगे; और परिणाम स्वरूप जनता में निराशा का भाव फैलने लगा जिसकी अभिव्यक्ति तत्कालीन साहित्य में दिखाई देती है। नयी कविता को उदाहरण स्वरूप देखा जा सकता है।

नयी कविता का दौर सन् 1954 से शुरू होकर सन् 1960 तक आते-आते थोड़ा धीमा होता है। सन् 1961 तक आते-आते दो पंचवर्षीय योजनाओं का कार्यकाल पूरा हो चुका था। जनता के पास दुखों और धूमिल आशाओं के सिवा कुछ नहीं था। दूसरी तरफ सन् 1962 में चीन ने भारत पर आक्रमण कर दिया जिसमें 'हिंदी-चीनी भाई-भाई' के नारे को समाप्त कर जनता को भीतर तक हिलाकर रख दिया। उधर सन् 1964 में हृदय गति रुक जाने के कारण देश ने अपने प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू जी को खो दिया था। चीन के साथ हुए युद्ध के घाव अभी भरे भी नहीं थे कि सन् 1965 में एक बार फिर पाकिस्तान से ना चाहते हुए भी युद्ध करना पड़ा लेकिन इस बार सन् 1962 से सबक लेते हुए भारत ने पाकिस्तान को युद्ध में करारी शिकस्त दी। युद्ध के बाद हुए 'ताशकंद समझौते' के कारण भारत ने दूसरे प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री जी को भी खो दिया था। इन दो युद्धों और इस दौरान समय-समय पर पड़ने वाले विभिन्न अकालों ने परिस्थितियों को और कठिन बना दिया था। इस बीच हालत इतने नाजुक हो चुके थे कि कृषि प्रधान कहे जाने वाले देश को अनाज तक विदेशों से आयात करना पड़ा। भारत मँहगाई और आर्थिक संकट के दौर से गुजर रहा था। शास्त्री जी के बाद इंदिरा गाँधी जी द्वारा दिया गया 'गरीबी हटाओ' का नारा भी मिथ्या सिद्ध

हुआ क्योंकि जनता रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा और स्वास्थ्य आदि मूलभूत जरूरतों के लिए भी संघर्षरत थी। गरीब और अमीरों के बीच की खाई दिनोंदिन बढ़ती ही गयी। तत्कालीन राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों ने भारतीय समाज की सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों को प्रभावित किया। भारत की सरकारें युवाओं को रोजगार उपलब्ध कराने में भी नाकाम रही, जिसके कारण देश में बेरोजगारी एक बड़ी समस्या के रूप में उभरकर सामने आती है। बेरोजगार जनता रोजगार की तलाश में नगरों की तरफ रुख करने लगी। लोगों को नगरों के घुटन भरे वातावरण और समस्याओं का सामना करना पड़ता था। लोगों का जीवन असंतोष, निराशा और कुंठा से ग्रसित हो गया। व्यक्ति केवल अपने बारे में सोचने के लिए विवश हो गया जिसके कारण सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों का हास देखने को मिलने लगता है। संयुक्त परिवारों के स्थान पर एकल परिवार का फैशन चल निकला। आत्मीय सम्बन्धों ने स्वार्थ का भाव ग्रहण कर लिया। दूसरी ओर गाँवों में जाति व्यवस्था, जमींदारी और महाजनी व्यवस्था आदि समाज को खोखला करने में लगी हुई थी। गाँवों के नाम पर आने वाली सरकारी योजनाओं का लाभ भी सत्ता में बैठे भ्रष्ट चुंनों के कारण गाँववासियों को नहीं मिल पा रहा था। गाँवों में रहने वाले मजदूर वर्ग और किसानों का जीवन दयनीय बन गया था। भारत का अन्नदाता, ऋणदाता बनकर रह गया।

किसान के समान ही समाज में महिलाओं की स्थिति में स्वतंत्रता के बाद भी कोई आमूलचूल परिवर्तन देखने को नहीं मिलता। स्वतंत्रता के बाद धर्मनिरपेक्ष भारतीय समाज में धर्म के नाम पर साम्प्रदायिक हिंसा आम बात हो गयी। जनता में असंतोष, निराशा, अनास्था, अविश्वास, अंधविश्वास, भ्रष्टाचार और दुराचार आदि प्रवृत्तियों ने घर कर लिया। भारतवासियों ने स्वतंत्रता के बाद जो सपने संजोये थे वे सरकारों, न्यायव्यवस्था और प्रशासन व्यवस्था आदि के उदासीन रवैये के कारण एक-एक करके सब टूटते चले गये जिसके परिणामस्वरूप भारतीय समाज में अनास्था, विरोध और मोहभंग का वातावरण निर्मित हो गया जिसने साठोत्तरी हिंदी साहित्य की पृष्ठभूमि तैयार की।

भारत की स्वतंत्रता के बाद आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों में, जो परिवर्तन देखने को मिलता है उसका प्रभाव हिंदी साहित्य पर भी पड़ना स्वाभाविक था और पड़ा भी। नयी कविता का जन्म इन्हीं परिस्थितियों की उपज था लेकिन सन् 60 तक आते-आते परिस्थितियाँ और ज्यादा गंभीर हो गयी जिनका भार नयी कविता सहन कर पाने में असमर्थ दिखती है क्योंकि समाज में अनास्था, दुःख, पीड़ा और घुटन आदि का वातावरण बनने लगा था। इस घुटन भरे वातावरण को सहन करने के लिए एक नए कविता आन्दोलन की आवश्यकता महसूस होती है।

3.2 साठोत्तरी हिंदी कविता के आन्दोलन

नयी कविता आन्दोलन की सफलता के बाद हिंदी कविता में कवियों के आपस में गुट बनने लगे। वैसे अज्ञेय जी ने 'तार सप्तक' से गुटों में बांटने की शुरुआत की। आगे चलकर ये गुट बरसाती मेंढकों की तरह दिखाई पड़ते हैं क्योंकि दो या दो से अधिक कवि मिलकर एक नये कविता आन्दोलन की शुरुआत, इस उम्मीद में करने लगे कि, न जाने आगे चलकर कौन सा कविता आन्दोलन प्रसिद्ध हो जाए। इन कविता आंदोलनों की सूची डॉ. जगदीश गुप्त ने अपने 'किसिम-किसिम की कविता' शीर्षक लेख में इस प्रकार दी है- "सनातन सूर्योदयी कविता, अपरम्परावादी कविता, सीमान्तक कविता, युयुत्सुवादी कविता, अस्वीकृत कविता, अकविता, सकविता, अन्यथावादी कविता, विद्रोही कविता, क्षुत्कातर कविता, कबीर-पंथी कविता, समाहारात्मक कविता, उत्कविता, विकविता, अ-अकविता, अभिनव कविता, अधुनातन कविता, नूतन कविता, नाटकीय कविता, एंटी कविता, निर्दिशायामी कविता, लिंगवादलमोतवादी कविता, एब्सर्ड कविता, गीत कविता, नवप्रगतिवादी कविता, साम्प्रदायिक कविता, बीट कविता, ठोस कविता, कोलाज कविता, बोध कविता, मुहूर्त की कविता, दीपान्तर की कविता, अति कविता, टटकी कविता, ताजी कविता, अगली कविता, प्रतिबद्ध कविता, शुद्ध कविता, स्वस्थ कविता, नंगी कविता, गलत कविता, सही कविता, प्राप्त कविता, सहज कविता, और आँख कविता आदि।"¹ इन सब के अतिरिक्त कुछ नाम प्रकाश में आए जिनमें समकालीन कविता, आज की कविता और साठोत्तरी कविता आदि। इतने कविता आंदोलनों के बीच में केवल कुछ चुनिन्दा नाम ही टिक सके। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण कविता आंदोलनों के नामों पर चर्चा की जा सकती है-

साठोत्तरी हिंदी कविता के आन्दोलन में सबसे ज्यादा चर्चित नाम अकविता का रहा है। अकविता आन्दोलन की शुरुआत सन् 1963 में डॉ. जगदीश गुप्त द्वारा सम्पादित 'प्रारम्भ' नाम के काव्य संकलन के रूप में हुई। इसमें 14 कवियों की कविताएँ प्रकाशित हुईं। पहले अकविता आन्दोलन का विभाग नयी कविता के साथ संयुक्तांक रूप से था लेकिन बाद में सन् 1965 में 'अकविता' नाम से जगदीश गुप्त ने डॉ. श्याम परमार, मुद्राराक्षस और रवीन्द्रनाथ त्यागी आदि के साथ मिलकर एक अलग विभाग बनाया। जिसके बाद लगातार 6 अंक प्रकाशित हुए। अकविता आन्दोलन से मोना गुलाठी, मानिका मोहिनी और ममता कालिया आदि जैसी प्रमुख कवयित्रियाँ भी जुड़ी थीं। अकविता का आन्दोलन जितनी तेजी से आया उतनी तेजी से चला गया। इससे जुड़े कवि समय को देखते हुए और कुछ नया करने की जल्दबाजी के प्रयास में

¹ डॉ. जगदीश गुप्त, नयी कविता स्वरूप और समस्याएँ, पृ.सं.- 220

रास्ते से भटक गये क्योंकि अकविता की वस्तु के रूप में इनके पास विद्रोह, अनास्था, अराजकता, परम्पराबोध, अस्वीकार और मूल्य विघटन आदि विषय थे लेकिन ये यौनाचार के वर्णन में धूनी रमाने में खो गये। इन्होंने अपनी कविताओं से लगभग सामाजिक, राजनीतिक और अन्य महत्वपूर्ण मुद्दों को गायब ही कर दिया।

‘बीट’ या ‘भूखी पीढ़ी’ कविता आन्दोलन पर गिंसबर्ग के बीटनीक कविता आन्दोलन का प्रभाव है। गिंसबर्ग ने सन् 1961 में कलकत्ता में आकर इसका प्रचार-प्रसार किया। हिंदी कविता में राजकमल चौधरी बीट और भूखी पीढ़ी आन्दोलन के प्रमुख कवि थे। बांग्ला कवि मलयज पर भी इसका प्रभाव दिखता है। इन्होंने भी अकविता की तरह ही स्त्री-पुरुष के यौनाचार पर कविताएँ लिखी।

‘ताजी कविता’ आन्दोलन लक्ष्मीकांत वर्मा ने इलाहाबाद में ‘क ख ग’ पत्रिका के जुलाई अंक में सन् 1965 में खड़ा किया। ताजी कविता आन्दोलन में कविता विसंगति, विघटन और जटिलता और उदासीनता के स्वर में ताजी भाषा के साथ लिखी गयी लेकिन भाषा का यह ताजापन कविता में कहीं भी नजर नहीं आया। ‘क ख ग’ पत्रिका के संपादकों ने दस अंकों के बाद ही ‘ताजी कविता’ का कॉलम बंद कर दिया था। आगे चलकर इस आन्दोलन का नाम लेवा भी ढूंढने से नहीं मिला।

‘सनातन सूर्योदयी कविता’ आन्दोलन की शुरुआत ‘भारती’ पत्रिका के ‘होली विशेषांक’ के मार्च अंक के साथ सन् 1962 में वीरेंद्र कुमार जैन द्वारा शुरू की गयी थी। इस आन्दोलन की कविताओं में लघुमानव के बजाये अतिमानव की बात कही गयी। इस आन्दोलन ने नयी कविता के अतिथथार्थवाद की प्रवृत्ति का विरोध किया। आगे इसका नाम बदलकर ‘नूतन कविता’ रख दिया गया।

‘युयुत्सावादी कविता’ आन्दोलन का संबंध कलकत्ता से निकलने वाली ‘युयुत्सा’ पत्रिका से रहा है। युयुत्सावादी कविता के समर्थक कवियों में ‘शलभ श्रीराम सिंह, चंद्रमौलि उपाध्याय, राजीव सक्सेना और रामाश्रय सविता आदि प्रमुख हैं। शलभ श्रीराम सिंह युयुत्सावादी कविता के विषय में लिखते हैं कि, “मैं साहित्य सर्जन की मूल प्रेरणा के रूप में उसी आदिम युयुत्सा को स्वीकारता हूँ जो कहीं न कहीं प्रत्येक क्रांति, परिवर्तन अथवा विघटन के मूल में प्रमुख रही है। वह युयुत्सा जिजीविषावादी, मुमूर्षावादी, विद्रोहात्मक अथवा प्लैटोनिक कुछ भी हो सकती है।”¹ युयुत्सा कवियों का इसकी उत्पत्ति को लेकर एक मत नहीं है। कोई इसका संबंध सनातन ऋषियों से तो कोई जापान की मल्लयुद्ध की ‘जुजित्सु’ शैली से

¹ hi.m.wikipedia.org, 08/04/2021

और कोई महाभारत के 'युयुत्सु' पात्र से मानता है। ये चिन्तन के स्तर पर विद्रोह के पक्षपाती थे। युयुत्सावादी कविता आन्दोलन अपने समकालीन अन्य कविता आंदोलनों के समान ज्यादा दिन तक नहीं टिक सका।

‘अस्वीकृत कविता’ आन्दोलन श्रीराम शुक्ल के नेतृत्व में हुआ। ये कविताएँ अकविता और भूखी पीढ़ी की कविताओं से ज्यादा अलग नहीं थीं क्योंकि तीनों कविता आंदोलनों में यौनाचार को कविता का विषय बनाने में कवियों ने दिलचस्पी दिखाई है। कविता की भाषा में भी अश्लील शब्दों के भरमार है। श्रीराम शुक्ल मरी हुई औरत के साथ सम्भोग करने की इच्छा रखने वाले विषयों पर भी कविता लिखते हैं। जो मानवता और साहित्य दोनों दृष्टिकोण से अस्वीकार्य है।

‘सहज कविता’ के पितामाह के रूप में डॉ. रवीन्द्र भ्रमर का नाम लिया जाता है। सन् 1968 में ‘सहज कविता’ नाम का संकलन अलीगढ़ से प्रकाशित हुआ जिसमें इकतालीस कवियों की बासठ कविताएँ संकलित थीं। संकलन में दिनकर, अज्ञेय, नगेन्द्र और नंददुलारे वाजपेयी आदि के विचारों को भी जगह दी गयी। सहज कविता ने अकविता, भूखी पीढ़ी की कविता और अस्वीकृत कविता आदि के नाम पर असामाजिक और अमानवीय जो लिखा जा रहा था उसे अस्वीकार कर दिया। सहज कविता के संदर्भ में डॉ. रवीन्द्र भ्रमर लिखते हैं कि, “अपने युग के जीवन और सर्जनात्मक दायित्व से सहज कविता पूरी तरह प्रतिबद्ध है। उसके मूल में सहज सम्पूर्ण जीवन की प्रतीति और सहज सुगठित शिल्प के माध्यम की खोज का एक ईमानदार प्रयत्न निहित है।”¹ सहज कविता आन्दोलन इलाहाबाद में अमृतराय द्वारा चलाए गए ‘सहज कहानी’ के आन्दोलन के समान ही लम्बी रेस का घोड़ा साबित नहीं हो सका।

सलिल गुप्त के सम्पादकत्व में कानपुर से ‘साठोत्तरी कविता’ नामक संकलन प्रकाशित हुआ। संकलन की भूमिका में सम्पादक महोदय ने ‘साठोत्तरी चेतना’ को भी स्पष्ट किया। इस संकलन में सुरेश सलिल, बैजनाथ गुप्त, ललित शुक्ल, चंद्रेश गुप्त, सलिल गुप्त और जीवन शुक्ल आदि छः कवियों की कविताएँ प्रकाशित हुईं। इस संदर्भ में सलिल गुप्त ने लिखा है कि, “छः कवियों का काव्य-संग्रह ‘साठोत्तरी कविता’ पहली किरण के रूप में आपके समक्ष है। मेंरी मान्यताओं से आप समझ गए होंगे कि ‘साठोत्तरी कविता’ के रूप में मैं कोई नया नारा नहीं दे रहा हूँ और न कोई फार्मूला या वाद पेश कर रहा हूँ।”² ये कवि

¹ hi.m.wikipedia.org, 08/04/2021

² ललित शुक्ल, नया काव्य नये मूल्य, पृ.सं.- 377

अंतर्राष्ट्रीयता में विश्वास रखते हुए भी राष्ट्रीयता के पक्षधर थे। ये अपनी कविता को आम जन की कविता मानते हैं।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना भी आवश्यक है कि ‘साठोत्तरी कविता’ नामक जो संकलन सलिल गुप्त के सम्पादन में निकला वह साठोत्तरी कविता के एक भाग के रूप में हो सकता है। वह पूरी साठोत्तरी कविताओं का प्रायः बिलकुल भी नहीं है क्योंकि साठोत्तरी कविता व्यापक अर्थ ग्रहण किए हुए है। सन् 60 के बाद लिखी जाने वाली सभी कविताएँ साठोत्तरी कविता के अंतर्गत आती हैं चाहे उनका संबंध किसी भी कविता आंदोलन से रहा हो। साठोत्तरी कवियों ने अपनी कविताओं के विषय के रूप में तत्कालीन भारतीय समाज की आर्थिक, राजनितिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों को चुना है। साठोत्तरी कविता का जन्म अपनी परिस्थितियों की कोख से हुआ है।

3.3 साठोत्तरी हिंदी कविता के संदर्भ में विद्वानों के विचार

साठोत्तरी कविता को शब्दों के जाल में जकड़ने का प्रयास उसके आलोचकों और कवियों द्वारा समय-समय पर किया जाता रहा है। साठोत्तरी कविता के संदर्भ में कुछ विद्वानों के विचार इस प्रकार हैं-

डॉ. अजित कुमार के अनुसार, “पिछले दिनों कुछ लोग कहते/ कहलवाते रहें हैं कि सन साठ से हिंदी कविता में एक नया दौर शुरू हो गया है और इस कथन की ध्वनि यह भी है कि ‘नयी कविता’ का आन्दोलन अथवा युग समाप्त हो चुका है। यदि यह बात सन साठ के बाद या साथ प्रकाश में आने वाले लेखकों द्वारा कही गयी होती, तो शायद इस दावे को आत्म-प्रचार या आत्म-प्रशंसा की कूड़ा-टोकरी में डाल धूरे पर फेंक आया जा सकता था, लेकिन जब ‘नयी कविता’ के कुछ समर्थ कवियों, आलोचकों और पैरोकारों को भी हम ऐसा कहते-सुनते हैं तो गम्भीरता के साथ इस पर सोचने के लिए विवश हो जाते हैं।”¹

डॉ. रामदरश मिश्र लिखते हैं कि, “सन साठ के बाद कविता में जो स्वर उगे हैं, वे नयी कविता में बीज रूप से वर्तमान रहे हैं और गौण भाव से प्रस्फुटित रहे हैं। ये स्वर नयी कविता के मूलाधार नहीं रहे हैं किन्तु रहे हैं। नयी कविता से सर्वथा विच्छिन्न या विरोधी स्वर के रूप में इनकी व्याख्या नहीं हो सकती है।”²

¹ डॉ. धर्मपाल पीहल, साठोत्तरी हिन्दी कविता समाजशास्त्रीय अनुशीलन, पृ.सं.- 70

² महावीर वत्स, साठोत्तरी कविता में सांस्कृतिक चेतना, पृ.सं.- 33

डॉ. नामवर सिंह ने साठोत्तरी कविता के नामकरण-विवाद को लेकर, इसके विषय में लिखा है कि, “साठ की जगह बासठ, तिरसठ, चौंसठ, चाहे जो कह लीजिए क्योंकि यह कोई पत्र का मुहूर्त नहीं है। राजनैतिक स्तर पर इसे चीनी या पाकिस्तानी हमले से भी जोड़ने से ज्यादा बहस नहीं है और न ही नेहरू की मृत्यु से तालमेल बिठाने को लेकर इसकी बहस है। विभाजन का आधार कोई भी घटना मानी जाय, तथ्य यही है कि छठे दशक के साथ एक युगांत की धरना प्राप्त होती है, जिसे सुविधा के लिए राजनीतिक भाषा में नेहरू युग का अंत कह सकते हैं।”¹

साठोत्तरी कविता के संदर्भ में कवि और आलोचक अशोक वाजपेयी लिखते हैं कि, “सन साठ के बाद ऐसे बहुत से युवा कवि आये हैं जो ऊपर से आक्रामक और उग्र न दीख पड़े पर जिन्होंने अपेक्षाकृत शांत ढंग से बिना हिंसा, उग्रता और निरर्थकता का नगाड़ा बजाए या उत्सव मनाए समकालीन मनुष्य की निरर्थकता और अकेलेपन की अनुभूतियों को सार्थक और विशिष्ट ढंग से वक्त किया है। उन्होंने जानबूझ कर कोई विद्रोह करने की कोशिश नहीं की है, लेकिन अपनी प्रतिभा के स्वाभाविक परिणाम से अपने युवा होने को चरितार्थ जिया है यानि उनका लेखन अप्रत्याशित और लीक से हटकर है। कमलेश, धूमिल, विनोद कुमार शुक्ल, जितेन्द्र कुमार, ऋतुराज, सौमित्र मोहन आदि कुछ ऐसे कवि हैं।”²

डॉ. कुमार कृष्ण समकालीन कविता के हवाले से साठोत्तरी कविता के संदर्भ में लिखते हैं कि, “साठ के बाद की कविता नवीन काव्याभिरुचि, नवीन सौन्दर्यबोध और नये संवेदन की कविता है। इसमें सामान्य व्यक्ति के आक्रोश, विरोधी, विद्रोह, क्षोभ, उत्तेजना, तनाव और छटपटाहट की प्रधानता है।... साठोत्तरी कविता समाज की मृत मान्यताओं, टूटती हुई परम्पराओं और सामाजिक, राजनीतिक भ्रष्टाचार से क्षुब्ध युवा मानस की अभिव्यक्ति है। उसे आज की बिखरी हुई दोहरी जिन्दगी और बदलते मानवीय संबंधों की अभिव्यक्ति कहा जाता है। अगर इस प्रकार कविता, जुलूस, नारे, लाठीचार्ज, कर्फ्यू, चुनाव, मतदान, भीड़ और संसद की बात करती है तो इसलिए कि वह मनुष्य को सही परिवेश में रखना चाहती है।”³

डॉ. महावीर वत्स साठोत्तरी कविता के विषयवस्तु के संदर्भ में लिखते हैं कि, “साठोत्तर कविता विकृत शोषित और यातनामय जिन्दगी का विरोध है, जिसका लक्ष्य है मानवीय जिन्दगी और सही व्यवस्था

¹ श्री प्रकाश शुक्ल, साठोत्तरी हिन्दी कविता में लोक सौन्दर्य, पृ.सं.- 119-120

² महावीर वत्स, साठोत्तरी कविता में सांस्कृतिक चेतना, पृ.सं.- 39

³ सं. डॉ.चन्द्र त्रिखा, आधुनिक काव्य प्रवृत्तियां, पृ.सं.- 127

की तलाश।... उस पीड़ा को जो सारे समाज में व्याप्त है कवि स्वयं अनुभव कर रहा है। अतः उसके स्वर में आक्रोश और ललकार का भाव आ जाता है। वह अपनी बौखलाहट को गाली का रूप दे देता है, जिसे दूसरे भी बौखला उठें और समाज में व्याप्त सन्नाटा टूटे। इसलिए कवि की क्रांति चेतना महज अलफाजी न होकर यथार्थ से परिचालित है। साठोत्तरी कविता साधारण आदमी स्थिति और नियति के प्रति सचेत है उसमें एक कशमकश और बेचैनी है जो किसी एकांत की ओर नहीं वरन एक ठोस संघर्ष की ओर ले जाती है। उसमें हमें सामान्यजन के हृदय की धड़कने भी सुनाई देती हैं और तत्कालीन जीवन की जटिलता से उत्पन्न तस्वीर भी देख सकते हैं।”¹

डॉ. लक्ष्मीकांत वर्मा साठोत्तरी कविता को विरोध की कविता मानते हुए लिखते हैं कि, “यह पूरा साहित्य उस पीढ़ी का है जो एक अपराजेय विवशता में जन्मी है और उसी विवशता को भोग रही है। उसके लिये विवशता, विसंगति, विघटन या आतंक अनुभव नहीं, जीवित संस्कार है। वे इतिहास के किसी भी खण्ड से विद्रोह करने के बजाय, पूरे इतिहास से ही विद्रोह करते हैं।”²

उपरोक्त विद्वानों के विचारों, मतों और कथनों आदि का विवेचन-विश्लेषण करने के बाद कहा जा सकता है कि सन साठ तक आते-आते ‘नयी कविता’ की धार कुछ कुंद हो गयी क्योंकि भारतीय समाज की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों पर ‘चीन और पाकिस्तान के साथ हुए युद्ध’, ‘पंडित नेहरू और लालबहादुर शास्त्री की मृत्यु’ तथा ‘हिंदी कविता में निराला और मुक्तिबोध की मृत्यु’ आदि बड़ी घटनाओं का प्रभाव पड़ा। इन बदलती परिस्थितियों का भार उठाने में ‘नयी कविता’ असफल होती दिखती है लेकिन इसका ये मतलब बिल्कुल नहीं है कि ‘साठोत्तरी कविता’ ‘नयी कविता’ से बिल्कुल अलग है। साठोत्तरी कविता ने नयी कविता की पीठ पर बैठकर शुरूआती सफर तय किया है। परिणामस्वरूप सन साठ के बाद कविता आंदोलनों की बाढ़ सी आ गयी। जिसके विषय में डॉ. जगदीश गुप्त ने अपने ‘नयी कविता- किसिम किसिम की कविता’ शीर्षक लेख में विस्तार से चर्चा की है। ये सारे कविता आंदोलन पानी के बुलबुलों के समान बनते रहे, खत्म होते रहे। केवल कुछ कविता आन्दोलन ही चर्चा के केंद्र में रहे जिनके विषय में संक्षेप रूप में ऊपर लिखा गया है। साठोत्तरी कविता, आज की कविता और समकालीन कविता आदि नाम सन साठ के बाद की कविता के लिए सबसे ज्यादा उपयुक्त माने जाते हैं लेकिन इनमें भी ‘साठोत्तरी कविता’ नाम को कवियों और आलोचकों द्वारा ज्यादा तव्वजों मिली। सारी कविताओं को

¹ महावीर वत्स, साठोत्तरी कविता में सांस्कृतिक चेतना, पृ.सं.- 36

² श्री प्रकाश शुक्ल, साठोत्तरी हिन्दी कविता में लोक सौन्दर्य, पृ.सं.- 131

साठोत्तरी कविता अपने में समाहित करने का भाव रखती है। साठोत्तरी कविता के प्रमुख कवियों में पुरानी पीढ़ी (निराला, मुक्तिबोध, त्रिलोचन और नागार्जुन आदि) और नयी पीढ़ी (धूमिल और विनोद कुमार शुक्ल) के कवियों का अच्छा समन्वय था। साठोत्तरी कविता नवीन काव्याभिरुचि, नवीन सौन्दर्यबोध और नये संवेदन की कविता है। साठोत्तरी कविता में आक्रोश, विरोध, विद्रोह, क्षोभ, उत्तेजना, तनाव, झुंझलाहट और छटपटाहट आदि की प्रधानता है। ये सब युवा कवियों के खून का उबाल था। उन्होंने जो देखा और महसूस किया उसे यथार्थ में बिना किसी मिर्च-मशाले के कविता में प्रस्तुत कर दिया। इस यथार्थ रूप को लेकर साठोत्तरी कविता की एक शाखा 'अकविता' को कड़ी आलोचना का सामना करना पड़ा क्योंकि इसने यथार्थ के नाम पर यौनाचार का वर्णन किया। साठोत्तरी कविता विरोध और क्षोभ की कविता है जो सामान्य जनता के लिए सही व्यवस्था और खुशहाल परिवेश के लिए संघर्ष करती है। और यह युवा कवियों का ठोस संघर्ष है। इसमें सामान्य जनता के हृदय की धड़कनों को भी सुना जा सकता है। यह उस विवश पीढ़ी का साहित्य है जिसे उसके द्वारा ही लिखा जा रहा है। जो लिखने और विरोध करने के सिवा कुछ नहीं कर सकती है। साठोत्तरी कविता की पृष्ठभूमि का आधार यही है जिसमें तत्कालीन परिस्थितियों से उत्पन्न समस्याओं का स्वर सुनाई देता है।

भारत का सातवाँ दशक आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक आदि सभी दृष्टिकोणों से उथल-पुथल भरा रहा है। इस दशक की शुरुआत में हमें चीन और पाकिस्तान के साथ युद्ध करना पड़ा। युद्धों और अकालों के बाद आर्थिक तंगी के दौर से गुजरना पड़ा। दूसरी तरफ देश अपने प्रधानमंत्रियों के मृत्यु शोक में डूब गया। हिंदी साहित्य ने भी निराला और मुक्तिबोध जैसे बड़े कवियों को खोया। इन बड़ी घटनाओं से देश की परिस्थितियों में परिवर्तन देखने को मिलते हैं। डॉ. श्रीप्रकाश शुक्ल साठोत्तरी कविता का जन्म मृत्यु की कोख से मानते हुए लिखते हैं कि, "साठ के दशक का समय इस प्रकार की मृत्यु परक स्थितियों से एक प्रकार का बदला हुआ समय रहा है। जहाँ यह राजनैतिक व आर्थिक ढाँचे के चरमराने, नई सामाजिक व्यवस्था की अपेक्षाओं, विखण्डित मूल्य दृष्टि से जुड़ा हुआ है। वहीं साहित्य में सर्वथा एक नयी पीढ़ी का आविर्भाव भी हुआ है जिससे नये भावबोध का पता चलता है। यहाँ से हिंदी कविता अपनी जड़ों की तलाश करने लगी, क्योंकि उसके सामने समूचा हिंदी साहित्य था। इस तरह से यह कविता एक प्रकार के समूचेपन के अतिशय आत्मविश्वास को भी प्रतिफलित करती है, जिस कारण से कहीं-कहीं उत्साह का अतिरेक भी दिखायी पड़ता है।"¹

¹ श्री प्रकाश शुक्ल, साठोत्तरी हिन्दी कविता में लोक सौन्दर्य, पृ.सं.-117

स्वतंत्रता के बाद आमजनता ने जो सपने देखे थे और जिन पर यहाँ की सरकारों ने आश्वासनों के ठप्पे लगाये थे वे सब झूठे साबित हुए क्योंकि सरकारों ने जनहित में काम करने की बजाए पूंजिपत्तियों से सांठ-गांठ कर ली। इन दोनों के कारण चपरासी से लेकर ऊच्चाधिकारी तक भ्रष्टाचार में लिप्त थे। देश में भ्रष्टाचार, महंगाई, बेरोजगारी और साम्प्रदायिकता आदि के कारण समाज का उच्च वर्ग (सरकारी और गैरसरकारी) सामान्य जनता का लगातार शोषण करता रहा और सरकारें और प्रशासन तमाशबीन बना रहा। गरीब और अमीर रूपी खाई समय के साथ-साथ और गहरी होती गयी। देश का कामगार वर्ग मूलभूत सुविधाओं के आभाव में जीवन गुजर-बसर करता रहा और उच्च वर्ग सरकार और प्रशासन की मिली-भगत से मलाई चाटता रहा। देश की युवा शक्ति रोजगार के आभाव में दर-दर भटक रही थी। और हास्यास्पद बात तो यह है कि देश का अन्नदाता ही भूखा और कर्ज के तले दब कर मरने की हालत में जीवन यापन कर रहा था। सरकार उसको अच्छे बीज और खाद्य तथा सिंचाई आदि की सुविधा मोहिया कराने में भी विफल रही। देश में असंतोष, अनिश्चितता, तनाव, विक्षोभ, संत्रास, विद्रोह, संघर्ष, आक्रोश, विडम्बना, विषमता और विसंगति आदि का माहौल बन गया था। जनता का भारत की सरकार और राजनीति से मोहभंग होने लगा जिसका स्वर साठोत्तरी कविता में प्रमुख रूप से सुनाई देता है। आमजनता के लिए “क्या आजादी केवल तीन थके हुए रंगों का नाम है/ जिन्हें एक पहिया ढोता है/ इसका कोई खास मतलब होता है।”¹ साठोत्तरी कविता में मोहभंग का स्वर इसलिए कड़ा है क्योंकि साठोत्तरी कवि भोगता और लिखता दोनों रहा है। इन्होंने जो देखा और जिया उसे यथार्थ रूप में कविता का विषय बनाया।

साठोत्तरी कविता के रूप में पहचान दिलाने में युवा कवियों का योगदान अधिक है। इन युवा कवियों में धूमिल, लीलाधर जगूड़ी, चन्द्रकांत देवताले, कुमार विकल, अरुण कमल, राजेश जोशी, मणि मधुकर, विनोद कुमार शुक्ल, आलोक धन्वा, राजकमल चौधरी, विष्णु खरे, मंगलेश डबराल, अशोक वाजपेयी, उदयप्रकाश, ज्ञानेन्द्रपति, वेणुगोपाल, असद जैदी, कमलेश और कैलाश वाजपेयी आदि प्रमुख हैं। कुछ ऐसे भी कवि थे जो पुराने कविता आंदोलनों के प्रमुख कवि थे और बाद में ‘साठोत्तरी कविता’ के भी प्रमुख कवियों के रूप में जाने जाते हैं जिनमें पन्त, दिनकर, नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, अज्ञेय, धर्मवीर भारती, शमशेर बहादुर सिंह, मुक्तिबोध, गिरजाकुमार माथुर, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह, जगदीश गुप्त और दुष्यंत कुमार आदि प्रमुख हैं। इन सभी नयी-पुरानी पीढ़ी के कवियों ने

¹ सुदामा पाण्डेय धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ.सं.- 14

साठोत्तरी कविता के माध्यम से तत्कालीन विषम परिस्थितियों को रेखांकित किया है। अब आगे हम दुष्यंत कुमार की कविताओं का मूल्यांकन साठोत्तरी कविता की प्रवृत्तियों के आधार पर करेंगे।

3.4. साठोत्तरी हिंदी कविता और दुष्यंत कुमार का काव्य

यूँ तो साहित्य की किसी विधा को तय प्रवृत्ति अथवा विशेषता में बांधना संभव नहीं है। किन्तु उसके मुख्य स्वर और स्वरूप की पहचान करना अध्येताओं का दायित्व हो जाता है। आलोचकों ने 'साठोत्तरी कविता' को स्थापित करने के लिए समय-समय पर अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार इसकी प्रवृत्तियों को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। 'साठोत्तरी हिंदी कविता और दुष्यंत कुमार' विषय पर बात करने के लिए, हम 'साठोत्तरी कविता' की निम्नलिखित प्रमुख प्रवृत्तियों का विवेचन-विश्लेषण कर सकते हैं-

3.4.1 व्यवस्था से मोहभंग- भारत में सैंकड़ों वर्षों की गुलामी के बाद आज़ादी का सूर्य उदय हुआ। आज़ादी के सूर्य की किरणें जैसे-जैसे भारत के पटल पर फैलनी शुरू हुई, वैसे-वैसे ही पूरे देश में आशा और उम्मीदों का वातावरण निर्मित होने लगता है क्योंकि भारत की सरकारों ने चुनावी-रैलियों के भाषणों के द्वारा भोली-भाली जनता को दिन में ही सुनहरे सपने दिखाने का साहसी पूर्ण कार्य किया था। वह अपने दुःख-दर्द को दूर होता देख रही थी इसलिए उनकी खुशी का कोई पैमाना नहीं था। सरकारों ने जनता के लिए वादों और आश्वासनों की झड़ी लगा दी थी। जनता बेचारी विश्वास करने के सिवा करती भी तो क्या करती। सन् साठ तक आते-आते दो पंचवर्षीय योजनाएँ समाप्त हो चुकी थी लेकिन सरकारों द्वारा किए गये वादों और आश्वासनों के अनुसार जनता की समस्याओं के दुःख-दर्द में, किसी भी तरह का सुधार नहीं आया था। अच्छे दिन सपना बनकर ही रह गये थे। सरकारें रोटी, कपड़ा, मकान, स्वस्थ और शिक्षा तथा रोजगार आदि मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने में असफल रही। देश के शोषक वर्ग को छोड़कर अन्य सभी वर्ग अभावों में जीवन-यापन करने के लिए विवश थे। देश में अमीर और गरीब के बीच की खाई दिन-दूनी, रात-चौगनी गति से बढ़ रही थी। अब देश की जनता को यह समझने में बिल्कुल भी समय नहीं लगा कि गोरे अंग्रेजों के स्थान पर काले अंग्रेजों ने सत्ता हथिया ली है। भोली-भाली जनता अपने आप को ठगी हुई महसूस कर रही थी। जनता को ठगने का काम सरकारों, प्रशासन और पूंजीपतियों आदि ने मिलकर किया। देश की परिस्थितियाँ लगातार बिगड़ती जा रही थीं। भारत की जनता का सत्ता और उसकी बनाई हुई व्यवस्था से मोहभंग हो चुका था। यह मोहभंग का स्वर साठोत्तरी कविता का मेंरुदंड है जिसके चारों तरफ साठोत्तरी कविता चक्कर लगाती है। साठोत्तरी कवियों ने मोहभंग को लिखा ही नहीं बल्कि भोगा भी है। दुष्यंत कुमार और उनका साहित्य दोनों इसका प्रमाण है। इनकी कविता में मोहभंग का कड़ा स्वर सुनाई देता

है। ‘सूर्य का स्वागत’ कविता संग्रह की ‘मोम का घोड़ा’ और ‘जलते हुए वन का वसंत’ कविता संग्रह की ‘तुलना’ शीर्षक कविताओं को इस संदर्भ में देखा जा सकता है। वैसे बहुत कविताएँ ऐसी हैं जिनमें मोहभंग का स्वर उभरा है। ‘मोम का घोड़ा’ शीर्षक कविता को हम उदाहरण स्वरूप देख सकते हैं-

“मैंने यह मोम घोड़ा / बड़े जतन से बनाया, ...
सपनों में ढालकर/ बड़ा किया, ...
मुझे भरोसा था मेरा है;/ मेरे काम आएगा।/ बिगड़ी बनाएगा। ...
मैंने यह मोम का घोड़ा,/ तुम्हें बुलाने को/
अग्नि की दिशाओं में छोड़ा।
किन्तु जैसे ये बढ़ा/ इसकी पीठ पर पड़ा/ आकर
लपलपाती लपटों का कोड़ा,/ तब पिघल गया घोड़ा
और मोम मेरे सपनों पर फैल गया।”¹

मोहभंग का यह स्वर इनकी कविताओं की तुलना में गजलों में अधिक मारक-क्षमता के साथ पाया जाता है। इनके ‘साये में धूप’ गजल-संग्रह की पहली गजल को संदर्भ के रूप में देखते हैं-

“कहाँ तो तय था चिरागाँ हरेक घर के लिए
कहाँ चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए।
यहाँ दरख्तों के साये में धूप लगती है,
चलो यहाँ से चलें और उम्र-भर के लिए।”²

लेकिन दुष्यंत कुमार की कुछ कविताएँ ऐसी भी हैं जो मोहभंग के स्वर से शुरू होकर, अन्त तक आते-आते विषम परिस्थितियों में भी आशा की एक किरण दिखने लगती हैं। इस सन्दर्भ में ‘सूर्य का स्वागत, संग्रह की ‘दिन निकलने से पहले’ शीर्षक कविता को देख सकते हैं-

“अपने को संभालों मित्र! / अभी ये कराहें और तीखी;
ये धुआँ और कड़ुआ, / ये गडगडाहट और तेज होगी,

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 352

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 261

मगर इनसे भयभीत होने की ज़रूरत नहीं,

दिन निकलने से पहले ऐसा ही हुआ करता है।”¹

3.4.2 पीड़ा, आक्रोश, विरोध, विद्रोह, क्षोभ, उत्तेजना और छटपटाहट- अंग्रेजों के जाने के बाद भारत में जो बंदर बांट शुरू हुआ उसमें भारत की भोली-भाली जनता के हिस्से में खोखले वादों और आश्वासनों के सिवा कुछ नहीं आया। उनकी भी पोल-पट्टी समय के साथ खुलती चली गयी क्योंकि सरकारों के सारे वादे और आश्वासन मिथ्या सिद्ध हुए। व्यवस्था से मोहभंग के बाद भारत की जनता पीड़ा, आक्रोश, विरोध, विद्रोह, क्षोभ, उत्तेजना और छटपटाहट आदि से पीड़ित दिखाई देती है। उसकी सारी आशा, उम्मीद और सपनों पर पानी फिर जाता है। इस छटपटाहट को साठोत्तरी कविता में बड़े स्तर पर देखा जा सकता है। दुष्यंत कुमार की कविता और उनका साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है। इनके साहित्य में आम जनता की पीड़ा से उपजे विरोध, विद्रोह, क्षोभ, उत्तेजना और छटपटाहट के स्वर को स्पष्ट रूप से महसूस किया जा सकता है। यह स्वर इनकी कविताओं में तड़के का काम करता है। दुष्यंत कुमार की कविताओं का जन्म ही आम जनता की पीड़ा की कोख से हुआ है। इस संदर्भ में हम ‘जलते हुए वन का वसंत’ की भूमिका में कवि द्वारा कहे गये इस कथन को देख सकते हैं कि, “मैं एक साधारण आदमी हूँ और इतिहास और सामाजिक स्थितियों के संदर्भ में, साधारण आदमी की पीड़ा, उत्तेजना, दबाव, अभाव और उसके संबंधों के उलझावों को जीता और व्यक्त करता हूँ।”² दुष्यंत कुमार के कविता संग्रह ‘जलते हुए वन का वसंत’ की ‘देश’ शीर्षक कविता में पीड़ा, क्षोभ, उत्तेजना और छटपटाहट को देख सकते हैं-

“संस्कारों की अरगनी पर टंगा/ एक फटा हुआ बुरका

कितना प्यारा नाम है उसका देश

जो मुझको गंध/ और अर्थ/ और कविता का कोई भी

शब्द नहीं देता/ सिर्फ एक वहशत,/ एक आशंका

और पागलपन के साथ,

पौरुष पर डाल दिया जाता है,

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग-1, पृ.सं.- 347

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 139

ढँकने को पेट, पीठ, छाती और माथा।”¹

नेताओं ने देश को प्रगति के पथ पर चलाने के बजाए गद्दे में डाल दिया और देश को दयनीय स्थिति में पहुँचाने का काम किया। दुष्यंत कुमार ने कविता संग्रह ‘जलते हुए वन का वसंत’ की ‘गाते-गाते’ शीर्षक कविता में आजादी से लेकर देश की दयनीय स्थिति तक का वर्णन किया है जिसमें कवि का विरोध और विद्रोही स्वर भी सुनाई देता है-

“नेताओं/ मुझे माफ़ करना/ ज़रूर कुछ सुनहले स्वप्न होंगे-

जिन्हें मैंने नहीं देखा।/ मैंने तो देखा/ जो मशालें उठाकर चले थे

वे तिमिरजयी,/ अँधेरे की कहानियाँ सुनाने में खो गए।

सहारा टटोलते हुए दोनों दशक/ ठोकें खा-खाकर लँगड़े हो गए।

अपंग और अपाहिज बच्चों की तरह/ नंगे बदन

ठंड से काँपता हुआ एक-एक वर्ष

ऐन मेरी पलकों के नीचे से गुजरा है।

तुम्हारा आभारी हूँ रहनुमाओं!/ तुम्हारी बदौलत मेरा देश,

यातनाओं से नहीं,/ फूलमालाओं से दबकर मरा है।

मैं एक मामूली-सा कवि/ इस खुशी में गाते-गाते चिल्लाने लगा हूँ।”²

3.4.3 कुंठित मन की कविता- मोहभंग के बाद जो आत्मपीड़ा, संत्रास, घुटन और बेचैनी आदि का वातावरण निर्मित हुआ उसने आम जनता को कुंठा से ग्रसित किया। दुष्यंत कुमार ने हमेशा तत्कालीन परिस्थितियों पर लेखनी चलाने का काम किया है। समाज में निर्मित वातावरण को दुष्यंत कुमार ने लिखा ही नहीं है बल्कि भोगा और जिया भी है। दुष्यंत कुमार की कविताओं में जीवन की पीड़ाओं, कुंठाओं, अभावों और तनाव आदि का यथार्थ रूप में चित्रण हुआ है। दुष्यंत कुमार के ‘आवाजों के घेरे’ कविता संग्रह की ‘आवाजों के घेरे’ शीर्षक कविता में आदमी अपनी पीड़ा और दुःख दर्द से मुक्ति पाना चाहता है।

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 171

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 183

उसे लगता है कि क्या वह घुट-घुटकर मर तो नहीं जायेगा। वह अजीब सी कुंठा से ग्रसित होता जा रहा है जिसके विषय में कवि कविता में लिखता है कि-

“मुक्ति नहीं पाऊँगा क्या मैं?/ घुट-घुटकर मर जाऊँगा क्या मैं?

इस आपद के समय बुलाता हूँ/ आओ!/ मेरे मित्रों! ...

आवाजों से चौतरफा हमलों से/ मुझे बचाओं।

या फिर मेरी आँखों पर पट्टी बाँधो

मेरे अधरों पर जड़ दो ताले/ कानों के परदे कर दो नष्ट

मेरी भावुकता को कस बेबस कर दो/ ...

मित्रों!/ मुझसे हमदर्दी है तो

मेरी बेचैनी का कारण समझों-बुझों/ आओ

मेरे संग-संग इन आवाजों से जूझो/ इनकी ध्वनियों को बदलों

इनके अर्थों को बदलो/ इनको बदलो!”¹

3.4.4. विसंगति और विडम्बना- साठोत्तरी कविता में साठ के दशक की विषम परिस्थितियों को कविता का विषय बनाया गया है। समाज का मेंहनतकश तबका दयनीय जीवन यापन कर रहा था लेकिन आजादी के बाद खुशहाल जीवन जीने के वादे किये गए थे। विडम्बना की बात यह है कि जिन्होंने वादे और आश्वासन किए थे, उन्होंने ही आम जनता को ठगने का काम किया। रक्षक ही भक्षक की भूमिका अदा कर रहे थे। इन्होंने ही पूंजिपत्तियों और जमींदारों तथा शाहूकारों आदि के साथ मिलकर काम को अंजाम दिया। और प्रशासन ने बिचौलियों का काम किया। कहने को देश का संविधान धर्मनिरपेक्ष समाज की स्थापना करता है लेकिन फिर भी साम्प्रदायिक घटनाएँ लगातार बढ़ती रही हैं। सरकारी योजनाओं के बिल आम जनता के नाम पर कटे लेकिन वे योजनाएँ जनता तक पहुँचने से पहले ही दम तोड़ गईं। समाज में विसंगति फैल गयी। कार्य और कारण में दूर-दूर तक कोई संबंध नहीं रहा। चारों तरफ लूट-खसोट मची हुई थी। दुष्यंत कुमार ने समाज में फैली विसंगति और विडम्बना को अपनी कविता में स्थान दिया है। इनकी

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 443

कविताएँ इसका प्रमाण है। राजनैतिक विडम्बना का एक उदहारण ‘एक कंठ विषपायी’ काव्य नाट्य में देख सकते हैं। ‘सर्वहत्त’ (आमजनता) ‘विष्णु’ (सत्ताधारी) से अपनी मूलभूत जरूरतों के लिए कहता है लेकिन विष्णु सरकारों की तरह असफल रहता है। तो वह कहता है कि मुझे थोड़ा रक्त ही दे दो। विष्णु रक्त भी देने से मना कर देता है। तो सर्वहत्त कहता है कि-

“क्या बच्चों-सी बातें करते हैं आप/ आप तो शासक हैं

और शासकों को कहीं/ रक्त की कमी हुआ करती है।

आप लोग चाहें तो मेरे लिए/ रक्त का समुन्दर भर सकते हैं।

-पर मैं समझता हूँ/ मुझको बहलाते हैं आप लोग।

आप लोग मुझसे असंतुष्ट, अप्रसन्ना/ आप नहीं/ सभी लोग

सभी मुझे देखकर घृणा से थूक देते हैं

मुझे मार डालने के लिए लपकते हैं।

पर मेरा दोष क्या है?”¹

3.4.5 मूल्यों का विघटन- जब आजादी के बाद भारत की सरकार अपने वादों को निभाने में असफल हो गयी तो जनता अपनी मूलभूत जरूरतों को पूरा करने के लिए गांवों से नगरों की तरफ पलायन करने लगी। यहाँ से मानवीय मूल्यों के पतन की शुरुआत होती है। नगर में जाकर व्यक्ति का दायरा सीमित हो जाता है। वह हर किसी से मतलब से बात करता है और हर किसी को शक की नजर से देखता है। नगरों का घुटन भरा वातावरण उसे और चिढ़-चिढ़ा बना देता है। वह जिस परिवार और समाज को छोड़कर नगर आया है उसे हीनता के नजरिए से देखता है। उसे किसी के सुख-दुःख से कुछ लेना-देना नहीं है। नगर में रहकर अपने पड़ोसी का नाम तक नहीं जानता है। व्यक्ति स्वार्थ की भावना से ग्रसित हो गया है। वह अपने आप को लाभ पहुँचाने के लिए किसी का भी अहित कर सकता है। इस वायरस की लपेट में अब गाँव भी आ गये हैं। गाँवों में पहले लोगों का एक-दूसरे के प्रति सहायता का भाव रहता था लेकिन आज जो जिसके पास बैठ रहा है उसकी ही जड़ों को काटना शुरू कर देता है। लोगों के बीच की प्रेम-मोहब्बत ने ईर्ष्या का

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 105

रूप ले लिया है। लोगों की सहानुभूति और संवेदना की भावना शून्य की तरफ बढ़ रही है। उसका स्थान झूठ, छल-कपट, बेईमानी और भ्रष्टाचार आदि अनैतिक और असामाजिक वृत्तियों ने ले लिया है। यह मूल्यहीनता साठोत्तरी कविता में मोहभंग की देन है। दुष्यंत कुमार की कविताओं में मूल्यहीनता का स्वर सुनाई देता है। दुष्यंत कुमार के 'जलते हुए वन का वसंत' कविता संग्रह की 'यात्रानुभूति' शीर्षक कविता में गाँवों में हुए मानवीय मूल्यों के विघटन का चित्रण किया गया है-

“कितना कठिन हो गया है/ किसी एक गाँव से गुजरकर आगे जाना!

ओसारों में बैठे हुए बूढ़े बुलाते हैं,/ लोटे में जल भरकर महरियाँ नहीं आती

स्वागत नहीं करते बच्चे-राहगीरों पर/ कुत्ते लहराते हैं।

इस ठहरी और सड़ी हुई गर्मी में/ कहीं भी पड़ाव नहीं मिलते

अंधेरे में दिखते नहीं दूर तक चिराग!

थके हुए पाँवों के जख्म/ जलती हुई रेत में सुस्ताते हैं।

यक-ब-यक तेजी से बदल गए हैं

गाँवों के पनघट और सुंदरियों की तरह/ सारे रिवाज”¹

इसी संग्रह की 'एक सफर पर' शीर्षक कविता में भी दुष्यंत कुमार ने एक यात्री के माध्यम से मानवीय मूल्यों के पतन को रेखांकित करते हुए लिखा है कि-

“बहुत बुरी हालत है, डिब्बे में/ बैठे हुआओं को

हर खड़ा हुआ व्यक्ति शत्रु,

खड़े हुआओं को बैठा हुआ बुरा लगता है,

पीठ टेक लेने पर/ मेरे भी मन में/ ठीक यही भाव जगता है।

मैं भी धक्कम-धू में/ हर आने वाले को/ क्रोध से निहारता हूँ”²

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 144

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 151

3.4.6 तीखे व्यंग्य का स्वर- साठोत्तरी कविता में तीखे व्यंग्य का स्वर सुनाई देता है। सभी साठोत्तरी कवियों की कविताओं में व्यंग्य की अभिव्यक्ति दिखती है। व्यंग्य के कारण कविता अधिक प्रभावशाली हो जाती है। व्यंग्य के माध्यम से कवि परिस्थितियों के कारण जीवन में उत्पन्न हुई विसंगतियों, खोखलेपन और पाखण्ड आदि को सबके सामने लाता है। व्यंग्य के माध्यम से किसी व्यक्ति विशेष या वर्ग विशेष का उपहास, मजाक और आलोचना आदि की जाती है। व्यंग्य की क्षमता इतनी मारक होती है कि सामने वाला तिलमिला जाता है। व्यंग्य उस व्यक्ति, वर्ग और स्थिति आदि विशेष पर किया जाता है जिससे आप असंतुष्ट या खुश नहीं रहते हैं। साठोत्तरी कवि भी अपनी तत्कालीन परिस्थितियों से संतुष्ट नहीं था क्योंकि आज़ादी के बाद समाज के प्रत्येक क्षेत्र में परिस्थितियाँ सुधरने के स्थान पर खराब हो रही थीं। आजादी के पहले और बाद आम जनता की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। साठोत्तरी कवि ने इसे अपनी कविता में स्थान दिया और जिम्मेदार लोगों पर व्यंग्य के माध्यम से प्रहार किए। उन्हें कविता के कटघरे में दोषी बनाकर खड़ा किया। दुष्यंत कुमार की कविताओं में व्यंग्य अधिक दिखता है। कवि विषम परिस्थितियों के लिए सत्ता और सत्ता में बैठे नेताओं को दोषी मानते हैं। और इन राजनेताओं को चुनकर हमने ही संसद में भेजा है लेकिन इन्होंने आम जनता और देश के लिए कुछ नहीं किया। ये ऊपर से बड़ी-बड़ी देश-प्रेम की बातें करते हैं लेकिन यह सब इनका दिखावा है। इस स्थिति का वर्णन कवि ने 'जलते हुए वन का वसंत, कविता संग्रह की 'देश-प्रेम' शीर्षक कविता में किया है। कवि कविता में लिखता है कि-

“कोई नहीं देता साथ,

सभी लोग युद्ध और देश-प्रेम की बातें करते हैं।

बड़े-बड़े नारे लगते हैं।/ मुझसे बोला भी नहीं जाता।

जब लोग घंटों राष्ट्र के नाम पर आँसू बहाते हैं।

मेरी आँख में एक बूंद पानी नहीं आता है।

अक्सर ऐसा होता कि मातृभूमि पर मरने के लिए

भाषणों से भरी सभाओं/ और प्रदर्शनों की भारी भीड़ों में

लगता है कि मैं ही हूँ एक मुख/ कायर-गद्गार!!”¹

कवि ‘सूर्य का स्वागत’ कविता संग्रह की ‘साँप आस्तीनों में’ शीर्षक कविता में नेताओं को आस्तीनों के साँप की संज्ञा देता है। क्योंकि हमने ही अपनी उदारता के कारण अपना मसीहा बनाकर इन्हें संसद भेजा है लेकिन इन्होंने हमें ही डस लिया है। इसका दण्ड तो हमें ही मिलना है। प्रस्तुत कविता में नेताओं और जनता दोनों पर व्यंग्य करते हुए कवि लिखता है कि-

हमने पाले साँप आस्तीनों में/ दूध पिलाया
खुले हुए आंगन में छोड़ा/ पक्का फर्श उखाड़
बनाए उनके लिए रास्ते/ उनको अपना माना/ पर ये साँप रहे
उनके दाँतों से विष न गया/ हमने तोड़े नहीं
इन्होंने उन्हें प्रयोग किया
आज नसों में व्याप गया जो/ वह अपनी उदारता का विष है
इसे उतारो कडुवे-कडुवे/ घूँट पियो”²

3.4.7 आम आदमी के अधिकारों के लिए संघर्ष- साठोत्तरी कविता के केंद्र में आम आदमी और उसकी समस्याएँ हैं और साथ ही उन समस्याओं के लिए सत्ता या व्यवस्था जिम्मेदार है। आजादी के बाद आम आदमी की मूलभूत जरूरतें पूरी करने में सरकारें विफल रही। आम आदमी पेट भरने के लिए दो वक्त की रोटी के लिए तरस रहा था। भूख की समस्या के साथ कपड़ा, मकान, बेरोजगारी और महंगाई आदि की समस्याओं ने आम जनता को घेरा हुआ था। कृषि प्रधान देश का अन्नदाता भी होरी की तरह अभाव ग्रस्त जीवन जी रहा था। विडम्बना तो यह है कि फाईलों और कागजों पर भारत की जनता खुशहाल जिन्दगी जी रही है लेकिन जमीनी हकीकत बिल्कुल विपरीत है। साठोत्तरी कविता ने आम आदमी के सारे मुद्दों को कविता में उठाया है इसलिए साठोत्तरी कविता को आम आदमी की कविता कहा जाता है। आम आदमी

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 167

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 382

की जिन्दगी बद से बदतर हो गयी है। जिसके विषय में दुष्यंत कुमार 'सूर्य का स्वागत' कविता संग्रह की 'अनुभव-दान' शीर्षक कविता में लिखते हैं कि-

“खंडहरों-सी भाव शून्य आँखें/ नभ से किसी नियंता की बाट जोहती हैं।

बीमार बच्चों से अपने उचाट हैं;/ टूटी हुई जिंदगी

आँगन में दीवार से पीठ लगाए खड़ी है;

कटी हुई पतंगों से हम सब/ छत की मुंडेरों पर पड़े हैं।”¹

एक अन्य 'जिन्दगी कहाँ?' शीर्षक कविता में दुष्यंत कुमार लिखते हैं कि-

“जिन्दगी दिखाई देती है/ कब्रों में या दरगाहों में

मंदिरों में या श्मशानों में/ मिट्टी में दबी हुई/ मिट्टी मिली हुई

पूजा के बोलों पर काँपती/ या घुटनों के बल झुकी हुई”²

साठोत्तरी कविता ने बेरोजगारी की समस्या को गम्भीर रूप से उठाया है। भारत की सरकारें युवाओं को रोजगार देने में असफल रही हैं। युवा वर्ग को बेरोजगारी ने निराश और हताश कर दिया है। ऐसे ही एक बेरोजगार युवा का चित्रण कवि ने 'बेरोजगारी : एक अनुभूति' शीर्षक कविता में किया है-

उस दिन ऐसी कड़क धूप थी।/ पलक मुंड गई

आसमान आँखों के आगे लगा घूमने

सुस्ताने के लिए एक खम्भे को पकड़ा/ पीठ टिका ली

तभी एक रिक्शे वाले ने पूछा- 'बाबू कहाँ चलेंगे?'

मैंने पहले अपनी जेब टटोली/ फिर खाली मन से!

अनायास मुँह से आई मोटी-सी गाली/ अपनी किस्मत को दे डाली

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 372

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 333

उससे बोला- ‘कहाँ चलेंगे, पता नहीं है’

उसको अखरा होगा कुछ/ पर मुझे अखरा’¹

3.4.8 जनतंत्र की हिमायत- साठोत्तरी कविता के कवियों ने जनतंत्र को विषय बनाकर बहुत कविताएँ लिखी हैं। साठोत्तरी कविताओं में जनतंत्र का नकारात्मक स्वर ज्यादा उभरा है क्योंकि अब्राहम लिंकन ने जो जनतंत्र, प्रजातंत्र और लोकतंत्र की परिभाषा दी है कि, ‘प्रजातंत्र वह सरकार है जो जनता की, जनता द्वारा तथा जनता के लिए है’। अर्थात् किसी देश की वह शासन व्यवस्था जिसके केन्द्र में पूरी तरह जनता रहती है। कहने को आजादी के बाद हमारे देश में भी लोकतांत्रिक संविधान लागू किया गया। जिसमें आम जनता की छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी समस्याओं और मुद्दों का ध्यान रखा गया लेकिन आजादी के वर्षों बाद भी समस्याएँ ज्यों-क्यों बनी रही और मुद्दें हवाई फायर सिद्ध हुए। परिणाम स्वरूप जनता का जनतंत्र और उसके अनुसार बनाई हुई सरकार, सत्ता और शासन व्यवस्था से मोहभंग हो गया। जनतंत्र में कहीं न कहीं कुछ कमी अवश्य रह गयी। जनतंत्र को बर्बाद करने में नेताओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जनतंत्र केवल नाम का ही जनतंत्र बनकर रहा है। जनतंत्र के नाम पर जनता के साथ धोखा और छलावा किया गया। देश की भोली-भाली जनता को रंग-बिरंगे सपने दिखाए गए लेकिन नेताओं ने जनता की सेवा के नाम पर जनता को ठगने और मेंवा खाने का काम किया। व्यवस्था में बैठे ज्यादातर व्यक्ति स्वार्थी, बेईमान, भ्रष्टाचारी, शोषणकारी और अत्याचारी हैं। इनके कारण ही गरीब और गरीब, अमीर और अमीर होते गये। साठोत्तरी कविता में जनतंत्र की अपेक्षा, अपने आप को जनतान्त्रिक मानने वाले नेताओं की सबसे ज्यादा आलोचना हुई है। दुष्यंत कुमार ने जनतंत्र के अगुआओं की कड़ी आलोचना अपनी कविताओं में की है। वे चुनाव आते ही जनता को उल्लू बनाने और अपना उल्लू सीधा करने के लिए बड़े-बड़े वादे और आश्वासन करते हैं। और ये सब जनतंत्र के नाम पर, और जनतंत्र को बचाने के नाम पर किया जाता है। आजकल ये सब राष्ट्रवाद और राष्ट्रहित के नाम पर होता है। और उनकी बातें सुनकर ऐसा लगता है कि जैसे आज तक कुछ काम या विकास नहीं हुआ है और अब सब हो जायेगा लेकिन जनता हर चुनाव के बाद अपने को ठगी हुई महसूस करती है। चुनाव से पहले वे चरणों में होते हैं, चुनाव के बाद जनता चरणों में होती है। जनतंत्र के ठेकेदार जनता को ठगने और सपने दिखाने का जो ढोंग करते हैं उसका चित्रण दुष्यंत कुमार ने ‘जलते हुए वन का वसंत’ कविता संग्रह की ‘तुलना’ शीर्षक कविता में किया है-

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 403

“गड़रिये कितने सुखी हैं/ न वे ऊँचे दावे करते हैं/ न उनको लेकर
एक-दूसरे को कोसते या लड़ते-मरते हैं।
जबकि जनता की सेवा करने के भूखे/ सारे दल भेड़ियों-से टूटते हैं।
ऐसी-ऐसी बातें/ और ऐसे-ऐसे शब्द सामने रखते हैं
जैसे कुछ नहीं हुआ है।/ जबकि/ सारे दल/ पानी की तरह धन बहाते हैं,
गड़रिए मेंड़ों पर बैठे मुस्कराते हैं।/ भेड़ों को बाड़े में करने के लिए
न सभाएँ आयोजित करते हैं/ न रैलियाँ,/ न कंठ खरीदते हैं, न हथेलियाँ,
न शीत और ताप से झुलसे हुए चेहरों पर/ आश्वासनों का सूर्य उगाते हैं,
स्वेच्छा से/ जिधर चाहते हैं, उधर/ भेड़ों को हाँके लिए जाते हैं।”¹

दुष्यंत कुमार ‘जलता सच’ शीर्षक कविता में जनतंत्र में आम आदमी कहाँ खड़ा है या उसकी स्थिति क्या है? उस पर प्रकाश डालते हैं और बताते हैं कि उसके हाथ में करने के लिए कुछ भी नहीं है। और वह कितना विवश है। वे कविता में लिखते हैं-

“हम जानते हैं कि इस तंत्र में/ क्रिया और कारक कोई और है/...
हमें यह भी पता है/ कि कागज़ की तरह हम केवल
अंकित होते जाने को अभिशप्त हैं/ हमें यह हक नहीं है
कि अपने सीने पर/ उगे हुए और उगते हुए झूठ को काट दें”²

इस लोकतंत्र या जनतंत्र पर सवाल उठाते हुए दुष्यंत कुमार के ‘एक कंठ विषपायी’ गीति-नाट्य में आम जनता का प्रतिनिधित्व करने वाला ‘सर्वहत्’ ‘ब्रह्मा’(सत्ता का प्रधान) से कहता है कि-

“मैं कौन हूँ...?/ इस स्थिति में/ मुझको यह सोचना पड़ेगा।

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 173

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 135

शायद मैं राजा हूँ/ शायद मैं शासन का प्रतिनिधि हूँ
या मैं इस राज्य की प्रजा हूँ/ या मैं कुछ भी नहीं हूँ
और सब कुछ हूँ/ पर तुम क्यों पूछ रहे हो यह प्रश्न
पर मैंने तो तुमसे कुछ भी नहीं पूछा”¹

3.4.9 लोक सौन्दर्य- साहित्य और लोक का संबंध घनिष्ठ है। साहित्य का जन्म लोक से ही हुआ है। और साहित्य में लोक की गतिविधियों को ही विषय-वस्तु बनाया जाता है। लम्बे समय तक साहित्य में लोक के नाम पर संस्कृति, प्रकृति, रीतिरिवाजों, रहन-सहन, वेशभूषा और भाषा आदि का चित्रण होता रहा है वो भी उच्च वर्ग के हवाले से। इस लोक से आम जनता का कोई सरोकार नजर नहीं आता है। अर्थात् लोक में दलित, शोषित, पीड़ित और पतित आदि वर्ग की किसी भी प्रकार की गतिविधियों का स्थान नहीं था। उनके सुख-दुःख को साहित्य में व्यक्त करने का समय साहित्यकारों के पास नहीं था लेकिन समय-समय पर इका-दुक्का लिखा गया। 1936 में प्रगतिशील संघ की स्थापना के बाद हिंदी कविता में लोक सौन्दर्य के अंतर्गत मजदूर वर्ग को स्थान मिलना शुरू होता है। प्रगतिशील संघ की स्थापना के बाद लोक सौन्दर्य की परिभाषा ‘विशेष’ से बदलकर ‘साधारण’ होती है। इसका प्रमाण प्रगतिशील संघ की स्थापना के मौके पर प्रेमचन्द का अध्यक्षीय भाषण है, जिसमें वे कहते हैं कि हमें सौन्दर्य के पैमाने बदलने होंगे, अब हमें सड़क पर काम करती स्त्री के पपड़ी पड़े होंठों में भी सौन्दर्य देखना होगा। इसकी परिणति हमें निराला की ‘वह तोड़ती पत्थर’ शीर्षक कविता में दिखती है। यह लोक सौन्दर्य प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नयी कविता के रास्ते होते हुए साठोत्तरी कविता तक आता है।

साठोत्तरी कविता का लोक सौन्दर्य आम जनता के जीवन, परिवेश और क्रियाकलापों आदि से जुड़ा हुआ है। जिसकी अभिव्यक्ति कविताओं में यथार्थ रूप में दिखती है। साठोत्तरी कविता के लोक सौन्दर्य की विशेषताओं को श्रीप्रकाश शुक्ल ने ‘साठोत्तरी हिंदी कविता में लोक सौन्दर्य’ पुस्तक में इस प्रकार से चिन्हित किया है कि, “1. संघर्ष प्रधान जीवन की स्वीकृति, 2. स्थानीयता का रंग, 3. यथार्थ से सीधा साक्षात्कार, 4. मानवीय शोषण के जटिल रूपों की पहचान, 5. जीवन के प्रति आस्थावादी दृष्टिकोण, 6. प्राकृतिक सौन्दर्य की सर्जनात्मक अभिव्यक्ति, 7. लोक रूढ़ी को तोड़ने का प्रयास(प्रकृति में जैसे निराला और नागार्जुन ने तोड़ा), 8. ऐन्द्रिक ताप व वैचारिक तनाव, 9. कर्म सौन्दर्य की पहचान, 10. विकसित

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 56

सौन्दर्यानुभूति (स्थूल+गति)''¹ साठोत्तरी कवियों और प्रगतिवादी कवियों द्वारा लिखित कविताओं के लोक सौन्दर्य के अंतर को स्पष्ट करते हुए श्रीप्रकाश शुक्ल आगे लिखते हैं कि, “असल में साठोत्तरी कवि और प्रगतिशील कवि की लोकधर्मिता का फर्क बेहद महत्वपूर्ण है। जहाँ पर प्रगतिशील कवि उत्तेजित होकर विचार (अनुभव) को तुरंत ही क्रियात्मकता में बदल देते हैं (जो मार्क्सवाद के सीधे दर्शन पर आधारित होता है) वहीं पर साठोत्तरी के लोकोन्मुखी कवि विचारों (अनुभव) को पहले संवेदनाओं में और संवेदनाओं को क्रियात्मक आकृतियों में बदलने की कोशिश करते हैं जिसमें उनके भीतर का वस्तु जगत व तात्कालिक वस्तु जगत दोनों एक साथ स्पंदित होते हैं।”² दुष्यंत कुमार की कविताओं में लोक सौन्दर्य के सहज, सरल और मार्मिक आदि आम जनता और जमीन से जुड़े हुए बिम्ब देखने को मिलते हैं। दुष्यंत कुमार आम जनता के कवि हैं इसलिए उनकी कविता आम जनता के लोक से जुड़ी हुई है। कवि ने इस लोक को जीया, परखा और भोगा हुआ है। कवि ने ‘जलते हुए वन का वसंत’ अपने कविता संग्रह की ‘साँझ : एक विदा-दृश्य’ शीर्षक कविता में लोक सौन्दर्य एक अनोखा चित्र उतारा है। कविता में ‘शाम’ का चित्रण करने के लिए उपमाओं, बिम्ब और भाषा के शब्दों को लोक से उठाया है। वे कविता में लिखते हैं-

“एक दुखी माँ की तरह- संध्या/ मैला-सा आँचल पसारे/ सामने खड़ी है।

सारा आकाश-ग्राम,/ बाल-वृद्ध-वनिताएँ,/ साँस रोक-/ देख रहे विदा-दृश्य।

लिपे-पुते आँगन-सी/ धरती पड़ी है।

एक शोख वय वाली लड़की-सी हवा/ इधर-उधर कपड़े झटकती हुई।

आँगन बुहारती है।

थोड़े दिन और अभी रहने दो’/ सलज कोयलिया बोल मरती है।

वृद्ध-वृक्ष, गर्दन हिलाते हैं/ पिता-पर्वत

काली-सी चादर में मुँह लपेट/ विदा का प्रसंग टाल जाते हैं।”³

¹ श्री प्रकाश शुक्ल, साठोत्तरी हिन्दी कविता में लोक सौन्दर्य, पृ.सं.- 56

² श्री प्रकाश शुक्ल, साठोत्तरी हिन्दी कविता में लोक सौन्दर्य, पृ.सं.- 137

³ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.-199

3.4.10 युगबोध- साठोत्तरी साहित्य में युगबोध की प्रवृत्ति पायी जाती है इसलिए साठोत्तरी कविता की एक प्रमुख विशेषता ‘युगबोध’ है। समकालीन परिवेश की विशेषताओं की जानकारी होने को युगबोध कहा जाता है। आज़ादी के समय व्यवस्था ने भारतवासियों को सुनहरे सपने दिखाए थे लेकिन ये सपने सन साठ तक आते-आते टूटने लग गए। नेताओं ने जनता से, जो वादे और आश्वासन किए थे वे उन्हें पूरा करने में असफल हो चुके थे। परिणाम स्वरूप जनता का सत्ता से मोहभंग होने लगा था। साठोत्तरी कविता में इसी मोहभंग की स्थिति का यथार्थ चित्रण हुआ है। कविता में जनता के दुःख-दर्द, निराश-हताश स्थिति का चित्रण हुआ है। आम आदमी गरीबी, बेरोजगारी, महंगाई और भ्रष्टाचार आदि के कारण अभावों में जीवन जी रहा था। सत्ता जनता के हितों को भूलकर निजी स्वार्थों को साधने में लगी हुई थी। साठोत्तरी कविता में राजनीतिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया गया है।

साठोत्तरी कविता जिस समय लिखी जा रही थी उस समय समाज में शोषण, अत्याचार, संघर्ष, छुआछूत, ऊँच-नीच का भाव, साम्प्रदायिकता की आग, महंगाई, भ्रष्टाचार, बेईमानी, लूट-खसोट, अमीरी-गरीबी की खाई और मूलभूत आवश्यकताओं के लिए तरसती जनता आदि विषम परिस्थितियों के कारण समाज में अंधकार छाया हुआ था। भारत की आशाहीन जनता निराशा से भरा हुआ जीवन जी रही थी। ऐसे समय में दुष्यंत कुमार ने अपनी कविताओं के माध्यम से आमजनता को विषम परिस्थितियों से न केवल अवगत कराया, बल्कि उनमें उर्जा का संचार करने का साहसीपूर्ण कार्य किया है। साठोत्तरी कविताओं में मोहभंग के साथ-साथ आम जनता की समस्याओं को दूर करने का भाव भी निहित है। साठोत्तरी कवि आम जनता की समस्याओं को कविता का विषय बनाता है और व्यवस्था की आँख में आँख डालकर कहता है कि, “तेरा निजाम है सिल दे जुबान शायर की, ये एहतियात ज़रूरी है इस बहर के लिए।”¹

साठोत्तरी कवि ने शोषण, संघर्ष और आशाहीन भरे जीवन में भी आशा की किरण को जलाने का काम किया है। और इन कवियों में दुष्यंत कुमार का नाम सबसे ऊपर आता है। उनकी कविता मोहभंग से शुरू होकर अंत तक आशा की एक किरण बचाए रखती है। कविता की यह प्रवृत्ति साठोत्तरी कवियों में सबसे ज्यादा दुष्यंत कुमार की कविताओं में दिखती है। इस संदर्भ में हम दुष्यंत कुमार के ‘आवाजों के घेरे’ कविता संग्रह की ‘राह खोजेंगे...’ शीर्षक कविता को देख सकते हैं। जिसमें कवि ने समाज में व्याप्त संघर्ष

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 261

और घुटन से उत्पन्न हुए अँधेरे का चित्रण किया है। यह अँधेरा समाज और आम जनता के सपनों पर छा गया है। कवि के ही शब्दों में हम देख सकते हैं कि-

“ये कराहें बंद कर दो/ बालकों को चुप कराओं
सब अँधेरे में सिमट आओं यहाँ नतशीश/ हम यहाँ से राह खोजेंगे।
हम पराजित हैं मगर लज्जित नहीं हैं/ हमें खुद पर नहीं
उन पर हँसी आती है/ हम निहत्थों को जिन्होंने हराया
अँधेरे व्यक्तित्व को अंधी गुफाओं में/ रोशनी का आसरा देकर
बड़ी आयोजना के साथ पहुँचाया/ और अपने ही घरों में कैद करके कहा:
“लो तुम्हें आज़ाद करते हैं”/ आह!/ वातावरण में बेहद घुटन है
सब अँधेरे में सिमट आओं/ और सट जाओं
और जितने आ सको उतने निकट आओं/ हम यहाँ से राह खोजेंगे।”¹

समाज में होने वाली प्रत्येक गतिविधियों का संबंध राजनीति से होता है। जिस देश विशेष के समाज में राजनीति राह भटक जाती है तो उस देश का विकास होना मुश्किल हो जाता है। समाज और राजनीति का संबंध बहुत गहरा होता है। साठोत्तरी कविता उस काल की कविता है जिस काल में देश की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आदि परिस्थितियाँ डाँवां-डोल थीं। देश आर्थिक संकट से गुजर रहा था। समाज में आम-आदमी पीड़ा, दर्द, अन्याय, शोषण, संघर्ष, गरीबी, मंहगाई, बेरोजगारी और भ्रष्टाचार आदि समस्याओं से जूझ रहा था। देश की हालत पर दुष्यंत कुमार लिखते हैं कि, “कल नुमाइश में मिला वो चीथड़े पहने हुए। मैंने पूछा नाम तो बोला कि हिन्दुस्ताना” राजनीति का सबसे बुरा हाल था। राजनीति में सौ-सौ कोस के लुच्चे-लफंगे लगातार बढ़ रहे थे। सब जनता की सेवा के नाम पर मेंवा खा रहे थे। देश की भोली-भाली जनता वादों को पूरा होने के इंजतार में सूखी जा रही थी। व्यवस्था में बैठे नेता और अधिकारी तथा पूंजीपति आदि जनता के नाम पर आने वाली योजनाओं को हजम करते रहे और डकार भी नहीं लेते थे। देश

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 454

की जनता चुनाव के समय आने वाली भीड़ बनकर रह गयी थी। जनतंत्र में जनता भीड़तंत्र बन गयी थी। इस संदर्भ में दुष्यंत कुमार ‘आश्वासनों का सूर्य’ शीर्षक कविता में लिखते हैं कि-

“डूब जाएगा पुनः आश्वासनों का सूर्य
भाषणों की धूप में तपते हुए चेहरे
विदा लेंगे/ फिर अँधेरा घेर लेगा घरों को
चुपचाप, हारे हुए अपने आपसे
सब लोग/ अपने हाथ और हथेलियाँ सहलाएँगे।”¹

भारत की राजनीति पर दुष्यंत कुमार का ‘एक कंठ विषपायी’ गीति नाट्य भी प्रकाश डालता है नाटक में सामाजिक विषमता, अन्यायपूर्ण शासन व्यवस्था, भारत की वर्तमान राजनीति, शासकों का अनैतिक व्यवहार और उनकी स्वार्थी वृत्ति से पीड़ित एवं त्रस्त जनता का मार्मिक चित्रण किया गया है। यह नाटक भारतीय तत्कालीन राजनीति को समझने के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है। नाटक में दिखाया गया है कि किस प्रकार राजा, शासक और नेताओं ने प्राचीन काल से लेकर आज तक आम जनता पर अत्याचार और शोषण किया है। इस संदर्भ में नाटक के ‘विष्णु-सर्वहत्’ पात्रों के एक संवाद को देख सकते हैं। युद्ध के बाद का दृश्य है विष्णु कहता है कि जब तुम इस में कुछ नहीं हो तो पीड़ा और दर्द क्यों भोग रहे हो। तो ‘सर्वहत्’ कहता है कि-

“क्योंकि यह/ विधाता के नियमों की विडंबना है।
चाहे न चाहे/ किंतु/ शासक की भूलों का उत्तरदायित्व
प्रजा को वहन करना पड़ता है,
उसे गलित मूल्यों का दंड भरना पड़ता है।
और मैं मनुष्य ही नहीं हूँ/ मैं प्रजा भी हूँ।”²

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 120

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 58

साठोत्तरी कविता में सांस्कृतिक चेतना की गूँज सुनाई देती है। साठोत्तरी कविता जिस समय लिखी जा रही थी उस समय समाज में मानवीय और नैतिक मूल्यों का लगातार विघटन हो रहा था। समाज में सत्य, अहिंसा, ईमानदारी, सहयोग, सहकारिता, सहानुभूति, संवेदना, दया, करुणा और सामूहिकता आदि शब्द अपना अर्थ निरन्तर खोते जा रहे थे। इनके स्थान पर असत्य, हिंसा, बेईमानी, भ्रष्टाचार, लूट-खसोट, स्वार्थीपन, असहयोग, असहानुभूति, संवेदनहीनता, अमानवीयता और अनैतिकता आदि शब्द समाज में पैर जमाने लगे थे। समाज में धर्म के नाम पर साम्प्रदायिक तनाव लगातार फैल रहा था जिसके कारण अविश्वास, असहयोग, असहिष्णुता और संवेदनहीनता आदि का माहौल बनने लगा। सांस्कृतिक मूल्यों के पतन में राजनीतिक गतिविधियों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का काम किया। भ्रष्ट नेताओं ने जनता के जीवन मूल्यों को भी प्रभावित किया। नगरों की संस्कृति ने आदमी को आदमी से अलग कर दिया। नगर का आदमी स्वार्थ और संवेदनहीनता की भावना से ग्रसित हो गया। उसका परिवार और सामाजिक संबंधों के प्रति लगाव कम हो गया। संबंधों में सहजता, मधुरता और आत्मीयता आदि का भाव समाप्त होने लगा। साठोत्तरी कवि ने इसे महसूस ही नहीं, बल्कि अपनी कविता में व्यक्त भी किया। दुष्यंत कुमार की कविताओं में मानवीय और अनैतिक आदि सांस्कृतिक मूल्यों के पतन को देखा जा सकता है। इसके लिए हम कवि की ‘असमर्थता’ शीर्षक कविता को देख सकते हैं-

“पथ के बीचों-बीच खड़ी दीवार/ और मैं देख रहा हूँ!

बढ़ती आती रात/ चील-सी पर फैलाए,

और सिमटते जाते/ विश्वासों के साए।

तम का अपने सूरज पर विस्तार

और मैं देख रहा हूँ!”¹

दुष्यंत कुमार ने ‘जलते हुए वन का वसंत’ कविता संग्रह की ‘कहाँ से शुरू करें यात्रा’ शीर्षक कविता में बदलते हुए सांस्कृतिक मूल्यों, तत्वों और शब्दों में दिखाया है कि किस प्रकार परिभाषाएँ बदल रही हैं। कविता की निम्नलिखित पंक्तियों में देख में सकते हैं-

“आज साक्षी है युग जिसमें/ सिर्फ पाँवों तले की ज़मीन ही नहीं

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 461

बल्कि जीवन के मूल्य, तत्व, बदल गए,/ बदल गए-
महाकार पर्वत, मरुस्थलों में,/ समतल मैदानों में/ जल के उद्दाम वेग
कलों-कारखानों में,/ तीर्थ स्थल, मंदिर और मस्जिद, मैदानों में,
दर्द कामनाओं में,/ मूल्य, भावनाओं में,
मानवीय संस्कार, सामयिक विचारों में,/ आस्था, प्रतीक्षा में अवसर की,
बदल गई सारी परिभाषाएँ ईश्वर की!/ ...
लोगों को तंग लग रही हैं पोशाकें/ जो संस्कृतियाँ बाँटती हैं”¹

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.-181

चौथा अध्याय:

जनवादी कविता और दुष्यंत कुमार का काव्य

4.1 जनवादी कविता की पृष्ठभूमि

सभी भाषाओं के साहित्य की तरह हिंदी साहित्य भी अनेक साहित्यिक आन्दोलनों से होकर गुजरा है। ऐसा ही एक साहित्यिक आन्दोलन छठे दशक के बाद हिंदी साहित्य में 'जनवादी साहित्य' के रूप में दिखाई देता है। छठे दशक के बाद के हिंदी साहित्य में 'जन' शब्द की गूंज बार-बार सुनाई देती है। इस गूंज का मुख्य कारण था, स्वतंत्रता के बाद भारत में जनतंत्र, प्रजातंत्र, गणतंत्र और लोकतंत्र जैसे अर्थ लिए शब्दों का प्रचार-प्रसार खूब होना। इन शब्दों के प्रयोग ने एक ऐसा माहौल बनाया जिससे यह लगने लगा कि भारतीय व्यवस्था में सर्वेसर्वा आम जनता ही है। आम जनता अपने आपको सर्वेसर्वा मानकर सुनहरे सपनों के साथ गहरी नींद में सो गई क्योंकि जनवाद में लिखित रूप से जनता ही सर्वेसर्वा होती है जिसके प्रमाण रूप में अमेरिकी राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन की लोकतंत्र या जनवाद संदर्भ में निम्न सर्व प्रमाणिक शब्दों को देखा जा सकता है- "लोकतंत्र जनता का, जनता के लिए और जनता द्वारा शासन"¹ और जनवाद के विषय में डॉ. कुंवरपाल सिंह लिखते हैं कि, "जनवाद का वास्तविक अर्थ है साम्राज्यवाद, पूंजीवाद, सामंती व्यवस्था और उसके जीवन-मूल्यों का सक्रिय विरोध, श्रमिक वर्ग और पीड़ितजन के साथ वास्तविक हमदर्दी है।... जनवाद का उद्देश्य है- साम्राज्यवादी, पूंजीवादी और सामन्ती व्यवस्था के स्थान पर जनता के प्रजातंत्र की स्थापना।"² और एक अन्य जगह कहा गया है कि "जनवाद एक ऐसा दहकता मशाल है जिसे विश्व की शोषित, उत्पीड़ित जनता ने अपने मजबूत हाथों में उठाया है।"³ लेकिन 'जनवाद' के इन सभी मतों, विचारों और परिभाषाओं आदि को हमारे द्वारा चुने गए हमारे प्रतिनिधियों और पूंजीवादियों ने मिथ्या सिद्ध करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। जनवाद के ये सभी तथ्य झूठे लगते हैं- (क) लोकतंत्र में जनता ही सत्ताधारी होती है। (ख) उसकी अनुमति से शासन होता है। (ग) उसकी प्रगति ही शासन का एकमात्र लक्ष्य माना जाता है आदि। और जनवाद के रक्षक कहे जाने वाले न्यायपालिका, कार्यपालिका, विधायिका और मीडिया आदि चारों स्तम्भों में पूंजीवादी घुन लग गया है। इस घुन ने जनवाद में मिले जनता के सभी

¹ लोकतंत्र, विकिपीडिया

² डॉ. वशिष्ठ अनूप, हिन्दी की जनवादी कविता, पृ.सं.- 85

³ डॉ. नरेंद्र सिंह, साठोत्तरी हिन्दी कविता में जनवादी चेतना, पृ.सं.- 28

अधिकारों को थोथा कर दिया है। यहाँ पर जनतंत्र के संदर्भ में धूमिल की 'पटकथा' शीर्षक कविता की निम्न पंक्तियाँ सार्थक लगती हैं- 'अपने यहाँ जनतन्त्र/ एक ऐसा तमाशा है/ जिसकी जान/ मदारी की भाषा है।'¹ परिणाम स्वरूप जनवाद के सुनहरे शब्द का रंग फीका पड़ने लगा क्योंकि जनता का जनवाद, पूंजीवाद का जनवाद बनकर रह गया था। पूंजीवाद के जनवाद ने आम जनता को स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्वता के नाम पर ठगने का काम किया। देश का बहुसंख्यक मेहनतकश वर्ग गरीबी की गहरी खाई में गिरता ही चला गया और पूंजीवादी अल्पसंख्यक वर्ग अपनी शोषणकारी नीतियों के कारण दिन-प्रतिदिन पूंजी के शिखर पर चढ़ता चला गया। यह सब हुआ सरकारों और पूंजीवादियों की मिली-भगत से। और दूसरी तरफ देश की सरकारें आम जनता को रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी मूलभूत जरूरतों को पूरा करने में भी असफल रही। 'गरीबी हटाओ' जैसे आकर्षक नारे भी नारे बनकर ही रह गए। गरीबी तो दूर हुई नहीं ऊपर से आम जनता को आपातकाल के पीड़ादायक दौर से भी गुजरना पड़ा। जनता के तंत्र में जनता की ही सबसे दयनीय स्थिति थी। इस दयनीय स्थिति और इसके लिए जिम्मेदार तत्वों के खिलाफ साठोत्तरी युवा कवियों ने आम जनता की पक्षधरता के साथ लिखना शुरू किया। जिसमें आम जनता, किसान और मजदूर वर्ग आदि के दुःख-दर्द, पीड़ा, समस्याओं, भेदभाव, और अत्याचारों को मुखरता से उठाया है। साथ ही सत्ता, सरकार, सामन्ती व्यवस्था और पूंजीवाद तथा पूंजीवादियों आदि का तीव्र और कड़े स्वर में विरोध किया है। इस प्रकार जनता के दुःख-दर्द, पीड़ा और समस्याओं को केंद्र में रखकर यथार्थ रूप से लिखा गया साहित्य ही जनवादी साहित्य की संज्ञा पाने लगा। और इस प्रकार हिंदी साहित्य में जनवादी साहित्य की नई अवधारणा का जन्म होता है। जनवादी साहित्य की अवधारणा के जन्म के बाद सभी हिंदी विधाओं के साथ जनवादी शब्द जोड़ा जाने लगा जैसे- जनवादी कहानी, जनवादी उपन्यास और जनवादी कविता आदि।

4.2 जनवादी साहित्य के संदर्भ में विद्वानों के विचार

डॉ. कुंवरपाल सिंह जी लिखते हैं कि, साहित्य और कला के क्षेत्र में शोषित, उत्पीड़ित वर्ग की भावनाओं, संकल्पों, सुख-दुःख, जय-पराजय और संघर्षों की यथार्थ अभिव्यक्ति का नाम ही जनवाद है...जनवादी साहित्य का प्रमुख लक्ष्य होता है- जनता को शिक्षित करना। उनके संघर्षों और जीवन को स्वर प्रदान कर उन्हें आगे बढ़ाने में जनवादी साहित्य प्रेरणा देता है। जो जनता के मूल परिवर्तन में प्रमुख

¹ सुदामा पाण्डेय धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ.सं.- 106

भूमिका अदा करती है, उस तक जनवादी साहित्य को पहुंचाना प्रतिबद्ध, जागरूक और जनवादी रचनाकार के लिए आवश्यक है। ऐसी भाषा और कला का विकास जनवादी साहित्य का लक्ष्य और दायित्व है”¹

जनवादी साहित्य की अवधारणा के बारे में डॉ. अरुणा लोखंडे जी लिखती हैं कि, “जनसाहित्य या जनवादी साहित्य उसी को कहा जाना चाहिए जिसमें बहुसंख्यक मजदूरों और निम्न मध्यमवर्ग के लोगों की समस्याओं का चित्रण किया गया है।”²

शैलेश मटियानी जनवादी साहित्य के केन्द्रीय स्वरों की पहचान कराते हुए लिखते हैं कि, “संगठन शक्ति और सामूहिकता पर बल देने वाला, साम्यवादी चिंतन को खोज निकालने वाला, समाज के हित में संघर्ष करने वाला, मानव विद्रोही व्यवस्था के विरुद्ध उपाय खोजने वाला, पूंजीवाद के विरुद्ध सामूहिक संघर्ष करने वाला, संगठित जनवादी विद्रोह को वाणी देने वाला, दलाल और पूंजीवादी व्यवस्था के खिलाफ शोषित जनता को आत्मनिर्भर बनाने वाला, साम्राज्यवाद और पूंजीवाद के विरुद्ध लड़ने वाला, साम्राज्यवादी पूंजीवाद का मूलोच्छेदन करने वाला, विद्रोही चरित्र की मांग करने वाला, व्यवस्था की बाहरी परतों को खोलकर उसके पाखंड को उकेरने वाला, किसी भी राजनीतिक दल विशेष से सम्बन्ध न रखने वाले सिद्धांत का समर्थन न करने वाला, व्यवस्था से विद्रोह करने वाला, समाज की संरचना में परिवर्तन को लाने वाला, समाज के मूलभूत प्रश्नों को कुचलने वाली व्यवस्था से विरोध करने वाला, सत्ता और सत्ता की प्रकृति में परिवर्तन चाहने वाला, सामान्य मनुष्य के विकास पर दृष्टि केन्द्रित करने वाला, मूल्यों की सुरक्षा करने वाला, सामान्य समाज के वास्तविक प्रश्नों से जूझने वाला, समाज को समाज से जोड़ने वाला, विरोध के जोखिमों की पहचान करा देने वाला, व्यवस्था के साथ सौदेबाजी न करने वाला कथा साहित्य जनवादी कथा साहित्य की कोटि में आता है।”³

जनवादी कविता के बारे में डॉ. शिवकुमार मिश्र जी लिखते हैं कि, “जनवादी कविता का आधार किसी राष्ट्र या देश की जनता का मुख्य जीवन प्रवाह होता है और इस जनता के अंतर्गत किसी राष्ट्र या देश के निवासियों का मुख्यांश आता है जो समाज के प्रभुवर्गों के विपरीत अपनी जीविका का निर्वाह करता है। यह श्रम शारीरिक भी होता है और मानसिक भी। जनवादी कविता का इस जनता की जिन्दगी को उसकी सम्पूर्णता के साथ प्रस्तुत करती है और अपने इसी व्यापक और पुष्ट जनाधार के कारण किसी भी समय

¹ डॉ. वशिष्ठ अनूप, हिन्दी की जनवादी कविता, पृ.सं.- 85

² सं. सव्यसाची, ‘उत्तरार्ध’ पत्रिका, जनवादी साहित्य विशेषांक, अंक- 9, पृ.सं.- 107

³ शैलेश मटियानी, लेखक और संवेदना, पृ.सं.- 238

तथा किसी भी युग में शासक-शोषक वर्गों के समक्ष चुनौती के रूप में प्रस्तुत होती रही है। जनवादी कविता जनता की जिन्दगी के बीच से उगते हुए उसकी आशों-आकाक्षाओं, उसके स्वप्नों तथा संघर्षों को वाणी देती है। किसी भी राष्ट्र या देश की जनता की संस्कृति, उसके कर्म तथा आचरण को हम बड़े सहज रूप में उसमें प्रतिबिंबित देख सकते हैं। वह एक स्तर पर जनता के जीवन से उसकी कर्मठता तथा संघर्षशीलता से प्रेरणा लेती है; दूसरे स्तर पर जनता को शिक्षित तथा जाग्रत करते हुए, उसके आकांक्षित जीवन को उसके समग्र चित्रमयता तथा पैसेपन के साथ प्रस्तुत करते हुए उसे अपने इस प्राप्तव्य तक पहुंचने में मदद करती है।”¹

जनवादी साहित्य के विषय में गंगा प्रसाद विमल लिखते हैं कि, “सचमुच जिसे हम जन साहित्य कहते हैं- क्या सचमुच उस तरह का साहित्य लिखने वालों के मन में जन की समस्याओं को लेकर लिखने का आग्रह है? इस बात को ध्यान में रखें कि हमारे जैसे बहुराष्ट्रीय सांस्कृतिक इकाईयों पर थोपा नहीं जा सकता इसीलिए देखना यह चाहिए कि जन की मूलभूत समस्याओं के प्रति लेखक का आग्रह कहीं उस दबाव की देन तो नहीं है जो उस युग की मांग से बढ़ती है।”²

धनंजय वर्मा लिखते हैं कि, “जन साहित्य मेरे लिए एक ऐसी व्यापक अवधारणा है, जिसमें जन की भाषा प्रकट करने की बात आती है। जिस जन के लिए हम लिख रहे हैं, उन तक पहुंचने के लिए उस भाषा का प्रयोग जरूरी है जो उनकी पीड़ाओं को जुबान दे सके।”³

उपरोक्त विद्वानों के मतों का विवेचन-विश्लेषण करने के बाद कहा जा सकता है कि जनवादी साहित्य के केंद्र में आम आदमी और उसकी समस्याएँ हैं। जनवादी साहित्य में साहित्यकारों ने दुखी, पीड़ित और शोषित व्यक्ति की पीड़ा को लिपिबद्ध किया है। और उनके अधिकारों के लिए आवाज़ बुलन्द की है। देश की आज़ादी आम आदमी के लिए गुलामी की जंजीरें बनकर रह गईं। धूमिल के शब्दों में कहें तो ‘आज़ादी झूठी थाली’ से ज्यादा कुछ नहीं है जिसे ब्रिटिश हुकूमत से हमने लम्बी लड़ाई और सैकड़ों शहीदों की कुर्बानियों के बाद हासिल किया है। किन्तु हमारे रहनुमाओं ने शहीदों का नाम बेच-बेच कर आम जनता की संवेदनाओं से खेलकर सत्ता को प्राप्त किया। इन्होंने सत्ता में आते ही अपने वादों को भूलने में भी देर नहीं लगाई। देश का मेंहनतकश वर्ग अमीरी और गरीबी की चक्की में पिसकर रह गया है। ऐसे समय में

¹ डॉ. अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृ.सं.- 157

² डॉ. अरूणा लोखंडे, समकालीन हिंदी कथा-साहित्य में जनचेतना, पृ.सं.- 210

³ डॉ. अरूणा लोखंडे, समकालीन हिंदी कथा-साहित्य में जनचेतना, पृ.सं.- 213

साहित्यकारों के छोटे से वर्ग ने पीड़ित और शोषितों के दुःख-दर्द को अपनी लेखनी का विषय बनाया। साथ ही जिम्मेदार लोगों, सत्ता, व्यवस्था और सरकारों तथा प्रशासन आदि का कड़े स्वर में विरोध किया। इस साहित्य ने मशाल का काम किया जिसके विषय में दुष्यंत कुमार अपनी गज़ल में इशारा करते हुए कहते हैं कि, “मेरी जुबान से निकली तो सिर्फ नज़्म बनी, तुम्हारे हाथ में आई तो एक मशाल हुई।”¹ दुष्यंत कुमार की तरह अन्य साहित्यकारों ने अपनी-अपनी प्रिय साहित्यिक विधाओं में जनपक्षधरता के साथ लिखना शुरू किया। जिसके बाद हिंदी साहित्य की महत्वपूर्ण या सर्वप्रचलित विधाओं के साथ जनवादी शब्द जोड़ा जाने लगा जैसे- जनवादी कविता, जनवादी कहानी और जनवादी उपन्यास आदि। यहाँ एक बात कहना महत्वपूर्ण है कि जनवादी साहित्य की अवधारणा बिल्कुल नई नहीं है क्योंकि हिंदी साहित्य में जनवादी साहित्य की एक लम्बी परम्परा देखने को मिलती है जो हिंदी साहित्य में भक्तिकाल से, मध्यम गति से निरन्तर बह रही है। जनवादी साहित्य की यह धारा अनेकों उतारों-चढ़ावों से गुजरने के बाद, हमें वर्तमान स्थिति में मिली है। जनवादी साहित्य की परम्परा के विषय में विस्तार से हम ‘जनवादी कविता की परम्परा’ के अंतर्गत चर्चा करेंगे। यहाँ हम केवल कविता के सन्दर्भ में जनवादी साहित्य की परम्परा की चर्चा करेंगे।

4.3 जनवादी कविता की परम्परा

आधुनिकता की समझ के लिए ही नहीं बल्कि साहित्य की समझ के लिए भी परम्परा का ज्ञान उतना ही महत्वपूर्ण है जितना किसी प्यासे जीव के लिए पानी महत्वपूर्ण होता है इसलिए जनवादी कविता की परम्परा पर चर्चा करने से पहले हम ‘परम्परा’ शब्द का अर्थ जान लेना आवश्यक समझते हैं। ‘परम्परा’ का शाब्दिक अर्थ होता है- ‘बिना किसी व्यवधान के शृंखला रूप में जारी रहना’। परम्परा-प्रणाली में किसी विषय या उपविषय का ज्ञान बिना किसी परिवर्तन के एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ियों में संचारित होता रहता है। परम्परा एक दिन या एक वर्ष में नहीं बनती है। यह एक लम्बी सतत या निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया का परिणाम होती है। परम्परा में परिवर्तन की सम्भावना हमेशा जीवित रहती है यदि ऐसा किसी परम्परा में नहीं होता है तो वह परम्परा प्रथा या रूढ़ि में परिवर्तित हो जाती है। परम्परा अपने आपको अर्थवान बनाये रखने के लिए समय-समय पर अपने में परिवर्तन करती है क्योंकि अगली पीढ़ी तक पहुँचने के लिए आधुनिक गुणों को समाहित करना होता है। आधुनिक गुणों के कारण ही परम्परा तार्किक बनती है। तार्किकता की प्रवृत्ति परम्परा को जड़ होने से बचाकर पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानान्तरित करती रहती है।

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.सं.- 289

जनवादी कविता की परम्परा की जब हम बात करते हैं तो भक्तिकाल से आरम्भ करते हैं क्योंकि भक्तिकाल ही ऐसा काल है जिसमें सबसे पहले धार्मिकता और सामन्ती व्यवस्था तथा मुसलमानी व्यवस्था आदि की मद-चक्की में पिस रही आम जनता को जीव, मानव और मनुष्य आदि माना गया है। तथाकथित समाज के ठेकेदारों ने उंच-नीच, बड़े-छोटे, पवित्र-अपवित्र आदि के जातीय जाल में उलझाकर इनके जीवन को नरक बनाए रखा। मुसलमानी शासन व्यवस्था के अत्याचार अलग से निरन्तर होते रहते थे। उन्हें स्वेच्छा से कार्य करने जैसे- मानवीय अधिकारों तक से वंचित रखा गया। ये समाज में गुलामों और दासों की तरह पशुवत जीवन जीने के लिए मजबूर थे। मुक्तिबोध के हवाले से कहें तो ‘भक्तिकाल में पहली बार निम्न और नीच समझे जाने वाली इन जातियों के बीच से रैदास, कबीर, सेना और नाई आदि जैसे जननायक पैदा हुए। जिन्होंने मानव जाति को सर्वोपरि मानकर सामन्ती जातीय व्यवस्था का कड़े स्वर में विरोध किया। इन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन जनहित के लिए न्योछावर कर दिया और ऐसा लगता है जैसे इनका जन्म ही पृथ्वी पर जन उद्धार के लिए हुआ था इसलिए तत्कालीन असामाजिक तत्वों को चंडीदास समझाते हुए कहते हैं कि, ‘शुनह मानुष भाई! शबरे उपरे मानुष सत्य ताहार ऊपर नाई’ है मनुष्य भईया! सबसे ऊपर मनुष्य है। जो सार्वभौमिक सत्य है। हमें कुल, जाति, धर्म, क्षेत्रीयता, बड़ा-छोटा, उंच-नीच, पवित्र-अपवित्र और आस्तिक-नास्तिक आदि की अमानवीय संकीर्णता की सोच से ऊपर उठकर एक-दूसरे को गले लगाने की आवश्यकता है। यही सबके लिए हितकारी और लाभदायक होगा। भक्तिकाल का साहित्य जनपक्षधरता की इसी भावना के साथ लिखा गया साहित्य है जिसका नेतृत्व रैदास, कबीरदास, सूर, जायसी और तुलसीदास आदि जैसे संतों ने किया है।

हमारा ध्यान सबसे पहले भक्तिकाल के जनवादी और विद्रोही चेतना के सशक्त हस्ताक्षर सिरमणि संत कबीरदास पर जाता है। हिंदी साहित्य या हिंदी साहित्य की जनवादी परम्परा की चर्चा, उनके बिना अधूरी है। आलोचक भारत यायावर अपनी ‘विरासत’ पुस्तक के ‘कबीर की कविता’ शीर्षक लेख में जनक्रांति करने वाले पुरुषों की सूची में गौतम बुद्ध के बाद दूसरा बड़ा चिंतक और दार्शनिक कबीर को मानते हुए लिखते हैं कि, “प्रत्येक क्रांति के दो पक्ष होते हैं- समकालीन परिस्थितियों से विद्रोह एवं नूतन तथा रचनात्मक धारणा की प्रतिष्ठा। ये दोनों पक्ष कबीर की कविता में हैं। इसलिए कबीर की कविता क्रांतिकारी है। भारतीय चिंतन और दर्शन की परम्परा में पहली क्रांति गौतम बुद्ध ने की थी और दूसरी कबीर ने। इन दोनों ने वर्णाश्रम धर्म के सामाजिक ढांचे को तोड़ते हुए जनवादी परम्परा की शुरुआत की थी। इन्होंने लोक-जीवन में अपनी चेतना को विलीन कर दिया था। कारण था कि दोनों ही सहजमार्गी थे, लोकवादी थे

और अपने सिद्धांत पर अडिग रहकर तमाम तरह की रूढ़ियों और अंध परम्परा के उग्र विरोधी थे।¹ कबीर अपने युग के बड़े चिंतक, दार्शनिक, साहित्यकार और समाज सुधारक थे। उन्होंने अपने मौखिक साहित्य के माध्यम से मानवीय जीवन मूल्यों का संदेश दिया। उनकी लोकप्रियता 'जनश्रुति' बन गई थी। कबीर महानता के उच्च शिखर पर पहुंचकर भी 'जन' ही रहे और उस ऊंचाई से भी 'जन' की बात करते रहे। हर सम्भव वे जन उद्धार के लिए प्रयासरत रहे। जनांदोलन में कबीर अपने साथ लोगों को जोड़ने का आह्वान करते हुए कहते हैं-

“कबीरा खड़ा बाजार में लिये लुकाठी हाथ।

जो घर फूँके आपना चले हमारे साथ॥”²

कबीर के समय में आम जनता का शोषण सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक आदि सभी आधारों पर हो रहा था। शोषणकारी तंत्र का छोटे से लेकर बड़े तक सभी सदस्य जनता का खून जोंक की भांति पी रहे थे। ऐसे कठिन समय में कबीर ने जनता को जागरूक किया। कबीर ने शोषणकारी वर्ग के साथ-साथ रूढ़ि, कुंठा, परम्परा, और अन्धविश्वासों से ग्रसित आम जनता को भी लताड़ लगाई। और कहा यदि तुम्हें अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक स्थिति में सुधार करना है तो बाहरी आडम्बरों को छोड़ना होगा।

संत रैदास जनहित की बात करते हुए कहते हैं कि किसी व्यक्ति को सिर्फ इसलिए नहीं पूजना(सम्मान) चाहिए क्योंकि वह किसी ऊंचे कुल में पैदा हुआ है बल्कि गुणवान व्यक्ति का सम्मान करना चाहिए, भले ही वह किसी नीची समझे जाने वाली जाति में ही क्यों न पैदा हुआ हो-

“रविदास’ ब्राह्मण मत पूजिये, जउ होवै गुणहीन।

पूजिहि चरन चंडाल के, जउ होवै गुन परवीन॥”³

¹ भारत यायावर, विरासत, पृ.सं.- 93

² रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ.सं.- 39

³ रविदास, पावन अमृतबानी श्री गुरु रविदास जी, पृ.सं.- 89

और रैदास व्यक्ति को हमेशा कर्म करने की सलाह देते हुए कहते हैं कि कर्म के बदले मिलने वाले फल की आशा नहीं छोड़नी चाहिए, क्योंकि कर्म करना मनुष्य का धर्म है और फल मिलना अधिकार। रैदास ‘कर्म कर, फल की चिंता मत कर’ प्रसिद्ध उक्ति का खंडन करते हैं-

“कर्म बंधन मंह रमि रहियो, फल की तज्यो न आस

कर्म मनुष कौ धर्म है, सत भासै रविदास”¹

इससे आगे बढ़कर रैदास गंगा स्नान करके लौटते ब्राह्मण पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि, “कहै रैदास तरण विधि, मन चंगा तो कठौती में गंगा।”²

भक्तिकाल से हम यहाँ जायसी पर चर्चा करेंगे जो निर्गुणधारा के सूफीमत का प्रतिनिधित्व करते हैं। सूफी संतों की यह विशेषता रही है कि वे भले बाहर से आए हुए हैं लेकिन उन्होंने अपने साहित्य में जिस समाज का चित्रण किया है वह भारतीय समाज ही है। उन्होंने पहले भारतीय समाज को सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक आदि सभी दृष्टिकोणों से देखा-परखा और समझा फिर उस पर अपनी लेखनी चलाई। उन्होंने हिन्दू समाज में प्रचलित कहानियों को अपनाया और इन पर इस्लामी प्रभाव से भी बचाए रखा जो इनकी विशेषता या उपलब्धी है। जब हम जायसी के ‘पद्मावत’ के ‘नागमती वियोग-खण्ड’ का अध्ययन करते हैं तो नागमती हमें रानी की अपेक्षा सामान्य नारी अधिक लगती है। नागमती जिस तरह से ऋतु परिवर्तन को होते देख रही है उस तरह से तो एक किसान देखता है। किसान को फसल बोने के लिए ऋतु ज्ञान होना आवश्यक है। उसे मालूम है पुष्प नक्षत्र लग गया है और बारिस होने वाली है लेकिन मेरे छप्पर को छवाने(बनाने) वाला मेरा पति घर नहीं है। जायसी लिखते हैं-

“पुरव नछत्र सिर ऊपर आवा। हौं बिनु नांह मँदिर को छावा”³

नागमती को यहाँ तक मालूम है कि कौन से महीने में कौन सा नक्षत्र दिखाई देता है और वह किसका संकेत देता है।

भक्तिकाल में कबीर के बाद लोक हृदय के चितरे तुलसीदास केंद्र बिंदु रहे हैं। इनका साहित्य लोकजीवन की गहरी अनुभूति के साथ-साथ लोक से साक्षात्कार भी करवाता है। इनके साहित्य में जन

¹ रविदास, श्री गुरु रविदास दीप ग्रंथ, पृ.सं.- 711

² डॉ. धर्मवीर, ‘महान आजीवक, कबीर, रैदास और गोसल’, पृ.सं.- 511

³ विश्वनाथ त्रिपाठी, हिंदी साहित्य का सरल इतिहास, पृ.सं.- 30

पक्षधरता की भावना दृष्टिगोचर होती है लेकिन इनके साहित्य में कुछ ऐसा भी है जिसकी कड़ी आलोचना का सामना तुलसीदास और उसके समर्थक आलोचकों को करना पड़ता है। उस साहित्य में तुलसीदासपूर्णतः सामन्ती और ब्राह्मणवादी मानसिकता से पीड़ित लगते हैं। जहाँ पर तुलसीदासकी जन पक्षधरता पर सवाल खड़े होते हैं। वे कहते हैं-

“प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही। मरजादा पुनि तुम्हरी कीन्ही॥

ढोल, गवाँर, सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी”¹

इसके लिए तुलसीदासकी तीव्र आलोचना होती है। नारी को लेकर इनकी एक चौपाई और है जो उपरोक्त पंक्तियों से सभी स्तरों पर बिलकुल अलग है वे लिखते हैं कि-

“कत बिधि सजी नारि जग माँहीं। पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं॥”²

तुलसीदासकी एक चौपाई और है जो विवादों के घेरे में रही है क्योंकि वह जन पक्षधरता के साथ रैदास की पंक्तियों से बिलकुल उल्टी है। रैदास लिखते हैं गुणहीन ब्राह्मण को पूजना (सम्मान) नहीं चाहिए, बल्कि गुणवान नीची समझी जाने वाली जाति के व्यक्ति को पूजना चाहिए। इसके विपरीत तुलसीदास कहते हैं कि ब्राह्मण चाहे कितना ज्ञान से गुणहीन हो, उसकी पूजा करनी चाहिए। शूद्र जाति का व्यक्ति चाहे कितना भी गुणवान हो वो कभी पूजनीय नहीं हो सकता। तुलसीदास लिखते हैं-

“पूजिय बिप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना”³

इस प्रकार की सब कमियों के बावजूद तुलसीदासको आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लोकनायक की संज्ञा दी है जिसके वो अधिकारी भी हैं। तुलसीदासके विषय में आचार्य शुक्ल लिखते हैं कि, “तुलसीदास जी उत्तरी भारत की समग्र जनता के हृदयमन्दिर में पूर्ण प्रतिष्ठा के साथ विराज रहे हैं। भारतीय जनता का प्रतिनिधि कवि यदि किसी को कह सकते हैं तो इन्हीं महानुभाव को।”⁴ तुलसीदासने अपने ग्रंथों में लोक जीवन के यथार्थ चित्र खींचे हैं जिनमें आम जनता की दयनीय स्थिति को दिखाया गया है। भारत का अन्नदाता किसान ही दाने-दाने के लिए और ऋण से दबा हुआ था। भिखारी को भीख देने के लिए भी जनता

¹ टीकाकार हनुमानप्रसाद पोद्दार, श्रीरामचरितमानस, पृ.सं.- 705

² टीकाकार हनुमानप्रसाद पोद्दार, श्रीरामचरितमानस, पृ.सं.- 94

³ टीकाकार हनुमानप्रसाद पोद्दार, श्रीरामचरितमानस, पृ.सं.- 610

⁴ आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, कमल प्रकाशन, पृ.सं.- 102

के पास कुछ नहीं था। व्यापारियों का व्यापार खत्म होने की कगार पर था। जनता बेरोजगारी के कारण अत्यंत दुखी और असहाय स्थिति में जीवन व्यतीत कर रही थी। ऐसे में बेरोजगार जनता समझ नहीं पा रही थी कि वो करे भी तो क्या करे और कहाँ जाए? ऐसे में तुलसीदासजनता को राम की शरण में जाने की बात करते हैं। यहाँ तुलसीदासराम को दुखी, पीड़ित जनता का पालनहार मानते हैं और उनकी भक्ति करने के लिए लोगों से कहते हैं। यहाँ पर भक्ति भाव के अतिरिक्त तुलसीदासअपने समय के समाज का चित्रण कर रहे हैं जिसे रेखांकित करना ही यहाँ हमारा एकमात्र उद्देश्य है। तत्कालीन समाज जैसी विषम परिस्थितियों में जीने के लिए मजबूर था जिसके विषय में तुलसीदासलिखते हैं-

“खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि,

बनिक को बनज न चाकर को चाकरी।

जीविका-बिहीन लोग सीद्यमान सोच बस,

कहैं एक एकन सों ‘कहाँ जाई, का करी?’”¹

भक्तिकाल में तुलसीदासके बाद सूरदास अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। सूर के साहित्य में भक्ति का रूप श्रृंगार और वात्सल्य दो भावों में देखने को मिलता है। जिसके विषय में आचार्य शुक्ल लिखते हैं- “श्रृंगार और वात्सल्य के क्षेत्र में जहाँ तक इनकी दृष्टि पहुँची वहाँ तक और किसी कवि की नहीं।”² सूर ने श्रृंगार और वात्सल्य के माध्यम से कृष्ण भक्ति की है जो उनका मुख्य उद्देश्य रहा होगा लेकिन साथ ही इसके माध्यम से तत्कालीन समाज की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक स्थिति का भान भी होता है। सूर ने गोपिकाओं और उद्धव संवाद के माध्यम से सगुण और निर्गुण भक्ति को प्रस्तुत किया है। इसे जब हम परत दर परत खोलकर देखते हैं तो इसमें हमें नारियाँ अपने अधिकारों के लिए लड़ती हुई दिखाई देती हैं। वे उद्धव को नहीं बल्कि पुरुष सत्ता को चुनौती देती हुई लगती हैं। और वे अपनी सारी बातें आधुनिक नारी के समान तर्क के साथ उद्धव के सामने प्रस्तुत करती हैं जहाँ उद्धव पुरुष समाज के समान निरुत्तर नजर आता है। सूर के माध्यम से गोपिकाएँ उद्धव से पूछती हैं-

“निर्गुण कौन देस को वासी?

¹ सं. सुधाकर पाण्डेय, तुलसीदासकृत कवितावली, पृ.सं.- 151

² आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.सं.- 122-123

मधुकर कहि समुझाइ सौंह दै, बूझति साँचि न हाँसी।”¹

गोपियाँ निर्गुण ज्ञान को अस्वीकार कर देती हैं तो उनसे उद्धव जिद करता है। जिससे परेशान होकर गोपियाँ पूछती हैं कि कहीं तुम्हें कुब्जा स्त्री ने तो नहीं भेजा? जो तुम प्रेम का सीधा-साधा रास्ता त्यागने के लिए बोल रहे हो। और हमारे रास्ते में निर्गुण के काँटे बिछा रहे हो। और तुम सारे वेद-पुरान, स्मृति आदि ग्रंथ सब पढ़ लो और बताओ कि कहीं भी महिलाओं के लिए जोग-योग की बात कही गई है? इसलिए हमें संदेह है कि तुम्हें जरूर कुब्जा ने भेजा है। अब उद्धव तुम्हें और उसे कौन समझाए कि कौन ऐसा है जो दूध और छाछ में अंतर नहीं जानता है। सूरदास गोपिकाओं के हवाले से कहते हैं कि मूल तो अक्रूर जी ले गए अब क्या उद्धव तुम हम से ब्याज लेने आए हो। सूरदास एक पद में लिखते हैं-

“काहे कौ रोकत मारग सूधौ।

सुनहु मधुप निरगुन कंटक तै, राजपंथ क्यों रूधौ।

कै तुम सिखि पठए हो कुबीजा, कहयो स्यामघनहूँ धौं।

वेद-पुरान सुमृति सब ढूँढ़ों, जुवतिनी जोग कहूँ धौं।

ताको कहा पुरैखों कीजै, जाने छाछ न दूधौ।

सूर मूर अक्रूर गयौ लै, ब्याज निवैरत उधौ॥”²

यहाँ हमारे लिए उद्धव-गोपिकाओं का संवाद महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि पद की अंतिम पंक्ति में आए मूल और ब्याज शब्द महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इन शब्दों से यह मालूम होता है कि सूरदास के समय में भी ब्याजखोरी और सूदखोरी का चलन समाज में था। और सामन्ती समाज की इस बुराई से जनता पीड़ित रही होगी। अभी गाँवों में सूदखोरों को यह कहते हुए सुना जा सकता है कि ‘पहले ब्याज और बाद में मूल’। इस प्रकार की सूरदास के साहित्य में जनवादी समस्याएँ देखी जा सकती है लेकिन उन्हें दूर करने एकमात्र मार्ग भक्ति है।

भक्तिकाल में कबीर के अतिरिक्त अन्य कवि जन के दुःख दर्द की बात तो करते हैं लेकिन जिम्मेदार तत्वों से लड़ते नजर नहीं आते हैं। निर्गुण धारा के ज्ञानमार्गी शाखा के संतों के साहित्य में ही जनवादी

¹ सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, सूरसागर-सार, पृ.सं.- 169

² सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, सूरसागर-सार, पृ.सं.- 179

परम्परा देखने को मिलती है। ये संत ही समाज में फैली बुराईयों से लड़ते नजर आते हैं। यहाँ कबीर और रैदास के माध्यम से यह दिखाने का प्रयास भी किया है वैसे यह प्रवृत्ति अन्य ज्ञानमार्गी संतों के यहाँ भी दिखती है। जायसी के साहित्य के संदर्भ में यही कहा जा सकता है कि जायसी के साहित्य में लोकजीवन की झांकी देखने को अवश्य मिलती है लेकिन लोकजीवन समस्या या उनके समधान के बारे में जानकारी नहीं मिलती है। तुलसीदासकी बात करें तो इनके यहाँ दोनों तरह की बातें देखने को मिलती हैं क्योंकि शोषित वर्ग और स्त्री को पीटने की बात भी करते हैं तो दूसरी ओर उसके दुखों से परेशान भी है। वही जब गुणहीन ब्राह्मण को पूजने की वकालत करते हैं तो उनका ब्राह्मणवाद भी धीरे से झांकता नजर आता है। तुलसीदासलोकवादी तो हैं इसमें कोई शक नहीं किया जा सकता है लेकिन जन के हितेषी थोड़े कम लगते हैं। इनके रामराज्य पर भी शक किया जा सकता है। सूरदास स्त्री के मामले में उद्धव-गोपिकाओं के संवाद के कारण तुलसीदाससे थोड़े आधुनिक लगते हैं। सूर ने स्त्री को पुरुष सत्ता से अपने अधिकारों के लिए मांग करते हुए दिखाया है। दूसरी ओर सूर के साहित्य में समाज का चित्रण किया गया जिससे तत्कालीन समाज का ज्ञान होता है लेकिन सूर का मुख्य उद्देश्य कृष्ण की भक्ति करना ही रहा है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि भक्तिकाल में संतो की धारा के अतिरिक्त जनवादी परम्परा की धूमिल सी रेखा दिखाई देती है। भक्तिकाल के बाद रीतिकाल में भी जनवादी परम्परा के स्वरूप को देख सकते हैं-

“संतन को कहा सीकरी सों काम?

आवत जात पनहियाँ टूटी, बिसरि गयो हरि नाम॥

जिनको मुख देखे दुख उपजत, तिनको करिबे परी सलाम।

कुभनदास लाल गिरिधर बिनु, और सबै बेकाम॥”¹

जहाँ भक्तिकाल में कुभनदास राजदरबारों से संतो के दूर रहने की बात करते हैं। वहीं रीतिकाल के आचार्य कवि राजदरबारों में जाने को लेकर ललायित रहते थे। रीतिकाल के अधिकांश कवि राजाओं और रईसों के आश्रय में रहते थे। वहाँ वे आश्रयदाताओं के गुणगान में अपने आप को व्यस्त रखते थे और दीन-दुनिया के दुःख-दर्द से दूरी बना के रखी। राजाओं का ऐसा अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है कि इनके जैसा बाहुवली राजा पूरे ब्रह्मांड में नहीं हुआ है। सोचने की बात यह है कि इन बाहुवलियों के बावजूद देश मुगलों और अंग्रेजों का गुलाम बना रहा। राजाओं के गुणगान से यदि समय बचता तो नायिकाओं के श्रृंगारिक

¹ आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.सं.- 129

वर्णन में व्यस्त हो गए। नायिका वर्णन में तो इनका मन इतना रमा कि अश्लीलता की उच्च सीमा की बुलंदियों को पार कर गए। नायिकाओं के प्रकार गिनाते-गिनाते भी नहीं थके, एक-दूसरे में होड़ लगी रही। ये आचार्य, कवि और विद्वान् केवल नाम के थे क्योंकि इनका जनपक्षधरता से दूर-दूर तक कोई सम्बन्ध नहीं दिखता है।

बिहारी का एक दोहा जनपक्षधर भावना से लिखा लगता है जिसे उन्होंने राजा जयसिंह को लिखकर भेजा था क्योंकि राजा भोगविलास में डूबकर अपने कर्तव्यों से विमुख हो गए थे-

“नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल।

अली कली ही सौं बिध्यौ, आगे कौन हवाला॥”¹

इस दोहे के प्रभाव से, राजा जयसिंह तो भोग-विलास छोड़कर अपने कार्यों में लग गए लेकिन दरबार में पहुँचते ही बिहारी का मन भी नायिकाओं के शृंगारिक वर्णन में रम गया।

रीतिकाल का साहित्य जन और समाज को प्रगति प्रदान करने में असमर्थ नजर आता है। रीतिकाव्य में जीवन दर्शन नहीं दिखता है। रीतिकाव्य के केंद्र में आश्रयदाताओं का गुणगान और नायिकाओं के यौवन का शृंगारिक वर्णन रहा है। इसकी परिधि के आसपास कभी-कभी ऐसी उक्तियाँ तथा स्थितियाँ देखने को मिलती हैं, जो जन हितकारी लगती हैं लेकिन ये ढूँढने पर ही दिखती हैं। रीतिकाल में नीति-प्रधान काव्य लिखने वाले कुछ कवि जैसे वृंद, बैताल और गिरधर कविराय आदि जरूर जन पक्षधर नजर आते हैं जिन्होंने मानवीय भावना के साथ साहित्य लिखा है। बैताल के कुछ दोहे देखे जा सकते हैं-

“मरै बैल गरियार, मरै वह अड़ियल टट्टू

मरै करकसा नारि, मरै वह खसम निखट्टू।

बाम्हन सो मरि जाय, हाथ लै मदिरा प्यावै

पूत वही मर जाय, जो कुल में दाग लगावै।

अरु बेनियाव राजा मरै, तबै नींद भर सोइए

¹ आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.सं.- 174

बैताल कहै विक्रम सुनौ, एते मरे न रोइए।”¹

जब हिंदी साहित्य के रीतिकाल का तथाकथित अंतिम दौर चल रहा था तो उस समय भारतीय पटल पर हलचल दिखाई देती है। यह लगभग वही समय था जिसे भारतीय नवजागरण का दौर कहा जाता है। उस समय भारतीय समाज विभिन्न प्रकार की कुप्रथा, रूढ़ियाँ और अंधविश्वासों आदि के कारण निरंतर पतन की तरफ बढ़ रहा था। ऐसे समय में समाज सुधारकों ने समाज की बुराईयों को दूर करने के लिए ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज और आर्य समाज तथा सत्यशोधक समाज जैसी संस्थाओं की स्थापना की। इन संस्थाओं ने समाज की बुराईयों को दूर करने और मानवीय मूल्यों को स्थापित करने का काम शुरू किया। दूसरी ओर ब्रिटिश हुकूमत का अत्याचार और शोषण दिनों-दिन बढ़ता जा रहा था। जनता के मन में लम्बे समय से जो विद्रोह का लावा जमा हो रहा था उसने तत्कालीन घटनाओं से चिंगारी पाकर ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ मोर्चा खोल दिया। इस प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम(1857) की घटना ने भारतीय जनता को राष्ट्रीय भावना से भर दिया था। इसका प्रभाव अन्य भाषाओं के साहित्य के साथ-साथ हिंदी साहित्य पर भी पड़ा जिसकी परिणति आधुनिक हिंदी साहित्य के भारतेन्दु युग के रूप में देखने को मिलती है।

आधुनिक काल के प्रथम चरण को भारतेन्दु युग की संज्ञा मिली क्योंकि भारतेन्दु इस युग के प्रतिनिधि साहित्यकार थे। भारतेन्दु युग के ज्यादातर साहित्यकार एक साथ साहित्यकार, सम्पादक, विचारक, संगठनकर्ता, नेता और समाज सुधारक आदि की भूमिका निभा रहे थे। भारतेन्दु काल को 'नवजागरण काल' भी कहा जाता है क्योंकि यह सोई हुई जनता को जगाने का समय था। तत्कालीन परिस्थितियों के कारण वैचारिक क्रांति का प्रसार हो रहा था, उसका प्रभाव साहित्य पर भी पड़ने लगा था। परिणाम स्वरूप भारतेन्दु युगीन साहित्य में राष्ट्रीय चेतना और जन भावना दिखने लगती है क्योंकि उनका ध्यान सामाजिक समस्याओं और समाधान की ओर गया इसलिए भारतेन्दु अंग्रेजों की लूट-खसोट की नीति देखकर लिखते हैं-

“अंगरेज राज सुख साज सजै सब भारी

पै धन बिदेश चलि जात इहै अति ख्वारी।”²

भारत-दुर्दशा नाटक में भारत की दुर्दशा के बारे में लिखते हैं-

¹ आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.सं.- 228

² सं. हेमन्त शर्मा, भारतेन्दु समग्र(भारतेन्दु ग्रंथावली), पृ.सं.- 461

“रोअहू सब मिलिकै आवहु भारत भाई

हा हा! भारतदुर्दशा न देखी जाई।”¹

दूसरी ओर साहित्यकारों ने सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों में गतिशील नवजागरण की मशाल को जलाए रखा। भारतेन्दु युग के साहित्यकारों का सबसे क्रान्तिकारी कार्य यह है कि उन्होंने साहित्य की धारा को रीतिकालीन परिवेश से मुक्त करा के समकालीन जीवन, मुद्दे, प्रश्नों से जोड़ दिया। कुछ ऐसा ही आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भारतेन्दु के संदर्भ में लिखा है, “भारतेन्दु का पूर्ववर्ती काव्य साहित्य संतों की कुटिया से निकल कर राजाओं और रईसों के दरबार में पहुँच गया था। उन्होंने एक तरफ तो काव्य को फिर से भक्ति की पवित्र मंदाकिनी में स्नान कराया और दूसरी तरफ उसे दरबारीपन से निकाल कर लोक-जीवन के आमने-सामने खड़ा कर दिया।”² इन्होंने अपनी खुली आँखों से जनजीवन की समस्याओं को देखकर साहित्य का विषय बनाया। इससे पूर्व के साहित्य में रीतिकाल की श्रृंगारिकता, अलंकार मोह, रीति निरूपण, चमत्कार-प्रियता और दरबारीपन आदि प्रवृत्तियों के कारण साहित्य जनजीवन से कट गया था शायद इसलिए ही त्रिलोचन शास्त्री लिखते हैं, “रीतियुग उसी मध्ययुग का उत्तरार्ध है जिसका पूर्वार्ध सामाजिक चेतना से सम्पन्न और कर्तव्य की उदात्तीकृत भक्ति रचनाओं वाला युग था और उसके बाद वह भारतेन्दु युग आता है जो नए जागरण का पहला प्रभात था। इस प्रकार काव्य की दृष्टि से रीतिकाल दो उजालों के बीच एक अँधेरे का युग था।”³ भक्तिकाल के बाद भारतेन्दु काल में एक बार फिर कविता जन जीवन से जुड़ती है। भारतेन्दु युग की जनवादिता के संदर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं, “भारतेन्दु-युग का साहित्य जनवादी इस अर्थ में है कि वह भारतीय समाज के पुराने ढाँचे से संतुष्ट न रहकर उसमें सुधार भी चाहता है। वह केवल राजनीतिक स्वाधीनता का साहित्य न होकर मनुष्य की एकता, समानता और भाईचारे का भी साहित्य है। भारतेन्दु स्वदेशी आंदोलन के ही अग्रदूत न थे, वे समाज सुधारकों में भी प्रमुख थे। स्त्री-शिक्षा, विधवा-विवाह, विदेशी-यात्रा आदि के वे समर्थक थे।”⁴

जहाँ भारतेन्दु युग को ‘नवजागरण काल’ कहा गया वहीं द्विवेदी युग को ‘जागरण सुधारकाल’ कहा गया है। द्विवेदी युग के कवियों ने भारतेन्दु युग की परम्परा को उसी रूप में आगे जारी रखा शायद इसलिए

¹ सं. हेमन्त शर्मा, भारतेन्दु समग्र(भारतेन्दु ग्रंथावली), पृ.सं.- 460

² विश्वनाथ त्रिपाठी, हिंदी साहित्य का सरल इतिहास, पृ.सं.- 82

³ डॉ. वशिष्ठ अनूप, हिन्दी की जनवादी कविता, पृ.सं.- 51

⁴ विश्वनाथ त्रिपाठी, हिंदी साहित्य का सरल इतिहास, पृ.सं.- 82-83

विश्वनाथ त्रिपाठी ने 'द्विवेदी युग को भारतेन्दुयुगीन चेतना का विकास कहा है'¹ भारतेन्दु युग के ज्यादातर कवियों का उत्तरार्ध द्विवेदी युग रहा है जिसके विषय में रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं, “भारतेन्दु-युग के कई लेखकों का उत्तर काल द्विवेदी-युग में समा जाता है। इन दोनों युगों की भाव-भूमि में कुछ ऐसी समता है कि कहीं कोई संधि-काल नहीं मिलता।”²

बीसवीं शताब्दी के पहले दो दशकों का नाम आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर 'द्विवेदी युग' पड़ा। द्विवेदी युग में द्विवेदी के सम्पादन में निकलने वाली 'सरस्वती' पत्रिका का महत्वपूर्ण योगदान है। इस युग के कवियों ने कविता के विषय भारत के स्वर्णकालीन अतीत, देश-प्रेम, देश-दुर्दशा, अत्याचार-शोषण और नारी उद्धार आदि को बनाया। दूसरी ओर इस समय ब्रिटिश हुकूमत का सामाजिक और अर्थिक शोषण बहुत बढ़ गया था। जिसके कारण जनता में हुकूमत के खिलाफ असंतोष और क्षोभ बढ़ता जा रहा था। यहाँ यह बताना भी आवश्यक है कि देश की आमजनता, किसान, मजदूर वर्ग आदि ब्रिटिश हुकूमत के साथ-साथ देश के जमींदारों और साहूकारों के शोषण से भी पीड़ित थे। ऐसे समय में कवियों ने न सिर्फ देश की दुर्दशा को, बल्कि देश की आज़ादी और तत्कालीन समस्याओं को भी कविता का विषय बनाया। राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त 'भारत-भारती' में भारत के गौरवशाली अतीत और वर्तमान भारत दुर्दशा तथा भविष्य आदि समस्याओं का चित्रण एक साथ करते हुए कहते हैं कि यह हमारे सोचने विचारने और जागने का समय है-

“हम क्या थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी

आओ, विचारें आज मिल कर ये समस्याएँ सभी”³

गुप्त जी द्विवेदी युग के प्रतिनिधि रचनाकार हैं क्योंकि उनके साहित्य का क्षेत्र अत्यंत, व्यापक और विस्तृत है। इनके साहित्य में सत्याग्रह, अहिंसा, मनुष्यवाद, विश्वप्रेम, नारी, किसान और श्रमिक-वर्ग आदि के प्रति प्रेम और सम्मान दिखाई देता है। गुप्त जी ने पीढ़ी दर पीढ़ी, पीड़ित नारी की आवाज को उठाया है। जहाँ इन्होंने 'साकेत' में उपेक्षित 'उर्मिला' का दुःख-दर्द, पीड़ा और दयनीय स्थिति को दिखाया है तो वहीं 'यशोधरा' में 'यशोधरा' की विरह से नम आँखों का चित्रण किया है। गुप्त जी लिखते हैं-

¹ विश्वनाथ त्रिपाठी, हिंदी साहित्य का सरल इतिहास, पृ.सं.- 91

² रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ.सं.- 91

³ रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ.सं.- 97

“अबला-जीवन, हाय! तुम्हारी यही कहानी-

आँचल में है दूध और आँखों में पानी।”¹

यह मार्मिक पंक्तियाँ नारी की दयनीय स्थिति का चित्रण करने के संदर्भ में भारतीय साहित्य में सिग्नेचर बन गई हैं।

द्विवेदी युग के बाद ‘छायावाद’ आन्दोलन की शुरुआत होती है। छायावादी कविता के प्रमुख जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मा मुख्य चार स्तम्भ हैं। छायावादी कविता की धारा दो भागों में विभाजित थी। एक प्रमुख धारा में वैयक्तिकता, जिज्ञासा, प्रकृति और नारी के देवीय रूप आदि को कल्पना के साथ प्रमुखता दी गई। दूसरी में तत्कालीन प्रश्न और मुद्दों के साथ-साथ राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत कविता लिखी गई। हमारे लिए यहाँ छायावादी कविता के जनवादी पक्ष को रेखांकित करने के लिए दूसरी धारा ही महत्वपूर्ण है। विश्वनाथ त्रिपाठी छायावाद की इस धारा के बारे में नामवर सिंह के हवाले से यही लिखते हैं कि, “डॉ. नामवर सिंह ने अपनी पुस्तक ‘छायावाद’ में विश्वसनीय तौर पर दिखाया कि छायावाद वस्तुतः कई काव्य प्रवृत्तियों का सामूहिक नाम है और वह ‘उस राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है जो एक ओर पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति पाना चाहता था तो दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से।”² इस धारा के प्रतिनिधि कवियों में माखनलाल चतुर्वेदी, रामनरेश त्रिपाठी और बालकृष्ण शर्मा ‘नवीन’ आदि प्रमुख हैं। इन कवियों ने अपने साहित्य के माध्यम से स्वाधीनता संग्राम में अपनी उपस्थिति दर्ज की। इन्होंने अपनी कविता में समसामयिकता को मुखर रूप से उठाया है। इन कवियों ने अपनी रचनाओं में देश-प्रेम को अभिव्यक्त किया है। जयशंकर प्रसाद देश की आजादी का आह्वान करते हुए लिखते हैं-

“हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती

स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती

‘अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़- प्रतिज्ञ सोच लो,

¹ मैथलीशरण गुप्त, यशोधरा, पृ.सं.- 52

² विश्वनाथ त्रिपाठी, हिंदी साहित्य का सरल इतिहास, पृ.सं.- 128

प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो, बढ़े चलो!”¹

जहाँ जयशंकर प्रसाद ब्रिटिश हुकूमत के बढ़ते शोषण और अत्याचार से मुक्ति के लिए स्वतंत्रता का आह्वान कर रहे थे वहीं निराला समाज में व्याप्त कर्मकांड और अंधविश्वास पर हमला करते हैं। वह मानते हैं कि हमारा रुढ़िवादी और परम्परावादी होना ही हमारी समस्याओं का कारण है। ‘होरी’ की तरह जनता आभावों में जीवन यापन करने के लिए मजबूर थी। निराला ने ‘भिक्षुक’ शीर्षक कविता में दाने-दाने को मोहताज एक भिखारी और उसके दो बच्चों की दयनीय स्थिति का चित्रण किया है। भिखारी का पेट और पीठ भूख के कारण एक हो गए हैं। वे सड़क किनारे पड़े हुए झूठे पत्तलों को चाटने के लिए विवश हैं। निराला लिखते हैं-

“वह आता.../दो टूक कलेजे को करता,
पछताता/ पथ पर आता।/ पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,/ मुट्ठी भर दाने को- भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली का फैलाता-
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता”²

दूसरी ‘दान’ शीर्षक कविता में निराला कर्मकांडी मनुष्य पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं-

“झोली से पुए निकाल लिये,/ बढ़ते कपियों के हाथ दिये;
देखा भी नहीं उधर फिर कर/ जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर;
चिल्लाया किया दूर दानव,/ बोला मैं.. ‘धन्य श्रेष्ठ मानव!’”³

छायावाद के अंतिम दौर की कविताओं पर स्पष्ट रूप से प्रगतिवाद का प्रभाव दिखता है। छायावाद के प्रमुख कवि ‘निराला’ और ‘पंत’ की कविताएँ इसका प्रमाण हैं। प्रगतिवादी साहित्य सा माजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक आदि तत्कालीन परिस्थितियों की देन है। सन् 1936 में डॉ. मुल्कराज

¹ जयशंकर प्रसाद, चन्द्रगुप्त, पृ.सं.- 177

² सं. नन्दकिशोर नवल, निराला रचनावली- 1, पृ.सं- 64

³ सं. नन्दकिशोर नवल, निराला रचनावली- 1, पृ.सं-291

आनन्द और सज्जाद जहीर के संयुक्त प्रयासों से ‘प्रगतिशील लेखक संघ’ की स्थापना लखनऊ में होती है। यहाँ प्रेमचंद ने अपने अध्यक्षीय भाषण में साहित्य के उद्देश्य को रेखांकित करते हुए कहा था कि, “हम साहित्य को केवल मनोरंजन और विलासिता की वस्तु नहीं समझते। हमारी कसौटी पर केवल वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव, सौंदर्य का सार हो, श्री जिनकी आत्मा हो, सौंदर्य का सार हो जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो जो इसमें गति संघर्ष और बेचैनी पैदा करे सुलाए नहीं क्योंकि अब ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।”¹

‘प्रगतिशील लेखक संघ’ की स्थापना से लेकर ‘तारसप्तक’ तक लिखी गई कविता को प्रगतिवादी युग की कविता कहा जाता है। प्रगतिवादी कविता मार्क्सवादी चिंतन पर आधारित समाज उन्मुख साहित्य है, जो पूंजीवादी शोषण और अन्याय के विरुद्ध विद्रोह करके वर्गहीन समाज की स्थापना करता है। मार्क्सवाद समाज को शोषक और शोषित रूप में देखने का हिमायती है और उसकी पक्षधरता शोषितों के लिए है। प्रगतिवादी कविता आम जनता, किसान और मजदूर वर्ग आदि की अभिव्यक्ति का दस्तावेज है। और साथ ही ब्रिटिश हुकूमत, सामन्ती व्यवस्था और पूंजीवादियों के अत्याचारों के खिलाफ विद्रोहों की आवाज है। प्रगतिवादी कवि मानता है कि आमजनता पर अत्याचार किए जा रहे हैं। यह हिंदी कविता का ऐसा पहला युग है जिसमें विद्रोहों और बगावत का इतना ऊँचा स्वर देखने को मिलता है। इस धारा के प्रमुख कवियों में नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन शास्त्री, रामविलास शर्मा, शिवमंगल सिंह सुमन और शमशेर बहादुर सिंह आदि हैं। प्रगतिवादी कवि अपनी कविताओं के माध्यम से अत्याचारी और सामन्ती व्यवस्था के साथ-साथ रूढ़ियों, कुप्रथाओं और जड़ परम्पराओं आदि का भी विरोध करता है। समाज का यथार्थ रूप से चित्रण करने का पक्षपाती है। कवियों ने समाज से जुड़ी गरीबी-अमीरी, मजदूर-मालिक, शोषक-शोषित और किसान जमींदार आदि विसंगतियों को संवेदनशीलता के साथ कविता में उठाया है। प्रगतिवादी कविता के सबसे सशक्त हस्ताक्षर कवि नागार्जुन ने आजादी के बाद हिन्दुस्तान के गांवों के विद्यालयों की जर्जर और दयनीय स्थिति का यथार्थ रूप में वर्णन किया है। विद्यालय की दीवारों में दरारे पड़ गई हैं, छत से बरसातों में पानी टपकता है, और आलों में बिस्तुरिया(कीड़ा) ने घर बना लिया है। ऊपर से अध्यापक मासूम बच्चों को पीट रहा है। नागार्जुन कविता में विद्यालय की तुलना घुन खाए शहतीर के पेड़ से करते हुए कहते हैं-

¹ प्रेमचंद, साहित्य का उद्देश्य, पृ.सं.- 19

“घुन खाए शहतीरों पर की बारह खड़ी विधाता बांचे
फटी भीत है, छत है चूती, आले पर बिस्तुइया नाचे
लगा-लगा बेबस बच्चों पर मिनट-मिनट में पांच तमाचे
इसी तरह से दुखरन मास्टर गढ़ता है आदम से सांचे।”¹

‘अकाल और उसके बाद’ शीर्षक कविता में कवि अकाल के बाद की दयनीय स्थिति का चित्रण करते हुए लिखते हैं। अकाल से आमजनता परेशान नहीं है बल्कि उससे जुड़ा प्रत्येक जीव-जन्तु प्रभावित है-

“कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्ता।”²

प्रगतिवादी कवि ने पहली बार स्त्री को भोग-विलास की वस्तु न समझकर नारी समझा। उसने स्त्री के शारीरिक सौन्दर्य के स्थान पर उसके गुणों को महत्व दिया। उसने अपनी कविताओं में गाँवों में सहज और सामान्य जीवन व्यतीत करने को स्थान दिया। किसी ने ठीक ही कहा है कि ‘हमें सौन्दर्य के पैमाने बदलने होंगे। अब हमें खेत में काम करती स्त्री के पपड़ी पड़े होठों में भी सौन्दर्य ढूँढना होगा’।

प्रगतिवादी कवियों ने स्त्री के श्रमिक रूप का चित्रण खूब किया है। निराला ने ‘तोड़ती पत्थर’ कविता लिखी है। ऐसी ही एक कविता में रामविलास शर्मा ने खेत में काम करती स्त्री का यथार्थ चित्र या बिम्ब खींचा है-

“बीच-बीच में सहसा उठकर खड़ी हुई वह युवती सुंदर
लगा रही थी पानी झुककर सीधी करे कमर वह पल भर

¹ विश्वनाथ त्रिपाठी, हिंदी साहित्य का सरल इतिहास, पृ.सं.- 137

² नागार्जुन, ‘अकाल और उसके बाद’ शीर्षक कविता, कविता कोश, 08/04/2021

इधर-उधर वह पेड़ हटाती, रुकती जल की धार बहाती”¹

स्त्री की स्वतंत्रता की मांग करते हुए पन्त अपने ‘ग्राम्या’ कविता-संग्रह की ‘नारी’ शीर्षक कविता में लिखते हैं कि स्त्री केवल भोगविलास की वस्तु नहीं है, उसका जन्म भी पुरुष के समान ही पुरुष-स्त्री के प्रेम से विकसित हुआ है-

“योनि नहीं है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित,
उसे पूर्ण स्वाधीन करो, वह रहे न नर पर अवसित।
द्वन्द्व क्षुधित मानव समाज पशु जग से भी है गर्हित,
नर नारी के सहज स्नेह से सूक्ष्म वृत्ति हों विकसित।”²

आमजनता, किसान और मजदूर वर्ग आदि के श्रम पर पूरा संसार पलता है लेकिन इन तीनों की हालत ही सबसे दयनीय स्थिति में है। ये अपनी मूलभूत जरूरतों को पूरा करने में भी मजबूर और लाचार दिखते हैं। इस संदर्भ में केदारनाथ अग्रवाल की ‘मैंने उसको...’ शीर्षक कविता को देखा जा सकता है-

“मैंने उसको/ जब-जब देखा,/ लोहा देखा,
लोहा जैसा../ तपते देखा,/ गलते देखा,/ ढलते देखा,
मैंने उसको/ गोली जैसा/ चलते देखा!”³

प्रगतिवादी युग के बाद प्रयोगवादी कविता की शुरुआत होती है। प्रयोगवाद का उदय प्रगतिवाद की प्रतिक्रिया में हुआ ऐसा ज्यादा सुनने में आता है लेकिन प्रयोगवाद के अन्तर्गत आने वाले ज्यादातर कवि प्रगतिवादी धारा के हैं। और ‘तार सप्तक में संकलित कविताओं में लगभग सैंतालीस प्रगतिवादी रंग ओढ़े हुए हैं। दूसरी तरफ कुछ अंतर भी दिखाई देते हैं क्योंकि प्रयोगवादी कवि समाज की तुलना में व्यक्ति को महत्व देता दिखाई देता है। प्रगतिवादी कविता का आधार मार्क्सवादी विचारधारा थी, प्रयोगवाद में यह स्थान कवि-अनुभव ने लिया था। इस युग की कविता में कवियों ने विषयवस्तु की अपेक्षा कलात्मकता को महत्व दिया है। अर्थात् प्रयोगवाद में कवियों ने विषय की तुलना में शिल्प-विधान पर ज्यादा ध्यान दिया है

¹ विश्वनाथ त्रिपाठी, हिंदी साहित्य का सरल इतिहास, पृ.सं.- 137

² सुमित्रानन्दन पन्त, ग्राम्या, पृ.सं.- 85

³ विश्वनाथ त्रिपाठी, हिंदी साहित्य का सरल इतिहास, पृ.सं.- 137

लेकिन प्रगतिवाद की तरह प्रयोगवाद में भी एक धारा आमजनता, किसान और मजदूर वर्ग आदि की आवाज को बुलंद करती हुई बह रही थी क्योंकि देश की परिस्थितियों में कोई परिवर्तन नहीं आया था। देश आज भी उन्हीं प्रश्नों, मुद्दों और सवालों से खड़ा जूझ रहा था। ऐसा लगता है जैसे प्रयोगवाद के कवियों ने प्रगतिवाद की परम्परा को आगे बढ़ाने का काम किया। बस प्रयोगवाद में कहने का तरीका बदला हुआ नजर आता है। दूसरी बात प्रयोगवाद के ज्यादातर कवि प्रगतिवाद से ही आते हैं। प्रयोगवाद के कवियों ने आमजनता, किसान और मजदूर वर्ग आदि की पक्षधरता के साथ लिखा। अज्ञेय अपने ‘इन्द्रधनुष रौंदे हुए थे’ कविता-संग्रह की ‘मैं वहाँ हूँ’ शीर्षक कविता में अपने आप को ‘मजदूर’ कहकर संबोधित किया है। साथ ही मजदूर की दयनीय और पीड़ादायक अवस्था के बारे में लिखते हैं-

“रुई धुनता है, गारा सानता है, खटिया बुनता है

मशक से सड़क सींचता है/ रिक्शा में अपना प्रतिरूप लादे खींचता है

जो भी जहाँ भी पिसता है, पर हारता नहीं,

न मरता है - पीड़ित श्रमरत मानव/ अविजित, दुर्जेय मानव

कमकर, श्रमकर, शिल्पी, सृष्टा/ उसकी मैं कथा हूँ”¹

अज्ञेय की तरह ही मुक्तिबोध भी अपनी ‘मुझे याद आते हैं’ शीर्षक कविता में मजदूरों की वेदना और आत्माओं पर चिंता की पड़ी अनगिनत लकीरों के बारे में लिखते हैं-

“विशाल श्रमलता की जीवंत/ मूर्तियों के चेहरों पर

झुलसी हुई आत्मा की अनगिनत लकीरें

मुझे जकड़ लेती हैं अपने में, अपना-सा जानकर

बहुत पुरानी किसी निजी पहचान से”²

¹ अज्ञेय, ‘मैं वहाँ हूँ’ शीर्षक कविता(‘इन्द्रधनुष रौंदे हुए थे’ कविता संग्रह), कविता कोश, 10/04/2021

² मुक्तिबोध, चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ.सं.- 70

रामविलास शर्मा किसान-मजदूरों की दयनीय स्थिति के बारे में लिखते हैं कि किस प्रकार जमींदार द्वारा किसान मजदूरों को उनके परिश्रम के बदले में खेत में बिखरा हुआ अनाज दिया जाता है। जिसके बारे में शर्मा ने ‘रूपतरंग’ कविता-संग्रह की ‘सिलहार’ शीर्षक कविता में लिखा है-

“अभी दोपहरी में सूर्य जब आकाश को/ चाँदी सा पात किए तप रहा है...

फटे अंगोछों, बच्चे भी साथ ले/ ध्यान लगा सीला चमार है बीनते

खेत कटाई की मजदूरी इन्होंने/ जोता-बोया-सींचा भी था खेत को”¹

इस प्रकार प्रगतिशील कविताओं के साथ विकसित होती हुई प्रयोगवादी कविता नई कविता में समाहित हो जाती है।

4.4. जनवादी कविता और दुष्यंत कुमार का काव्य

उपरोक्त विवेचन विश्लेषण के बाद हम अब ‘जनवादी कविता’ का दुष्यंत कुमार से जोड़कर अध्ययन किया जायेगा। जो हमारे शोध का मुख्य विषय है। इसके लिए हमने कुछ बिन्दुओं का सहारा लिया है जिनके आधार पर ‘जनवादी कविता और दुष्यंत कुमार’ पर चर्चा की जा सकती है-

4.4.1 आम आदमी का चित्रण- जनवादी कविता के केन्द्र में आम आदमी, किसान और मजदूर वर्ग आदि तथा उनकी समस्या ही रही हैं। या यूँ कहें कि उसकी पीड़ा, दुःख-दर्द, घुटन, निराशा और संत्रास आदि मानवीय संवेदनाएँ जनवादी कविता को जन्म देती हैं। जनवादी कवि की पक्षधरता हमेशा सर्वहारा वर्ग के प्रति रहती है। शोषण की चक्की में पिसता आम आदमी हमेशा से अपनी मूलभूत आवश्यकताओं के लिए भी संघर्ष करता रहा है। दूसरी ओर इनके श्रम पर सामन्ती और पूँजीवादी वर्ग ‘दिन-दूनी, रात-चौगनी’ तरक्की करता जा रहा है। जो इनके खून का प्यासा हो रहा है। किसान भारत का अन्नदाता कहा जाता है लेकिन अन्नदाता खुद दाने-दाने के लिए तरसता रहा है। वह पूरे देश का पेट भरता है। किसान अपने परिवार की मूलभूत जरूरतों को पूरा करता ही मर जाता है लेकिन उसकी जरूरत पूरी नहीं हो पाती है। उसके नाम पर अनेकों योजनाएँ आती रहती हैं लेकिन ये सब उसके पास आने से पहले ही दम तोड़ती नजर आती हैं। उसे ऊँचे दामों पर खाद्य-बीज दिया जाता है लेकिन जब वह अपनी फसल मंडी में बेचने जाता है तो उसे औने-पौने दाम दिए जाते हैं, वो भी उधारा किसानों से भी दयनीय अवस्था में मजदूर अपना जीवन-यापन

¹ रामविलास शर्मा, ‘सिलहार’ शीर्षक कविता(‘रूपतरंग’ कविता संग्रह), कविता कोश, 10/04/2021

करने के लिए मजदूर हैं। मजदूरों को सबसे पहले नियमित काम नहीं मिल पाता है इसलिए ये विस्थापितों की तरह जीवन जीते हैं। काम मिलता है तो समय पर पैसे नहीं मिलते हैं। और इनसे तय समय सीमा से ज्यादा काम लिया जाता है ठीक कोल्हू के बैल की तरह, अनेक बार तो बेगार भी करनी पड़ती है। मजदूर रोटी, कपड़ा, मकान और स्वास्थ्य जैसी मूलभूत आवश्यकताओं के अभाव में जीता है और मर जाता है। उसके बाद यही स्थिति उसके परिवार की होती है क्योंकि उसके बच्चों को शिक्षा नहीं मिल पाती है। जनवादी कविता में इसी आम आदमी का चित्रण किया गया है। जो भूख-प्यास में अपना जीवन जीता है और मर जाता है। उसके जीवन-संघर्ष को जनवादी कविता आवाज देती है। जनवादी कवि आम आदमी के जीवन में परिवर्तन लाने के लिए लगातार प्रयासरत है। दुष्यंत कुमार एक जनवादी कवि है जो आम आदमी की पीड़ा, दुःख-दर्द को देखकर कहते हैं कि काश मैं भगवान होता तो कोई किसी के सामने पैसे के लिए हाथ नहीं फैलाता और न कोई पैसे के नशे में मस्ती करता। ना भाई-भाई पर खंजर उठाता और न किसान पर कोई अत्याचार करता। उसे तपती धूप में बैलों के साथ खेत में जुतने की आवश्यकता होती और न ही पैसे-पैसे के लिए मजदूर मजदूर नजर आता। न ही कोई पीड़ित-शोषित आदमी पिटता किसी जमींदार या पूँजीपति से। इस संघर्षपूर्ण जीवन के कारण आदमी यह सोचने पर मजबूर हो गया है कि मैं कौन हूँ। जिसे अपना अस्तित्व ही खतरे में नजर आता है। बेरोजगारी से हताश निराश आदमी के हवाले से दुष्यंत कुमार अपनी वेदना 'मैं कौन हूँ' शीर्षक कविता में व्यक्त करते हैं-

“चप्पलों-सी जिन्दगी को/ सड़क पर घिसता हुआ
किसी छत-सा गोंव की/ चूता हुआ, रिसता हुआ,
ऊंगलियों में पिस रहे/ रुमाल-सा मैं कौन हूँ”¹

आम आदमी की आर्थिक हालत इतनी दयनीय है कि वह होली का त्यौहार मनाने में भी असमर्थ है। वह सोचता है कि जीवन में विषमताओं से भरे बीहड़ रास्तों पर अब चला नहीं जा सकता है इसलिए अब पहले पेट की समस्या हल करनी है। लेकिन यह समस्या आज तक हल नहीं हुई है। इसी समस्या को में दुष्यंत कुमार अपनी 'हे होली के त्यौहार हमें तुम माफ़ करो' शीर्षक कविता में बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करते हैं-

“अब हमसे चला नहीं जाता भूखे पेटों

¹ संपादक विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली भाग- 1, पृ.सं.- 423

हमको पहिले खाली पेटों को भरना है
पहिले ये रोटी का मसला हल करना है
हम गा न सकेंगे गीत तुम्हारे स्वागत के
है तुम्हारी क्योंकि पावक से/ अपनी जठराग्नि कहीं प्यारी...
हे होली के त्यौहार हमें तुम माफ़ करो।”¹

एक अन्य ‘दश-क्षेत्र’ शीर्षक कविता में दुष्यंत कुमार उस आम आदमी या मजदूर की मनःस्थिति का चित्रण करते हैं जो काम की तलाश में शहर गया है उसे अचानक अपने परिवार और बच्चों की याद आती है लेकिन पैसों के अभाव के कारण घर नहीं जा सकता है। ऐसे बेरोजगार आम आदमी या मजदूर की मनःस्थिति का अंदाजा नहीं लगाया जा सकता है। दुष्यंत कुमार की कविता की निम्नलिखित पंक्तियों इसका प्रमाण हैं-

“एक बच्चा मुझे याद आ रहा है/ और वह बच्चा मेरा है
आज कई बार मैंने अपनी जेबें टटोलीं
कई बार स्टेशन की तरफ जाने की हिम्मत की
कई बार अपने घर का किराया पूछा
लेकिन बार-बार एक बड़ा भददा भारी हाथ
मेरे दिल की धड़कनों को/ बेकाबू होने से रोकता रहा।”²

कुछ ऐसा ही भाव लिए दुष्यंत कुमार की एक और अन्य ‘बेरोजगारी: एक अनुभूति’ शीर्षक कविता है।

दुष्यंत कुमार ने अपनी ‘सत्य के लिए’ शीर्षक कविता में लिखा है कि किस प्रकार जनता दाने-दाने के लिए मोहताज़ है और ऐसा लगता है कि पूरा देश मृत्यु की चौखट पर बैठा हुआ है। वहीं दूसरी ‘कुछ’

¹ संपादक विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली भाग- 1, पृ.सं.- 203

² संपादक विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली भाग- 1, पृ.सं.- 317

शीर्षक कविता में आम जनता और सामन्तों तथा पूंजीपतियों के बीच बढ़ती अमीरी-गरीबी की खाई पर प्रकाश डालते हुए दुष्यंत कुमार लिखते हैं-

“कुछ लोग इस जमीन में/ जहाँ खोदते हैं
चार हाथ पर पानी निकल आता है
अंगूठे से कुरेदते हैं रेत/ तो रेत पानी से भीग जाता है
लेकिन कुछ हाथ इसी जमीन में/ जिन्दगी भर खुदाई करते रहे
और कुछ सूखी पपड़ियों वाले होंठ
पानी-पानी चिल्लाते हुए/ खामोश हो गए?”¹

4.4.2 संघर्षशीलता और क्रान्तिकारी चेतना- जनवादी कविताओं में पीड़ित शोषित और उपेक्षित आदि सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति दिखती है, साथ ही उनकी मुक्ति का स्वर सुनाई देता है। जनवादी कवि शोषणकारी ताकतों का विरोध करते हुए अपनी पक्षधरता के साथ शोषितों के पक्ष में आकर खड़ा हो जाता है। यह प्रतिरोध का स्वर प्रगतिवाद के बाद जनवादी कविता में स्पष्ट सुनाई देता है। जनवादी कवि सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक आदि सभी क्षेत्रों में हो रहे शोषण का विरोध करता है और समाज में फैली विषमता को दूर करने के लिए आवाज बुलंद करता है। शोषणकारी शक्तियों ने सर्वहारा की जिन्दगी को नरक बना दिया है। उनकी जिन्दगी कब्रों या दरगाहों में या मंदिरों या श्मशानों में मिट्टी के नीचे दबी हुई दिखती है। पूजा के बोलों पर कांपती हुई और घुटनों के बल बैठी हुई नजर आती है। जो जिन्दगी में लगातार संघर्ष कर रहा है। इस संघर्ष को दुष्यंत कुमार अपनी आवाज़ देते हुए ‘अभिव्यक्ति का प्रश्न’ शीर्षक कविता में कहते हैं-

“यह जो नीला/ जहरीला धूँआ भीतर से उठ रहा है
यह जो जैसे मेरी आत्मा का गला घुट रहा है,
यह जो सद्य-जात शिशु-सा/ कुछ छटपटा रहा है,

¹ संपादक विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली भाग- 2, पृ.सं.- 228

यह क्या है?/ क्या है मित्र?.../ मुझे ढँके बैठी जो,
मुझे मुस्कारने नहीं देती, दुनिया में आने नहीं देती है।
मैं जो समुद्र-सा/ सैकड़ों सीपियों-को छुपाए बैठा हूँ,
सैकड़ों लाल मोती खपाए बैठा हूँ/ कितना विवश हूँ!”¹

वहीं ‘अनुभव-दान’ शीर्षक कविता में दुष्यंत कुमार को जिन्दगी ऐसी लगती है जैसे किसी बीमार बच्चे के सपने टूट गये हों और जिन्दगी आँगन की दीवार से पीठ लगाए खड़ी है। और शोषित और उपेक्षित अपने आपको ऐसा महसूस कर रहे हैं जैसे डोर से कटी हुई पतंग छत की मुँडेर पर पड़ी रहती है। ऐसी स्थिति में भी दुष्यंत कुमार उनसे क्रांति का संचार लाने के लिए कहते हैं, ‘उबाल’ शीर्षक कविता की पंक्तियाँ हैं-

“गाओं...!/ कोई कि नारे से लग जाए
अपने अस्तित्व की चेतना जग जाए
जल में/ ऐसा उबाल लाओ...!”²

जनवादी कविता में कवियों ने उपेक्षित और शोषितों की आवाज को उठाया है क्योंकि शोषणकारी शक्तियों ने हमेशा इनकी आवाज को दबाने का काम किया है। इनको मारते भी थे और रोने भी नहीं दिया जाता था। जनवादी कवि कहता है कि आवाज़ को बुलंद करो जिससे कोई तुम्हारी आवाज़ को दबा ना सके इसलिए दुष्यंत कुमार अपनी ‘आवाज़’ शीर्षक कविता में लिखते हैं-

“और सुनो/ ये मेरी ही आवाज़ है जिसे घोंटा जा रहा है
जिसे दबाया और कुचला जा रहा है
जिस पर प्रतिबंध लगाया जा रहा है
और कल अगर ये दब गई/ तो फिर क्या सुनोगे?
खामोशी? सहोगे?

¹ संपादक विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली भाग- 1, पृ.सं.- 356

² संपादक विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली भाग- 1, पृ.सं.- 374

आज भी ये घुटे-घुटे स्वर तुम कुछ लोगों तक आते हैं।

क्या तुम ये नहीं चाहते कि सब पंछी आज़ाद हों

कि ये स्वर दूर तक फैलें, नभ चूमें/ सब इन्हें सुने”¹

दुष्यंत कुमार कहते हैं कि शोषण और अत्याचारों के खिलाफ ये जो आवाज़ उठाई जा रही हैं उनका स्वर मध्यम नहीं होना चाहिए बल्कि देश के कोने-कोने में क्रांति की यह आवाज़ सुनाई देनी चाहिए। ‘आवाज़ों के घेरे’ शीर्षक कविता में जनता से कहते हैं-

“मित्रो!/ मुझसे हमदर्दी है तो

मेरी बैचेनी का कारण समझो-बूझो/ आओ

मेरे संग-संग इन आवाज़ों से जूझो/ इनकी ध्वनियों को बदल दो

इनके अर्थों को बदलो/ इनको बदलो”²

बढ़ते हुए शोषण और अत्याचारों से परेशान होकर दुष्यंत कुमार जनता से आह्वाहन करते हुए ‘बंदूक चलाएंगे’ शीर्षक कविता में कहते हैं कि कलम नहीं अब बंदूक चलाएंगे। दावत को उठाकर कोने में रख दो क्योंकि अभी देश में हवाएँ प्रतिकूल चल रही हैं। अब आवश्यकता है कि प्रत्येक व्यक्ति को सवाल करने चाहिए व्यवस्था से कि हमारा भविष्य ऐसा ही रहेगा क्या? दुष्यंत कुमार अपनी ‘चेहरे पे प्रश्न’ शीर्षक कविता में लिखते हैं –

“मैंने हर चेहरे पर एक प्रश्न/ उगाने की कोशिश की?

आखिर वह कौन-सा सुख है/ जो आशाओं को लोरियाँ सुना रहा है?

पालने में पड़े हुए मांस के पिंड पर, जश्न मना रहा है

कौन-सा भविष्य है/ जो बाँहें पसारे खड़ा है?”³

¹ संपादक विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली भाग- 1, पृ.सं.- 400

² संपादक विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली भाग- 1, पृ.सं.- 444

³ संपादक विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली भाग- 2, पृ.सं.- 158

यह समझ नहीं आता है कि हमारा कसूर इतना है कि हमने तुम्हारे द्वारा दिखाए गए स्वप्नों को सच मान लिया। क्या हम केवल सभाओं में तालियाँ ही पीटते रहेंगे? हमारी भूख का क्या होगा? हमारा दिमाग अखबारों में आश्वासनों को पा-पाकर भन्ना गया है। अब सवाल करने का समय आ गया है। इस समय को दुष्यंत कुमार अपनी 'सवाल ये है' शीर्षक कविता में इस प्रकार से व्यक्त करते हैं-

“कि एक सवाल आने वाला है/ आंधी की तरह नहीं

चुने हुए प्रतिनिधियों की तरह

वह अगले वर्ष संसद भवन में घुसेगा/ और गूँज उठेगा

तुम तैयार रहो/ कुछ न हो तो हाथों में/ ढेले ही उठा लो।”¹

यह जो बदलाव का तूफान खड़ा हुआ है अब यह शांत नहीं होने वाला है। तुम्हारे झूठे वादों और आदर्शों से हम अब बंधने वाले नहीं हैं। हम अब अपने जीवन में समानता का नक्शा लिए बैठे हैं। अब तुम्हारा अत्याचार हम नहीं सहेंगे।

4.4.3 जनशक्ति में विश्वास- जनवादी कवि अपनी कविताओं के माध्यम से जनता में विश्वास जगाने का काम करता है। वह जनता को विश्वास दिलाता है कि दैनिक जीवन की समस्याओं से घबराने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि बदलाव के समय जीवन में कुछ कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। जनवादी कवि जानता है कि जनशक्ति बड़े से बड़ी समस्याओं के पहाड़ों को उखाड़ फेंक सकती है। जनवादी कविता जनता में विश्वास जगाने का साहसीपूर्ण कार्य करती है। और साथ ही जनता को आशावादी बनाए रखती है। और कवि को यह उम्मीद है कि जिस दिन सर्वहारा या बहुजन वर्ग एकबद्ध होकर शोषणकारी और अत्याचारी ताकतों का सामना करेगा उस दिन ये ताकतें धूल में मिल जाएँगी। और अपने अधिकारों से वंचित नहीं रहेंगी इसलिए इस क्षणिक अंधकार से घबराने की आवश्यकता नहीं है। दुष्यंत कुमार अपनी 'दिन निकलने से पहले' शीर्षक कविता में जनता में विश्वास जगाते हुए कहते हैं-

“मनुष्य जैसी/ पक्षियों की चीखें और कराहें गूँज रही हैं,

टीन के कनस्तरों की बस्ती में/ हृदय की शक्ल जैसी अंगीठियों से

¹ संपादक विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली भाग- 2, पृ.सं.- 210

धूँआ निकलने लगा है,/ आटा पीसने की चक्कियाँ
जनता के सम्मिलित नारों की-सी आवाज़ में/ गड़गाड़ाने लगी है
सुनो प्यारे! मेरा मन बैठ रहा है”/ “अपने को सँभालों मित्र!
अभी ये कराहें और तीखी;/ ये धुआं और कड़ुआ,
ये गडगडाहट और तेज़ होगी,/ मगर इनसे भयभीत होने की ज़रूरत नहीं,
दिन निकलने से पहले ऐसा ही हुआ करता है।”¹

अगर हम एक साथ रहेंगे तो गुलामी और शोषण की सारी जंजीरों को तोड़ देंगे। इसमें दुखी होने की आवश्यकता नहीं है बस सब को एक साथ होकर चुनौतियों से सामना करना है। इस संदर्भ में दुष्यंत कुमार अपनी ‘दोस्त मेरे!’ शीर्षक कविता में लिखते हैं-

“दोस्त मेरे/ आज तू ही नहीं/ हम भी
इसी सत्ता की चुनौती के तले हैं/ हमारे सपने निपट
बंधन नियत होने चले हैं/ पर नहीं/ तूने कि जैसे सिर उठाया
और सहसा चुनौती के सामने आया/ लेखनी अपनी पराई तो नहीं
हम चुनौती की दिशा में मोड़ देंगे/ उस तरह हम भी
खनकती हुई जंजीरों/ दमन की तोड़ देंगे”²

दुष्यंत कुमार अपनी ‘अपराध’ शीर्षक कविता में लिखते हैं कि जब तक हम एकता के सूत्र में नहीं रहेंगे तब तक हम पर सत्ता जुल्म करती रहेगी। सत्ता हमेशा हमारे अकेलेपन का फायदा उठाती है इसलिए हम सबको एक साथ सत्ता से लड़ाई लड़नी है। जिसके विषय में कवि लिखता है-

“अब शाम किसी खतरे की तरह नाज़िल नहीं होती

¹ संपादक विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली भाग- 1, पृ.सं.- 347-348

² संपादक विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली भाग- 1, पृ.सं.- 406-407

लोगों ने अँधेरे से लड़ने की सूरत समझ ली
 चाहे कितना भी भारी हो बोझ/ हाथों पर थामा जा सकता है
 जुल्म चाहे कितना हो/ आवाज़ मरती नहीं है
 उसने सिर्फ़ इतना कहा था कि आवाज़ देते रहो
 कोई पूरब से दो/ कोई उत्तर-दक्खिन और पश्चिम से
 सिर्फ़ जुड़े रहो बोलते हुए/ यानी खामोशी तोड़ते हुए
 जैसे सड़कों पर पत्थर/ या शोषण की ज़ंजीर तोड़ी जाती हैं।”¹

4.4.4 सामाजिक विद्रूपताओं, विकृतियों, विडम्बनाओं और विसंगतियों का वर्णन-

जनवादी कवि अपनी कविताओं के माध्यम से समाज में फैली सामाजिक विद्रूपताओं, विकृतियों, विडम्बनाओं और विसंगतियों आदि का चित्रण करता है और समाज को जागरूक करके उन्हें दूर करने का प्रयास करता है। स्वतंत्रता के बाद सामाजिक सम्बन्धों में तेजी से गिरावट आई है। व्यक्ति भीड़ से घिरा होने के बावजूद अपने आप को अकेला महसूस करता है। कोई किसी का दुःख-दर्द सुनने वाला नहीं है। ज्यादातर व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के पास अपने मतलब की सिद्धि के लिए बैठता है। समाज की क्या बात करें परिवार जैसे आत्मियपूर्ण सम्बन्धों में गिरावट आई है। मनुष्य अपनी नैतिकता को भूलकर अनैतिक होता जा रहा है। यह मनुष्य का अपना ही बोया हुआ बीज है जो पूरी फसल बनकर तैयार खड़ी है। जो काटनी आम जनता को है। आम जनता को अनेकों प्रकार की समस्याओं ने घेरे लिया है। समाज में चोरी-चकारी, मार-काट, दुर्घटना और बलात्कार आदि घटनाएँ आम हो गई हैं। आम जनता के ऐसे त्रासदीपूर्ण जीवन का चित्रण जनवादी कविता करती है। ऐसे ही आम जनता का चित्रण दुष्यंत कुमार ने अपनी ‘तोड़ों मत’ शीर्षक कविता में किया है। मनुष्य के लिए अपना अस्तित्व ही सर्वोपरि है लेकिन अब उसका अस्तित्व ही खतरे में है। वह सामाजिक और व्यवस्था के ठेकेदारों से कह रहा है कि मेरे इस अस्तित्वबोध को तोड़ो मत मैं इस झूठे अस्तित्व के साथ ही जी लूँगा। कविता में कवि कहता है-

“मेरा अस्तित्व-बोध छेड़ों मत/ रहने दो/ भ्रम ही

¹ संपादक विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली भाग- 2, पृ.सं.- 230

लेकिन यह तोड़ो मत/ रहने दो/ थोड़ी-सी पीड़ा ही होगी न?

कम से कम/ खुद को पैगंबर तो कह लूँगा!”¹

आज मनुष्य इतना अकेला हो गया है कि उसकी आवाज़ को कोई सुनने वाला नहीं है। जिसकी पीड़ा मनुष्य को अन्दर ही अन्दर खाए जा रही है। यह समय चुप बैठने का नहीं है बल्कि समाज में फैली सभी समस्याओं से टकराने या चुनौती देने का समय है। और इन क्षुद्र रूढ़ियों, परम्परा और कुप्रथाओं आदि का नाग-सा फन कुचलने का समय है। लेकिन विडम्बना यह है कि ऐसे विषम समय में कोई सुनने वाला ही नहीं है। जिसके विषय में दुष्यंत कुमार अपनी ‘बीता सपना’ शीर्षक कविता में लिखते हैं-

“कोई तो सुनता होगा/ मेरी आवाज़ को/ युग की समस्त मूकता को
चुनौती दे/ क्षुद्र रूढ़ियों के नाग-फन/ कुचलकर/ मरुस्थल में खेता हुआ
प्यास की नौका को/ आया उल्लाँघ कई सागर/ गिरि-ज्वाल-शिखर
फिर भी सबसे नीचा स्वर!/ मेरी विनम्रता है।/ कोई तो सुनता होगा/ यह
मन के मकड़े ने/ जो जाले फैलाए थे/ टूट गए/ पगले विश्वासों ने
हाथों में हाथ जो थमाए थे/ छूट गए/ मंजिल क्या थी पतंग
बच्चों से कुछ संभ्रम आए थे/ लूट गए/ वह सपना बीत गया”²

हमें परिवर्तन की आवश्यकता है। मर्यादा अब केवल ढोंग के सिवा कुछ नहीं है। हम सब को मिलकर ही नए रास्ते खोजने होंगे। बस इतना साहस हमें करना होगा कि किसी से डरने की आवश्यकता नहीं है। समाज का क्या है वह तो हर एक परिवर्तन को अनैतिक ही कहता है इसलिए दुष्यंत कुमार अपनी ‘मर्यादा-महल’ शीर्षक कविता में लिखते हैं-

“हर परिवर्तन को विश्व अनैतिक कहता है

आओं हम अपने संबंधों को साफ करें

¹ संपादक विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली भाग- 1, पृ.सं.- 305

² संपादक विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली भाग- 1, पृ.सं.- 315

सँकरी सामाजिक गलियों में

ओढ़कर लबादा चलने से डर लगता है।”¹

यह कैसी विडम्बना है कि व्यक्ति अपनी अभिव्यक्ति के लिए सारी सृष्टि निर्जीव पाता है। कोई जगह ऐसी नहीं है जहाँ वह अपने सपनों को पूरा कर सके। जहाँ तक वह देखता है अँधेरा ही अँधेरा नजर आता है। उसकी समझ में नहीं आ रहा है कि इस कुलबुलाती चेतना से ग्रसित हृदय में जो छटपटाहट है उसे कहाँ फेंक दे? अर्थात् कवि के मन में जनता या समाज के लिए कुछ कर गुजरने की चाह है लेकिन उसे यह समाज निर्जीव नजर आता है। जनता में अपने अधिकारों को लेकर उत्साह नहीं है। इस स्थिति को दुष्यंत कुमार अपनी ‘निर्जन सृष्टि’ शीर्षक कविता में लिखते हैं-

“कुलबुलाती चेतना के लिए/ सारी सृष्टि निर्जन/ और

कोई जगह ऐसी नहीं/ सपने जहाँ रख दूँ

दृष्टि के पथ में तिमिर है/ औ’ हृदय में छटपटाहट

जिंदगी आखिर कहाँ पर फेंक दूँ मैं/ कहाँ रख दूँ?”²

हमें आजादी से पहले रंग-बिरंगे सपने दिखाए गए लेकिन वे सपने अब कहाँ गए? व्यवस्था हमें बताती क्यों नहीं है कि उसने जो वादे किए थे वो कहाँ हैं? हमें सत्ता द्वारा ठगा गया है। हमें अपने ही घरों में कैद किया गया है। आजादी के इस वातावरण में घुटन फैल गई है लेकिन ऐसे विषम समय में भी जन कवि राह खोजने की बात करता है। जिसके विषय में दुष्यंत कुमार अपनी ‘राह खोजेंगे’ शीर्षक कविता में लिखते हैं-

“हम पराजित हैं मगर लज्जित नहीं हैं/ हमें खुद पर नहीं

उन पर हँसी आती है/ हम निहत्थों को जिन्होंने हराया

अँधेरे व्यक्तित्व को अंधी गुफाओं में

रोशनी का आसरा देकर/ बड़ी आयोजना के साथ पहुँचाया

¹ संपादक विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली भाग- 1, पृ.सं.- 331

² संपादक विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली भाग- 1, पृ.सं.- 444

और अपने ही घरों में कैद करके कहा :

“लो तुम्हे आज़ाद करते हैं।”¹

दुष्यंत कुमार कहते हैं कि आज़ादी रूपी जो नुमाईश लगी थी उसके सारे दृश्य अब आँखों को अप्रिय लगने लगे हैं। इनमें अब वो चमक-दमक नहीं है जो आज़ादी के समय थी। अब देश में विसंगतियाँ फैल गई हैं। जिसका चित्रण दुष्यंत कुमार कुछ प्रतीकों के माध्यम से अपनी ‘शगुन-शंका’ शीर्षक कविता में करते हैं-

“पारसाल घर में/ मकड़ियाँ बहुत थीं

लेकिन जाले परेशान नहीं करते थे।

बच्चे उद्धत तो थे-/ दिन-भर हल्ला मचाते थे।

फिर भी वे कहा मान लेते थे, डरते थे...

पारसाल बारिश में/ छत बहुत रिसी थी,

लेकिन गिरने का खतरा नहीं था।

जैसे सम-सामयिक विचार/ मुझे अकसर अखरते हैं

लेकिन मैं उनसे इस तरह/ कभी चौंका या डरा नहीं था,

अब मेरे आँगन में रोज/ बिल्लियाँ लड़ती हैं।”²

4.4.5 मानवीय मूल्यों को प्राथमिकता- जनवादी कवि अपनी कविताओं के माध्यम से मानवीय मूल्यों को स्थापित करता है। आधुनिक युग में मानवीय मूल्यों का तेजी से अवमूल्यन हो रहा है। व्यक्ति आगे बढ़ने की चाह में किसी दूसरे का अहित करने से भी नहीं डरता है। वह कैसे भी करके दूसरे से आगे बढ़ना चाहता है। उसे यह भी मालूम नहीं है कि उसकी मंजिल कहाँ है? मंजिल को पाने की चाह में वह परिवार और समाज से लगातार दूरी बनाता जा रहा है। यदि उसने अपनों के बिना मंजिल को पा भी लिया तो उसका क्या लाभ होगा। जहाँ उसका अपना कोई नहीं होगा। व्यक्ति के आत्मीय संबंधों में भी मधुरता का अभाव दिखने लगा है। यदि वह किसी से मिलता है तो बेमन से मिलता है। समाज में सब एक-दूसरे की

¹ संपादक विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली भाग- 1, पृ.सं.- 454

² संपादक विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली भाग- 2, पृ.सं.- 156

गर्दन काटने में लगे हुए हैं। सब अपने दुःख से कम, दूसरों के सुख से ज्यादा दुखी हैं। समाज में पवित्र-अपवित्र, ऊँच-नीच, अमीर-गरीब और बड़ा-छोटा आदि के जाल में फंसे हुए हैं। जनवादी कवि ऐसे विषम समय में मानवीय मूल्यों को सर्वोपरि मानता है क्योंकि मानवता के धर्म से कोई बड़ा धर्म नहीं है। मनुष्य की आशा, इच्छा, आकांक्षा आदि लगातार बढ़ती जा रही हैं जिसके कारण मानवीय मूल्यों का पतन हो रहा है। जिसके विषय में दुष्यंत कुमार अपनी 'आकांक्षा' शीर्षक कविता में बच्चे के हवाले से लिखते हैं कि बच्चे ने पूछा कि आकांक्षा का अर्थ क्या होता है? मैंने सोचा उत्तर दूँ लेकिन मैं चुप रहा और सोचा बोलूँ- 'आकांक्षा' कोरिया की ज्यादातियाँ, खून-खराबा, युद्ध, हत्या, नृशंसता, गोला-बारूद, टैंक आदि लेकिन फिर चुप हो गया लेकिन बच्चे ने फिर बोला आकांक्षा का अर्थ मास्टर साहब ने मानव को ऊँचा उठाने की एक सीढ़ी बताया है क्या यह सही है? तो मैंने बस इतना कहा कि लगभग सही है। इसमें यह जोड़ लो 'आकांक्षा' मानव को ऊँचा और नीचे गिराने की एक सीढ़ी है। अपनी आकांक्षाओं के चलते एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से नफरत और भेदभाव करने लगा है। दुष्यंत कुमार अपनी 'जभी तो' शीर्षक कविता में लोगों के बीच बढ़ती नफरत और भेदभाव को इस प्रकार से रेखांकित करते हैं-

“नफ़रत औ’ भेदभाव

केवल मनुष्यों तक सीमित नहीं रह गया है अब

मैंने महसूस किया है/ मेरे ही घर में

बिजली का सुंदर औ’ भड़कदार लट्टू-

कुरसी के टूटे हुए बेंत पर,/ खस्ता तिपाई पर,

फटे हुए बिस्तर पर, छिन्न चारपाई पर,

कुम्हलाए बच्चों पर,/ अधनंगी बीवी पर-

रोज व्यंग्य करता है, जैसे वह कोई 'मिल-ओनर' हो।”¹

¹ संपादक विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली भाग- 1, पृ.सं.- 351

अब कोई किसी की सहायता करने वाला नहीं है। जिसकी समस्या है उसी को हल करनी होगी। लोग तमाशा देखने वाले ज्यादा हैं आज के समय में। इसी को दुष्यंत कुमार ने अपनी ‘भविष्य की वंदना’ शीर्षक कविता में राम-सीता और लक्ष्मण के हवाले से रेखांकित किया है-

“सुनो, आहत राम ने लक्ष्मण को पुकारा/ हरी गई सीता!

अब किसी बियाबान वन में जटायु टकराएगा

नहीं, वायुयान में बिठाकर ले जाएगा

अव्वल तो जटायु नहीं आज”¹

मनुष्य ने मानवता के स्थान पर धन को ज्यादा महत्व देना शुरू कर दिया है। और धन लिप्सा से लिप्त हुआ मनुष्य भावना शून्य हो जाता है। मनुष्य का मनुष्य के प्रति आचरण और व्यवहार बदल जाता है जिसके विषय में दुष्यंत कुमार अपने ‘एक कंठ विषपायी’ गीति-नाट्य के तीसरे दृश्य के अंतर्गत शंकर, कुबेर से कहते हैं-

“कर्तव्य तुम्हारा/ धन-संचय से इतर/ और भी है कोई

यदि है तो, हे धनपति कुबेर!/ यह है कुयोग;/ धन के दृष्टि नहीं होती

भावना-शून्य हो जाती हैं/ धनवान लोग

आत्मस्थ बना देती है सत्ता मित्रों को/ आचरण बदलते जाते हैं

उनके क्षण-क्षण,/ अपनत्व खत्म हो जाता है

बचा रहता है थोड़ा-सा शिष्टाचार और औपचारिकता,

प्रभुता का ऐसा ही होता है आकर्षण।”²

मनुष्य अपनी ईर्ष्या के कारण लगातार गिरता जा रहा है। जब कोई पत्थर ढलान से गिरता है तो बता सकते हैं कि वह कितना गिरेगा लेकिन जब मनुष्य गिरना शुरू करता है तो अंदाजा नहीं लगाया जा सकता

¹ संपादक विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली भाग- 1, पृ.सं.- 453

² संपादक विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली भाग- 2, पृ.सं.- 80

कि वह कितना गिर सकता है। पत्थर तो खुश नसीब होते हैं कि उन्हें कभी-कभी किसी पेड़ या झाड़ का सहारा मिल जाता है। जिसके विषय में दुष्यंत कुमार अपनी 'कि उसका अंत कहाँ होगा' शीर्षक कविता में लिखते हैं-

“आदमी जब गिरना शुरू करता है

तो ढाल से लुढ़कते हुए पत्थर की तरह

कोई नहीं कह सकता/ कि उसका अंत कहाँ होगा”¹

अब मानवीय मूल्यों में इतना परिवर्तन आ गया है कि यात्रियों को एक गाँव से निकलने में कठिनाई होती है। यात्रियों को देखकर घरों में बैठे हुए लोग बड़बड़ाते हैं। कोई पानी के लिए भी नहीं पूछता है। और बच्चे उनके पीछे कुत्तों को लगा देते हैं। सड़ी हुई गर्मी में तो यात्रा करना और मुश्किल हो गया है। कहीं भी ठहरने के लिए जगह या पड़ाव नहीं मिलता है। ये लेखक के तत्कालीन मानवीय मूल्यों का विघटन है आज तो मनुष्य बहुत आगे बढ़ गया है गिरते-गिरते। अब तो मानवीयता की सारी परिभाषाएँ बदल गई हैं जिनके विषय में दुष्यंत कुमार अपनी 'कहाँ से शुरू करें यात्रा' शीर्षक कविता में लिखते हैं-

आज साक्षी है युग जिसमें/ सिर्फ पांवों तले की जमीन ही नहीं

बल्कि जीवन के मूल्य, तत्व, बदल गए/ बदल गए-

महाकाल पर्वत मरुस्थलों में/ समतल मैदानों में/ कलों-कारखानों में,

तीर्थस्थल, मंदिर और मस्जिद, मैदानों में/ मूल्य भावनाओं में

मानवीय संस्कार, सामयिक विचारों में/ आस्था, प्रतीक्षा में अवसर की,

बदल गई हैं सारी परिभाषाएँ ईश्वर की!”²

4.4.6 सामंती जीवन-मूल्यों का सक्रिय विरोध- जनवादी कवि विचारधारा के स्तर पर मार्क्सवाद से प्रभावित हैं। जनवादी कवि मार्क्सवाद की तरह ईश्वरीय सत्ता को नकारते हैं। जनवादी कविता तथ्यों और वैज्ञानिक मूल्यों को मानती है। वह किसी भी तरह के धार्मिक अनुष्ठान के पक्ष में नहीं है। जनवादी

¹ संपादक विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली भाग- 2, पृ.सं.- 128

² संपादक विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली भाग- 2, पृ.सं.- 181

कवि मानता है कि धार्मिकता के नाम पर जनता का पंडा-पुरोहित और मुल्ला-मौलवी शोषण करते हैं और उन्हें असली मुद्दों और अधिकारों से वंचित रखा जाता है। वे धार्मिकता के जाल में उलझकर अपने जीवन को अंधविश्वासों से तबाह कर लेते हैं। जनवादी कवि व्यक्ति के श्रम को महत्व देता है इसलिए ईश्वरीय प्रार्थना के स्थान पर कर्म को महत्व देता है। दूसरी ओर अपने तथाकथित उच्च वर्ग के कहने वाले धर्म के ठेकेदार आम जनता के साथ कीड़ों-मकोड़ों जैसा व्यवहार करते हैं। इन्होंने निम्न समझे जाने वाली जातियों को हमेशा दोयम दर्जे का मानकर पशुतुल्य व्यवहार किया। देश-समाज के सभी सुख-सुविधाओं पर अपना एकाधिकार बनाए रखा। साथ ही दूसरे वर्ग को शिक्षा से दूर रखा। इन्हें यह डर हमेशा से रहा कि यदि शिक्षा रूपी प्रकाश इन तक पहुँचने लगा तो ये अपने अधिकारों की मांग करेंगे। वहीं दूसरी तरफ इन्होंने स्त्री को संसार का हिस्सा ही नहीं माना। हमेशा उसे घर की चार दीवारी में कैद करके रखा। उसकी आवाज़ को हमेशा दबाकर रखा गया है। स्त्री की पीड़ा को देखकर दुष्यंत कुमार अपनी 'उस समाज को' शीर्षक कविता में लिखते हैं कि उस समाज को कोई रसातल में जाने से नहीं बचा सकता है जिसमें स्त्री का सम्मान नहीं होता है। जिस समाज ने उसे अबला का नाम दिया, जी भरकर अपमान किया, उसका सीमित क्षेत्र किया, राहों से अनजान किया, विधवाओं पर अत्याचार किए, व्यंग्यों के कोड़े चला दिए, जलते अंगार दिए, मुख से कहने का अधिकार नहीं और जबान को हिलाने का अधिकार नहीं आदि को कवि आधार बनाकर लिखता है-

“जिस समाज में नारि जाति को अबला का उपनाम दिया है
जिस समाज ने नारि जाति को जी भरकर अपमान किया है
अपने घर की प्राचीरों तक उसका सीमित क्षेत्र बनाकर
जिस समाज ने उसको अपनी राहों से अनजान किया है
उस समाज को कौन अरे ठोकर खाने से रोक सकेगा”¹

4.4.7 सत्ता का दमन और तानाशाही रवैये का विरोध- जनवादी कवि के केंद्र में आम जनता और उसकी समस्याएँ रहती हैं। जब किसी देश या राष्ट्र की सत्ता तानाशाहीपूर्ण रवैया अपनाती है तो उसमें आम जनता का दमन होता है। उसे उसके मूलभूत अधिकारों से वंचित कर दिया जाता है। उसे अपनी

¹ संपादक विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली भाग- 1, पृ.सं.- 134

इच्छानुसार कार्य नहीं करने दिया जाता। वह अपने ही देश में गुलामों जैसी जिन्दगी जीने के लिए मजबूर हो जाता है। देशहित में कही गई बात यदि सत्ता के खिलाफ होती है तो सत्ता लोगों द्वारा कहने वाले को देशद्रोही की संज्ञा देकर 'पाकिस्तान जाने को' कहा जाने लगता है। इस तरह जनता को सत्ता का डर दिखाकर उसके अभिव्यक्ति के अधिकार के साथ-साथ स्वतन्त्रता को भी छीन लिया जाता है। जनता पर झूठे आरोप लगाकर जेल में डाल दिया जाता है। ऐसे विषम समय में जनवादी कवि अपनी कविता के माध्यम से सत्ता के दमन और तानाशाहीपूर्ण रवैये का विरोध करता है। साथ ही अपनी पक्षधरता सत्ता के अत्याचारों से पीड़ित जनता के पक्ष में दर्ज करता है। और सत्ता की आँख में आँख डालकर दुष्यंत कुमार कहते हैं-

“तेरा निज़ाम है सिल दे जुबान शायर की,

ये एहतियात ज़रूरी है इस बहर के लिए।”¹

यह कवि का कर्तव्य है कि वह आम जनता की आवाज़ बनकर सत्ता से सवाल करे, नकि सत्ता की चापलूसी करे। कवि को अपने ही देश तक सीमित न रहकर पूरे विश्व को अपनत्व के रूप में देखना चाहिए। उसे समाज में व्याप्त पीड़ाओं को कविता में उठाकर, उत्तरदायी ताकतों का विरोध करना है। उसकी लेखनी जनता की पीड़ा को अभिव्यक्त करने के लिए ही बनी है। उसे सत्ता के शोषणकारी रवैये से टकराकर नया इतिहास लिखना है। इसके लिए कवि को वातावरण में घुले ज़हर को सबसे पहले पीना होता है। जब सत्ता के विरोध में भीड़ के बीच से आवाज़ नहीं उठती है तो सबकी उम्मीदे कवियों से होती हैं। उस समय जनता कवि को बड़े स्नेह, दर्द, पीड़ा, आशा और आस्था के साथ देखती है। कोई है जो उसकी पीड़ा को समझ रहा है। ऐसे विषम समय को दुष्यंत कुमार अपनी 'ओ अपरिचित मित्र!' शीर्षक कविता में व्यक्त करते हैं-

“दोस्त मेरे/ नया कोई भी नहीं व्यवहार तेरे साथ

यही तो होता रहा है/ जिस किसी ने भी सच्चाई को छुआ

खोला/ कुरेदा/ सदा उसके अधर सिलने के लिए सत्ता उठी

मज़बूत लेकर हाथ/ और यों अभिव्यक्ति को कुचला गया...

तूने कि जैसे सिर उठाया/ और सहसा चुनौती के सामने आया

¹ संपादक विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली भाग- 2, पृ.सं.- 261

उस तरह हम भी खनकती हुई जंजीर/ दमन की तोड़ देंगे!

लेखनी अपनी पराई तो नहीं/ इस चुनौती की दिशा में/ मोड़ देंगे।”¹

जब कोई सहसा खड़ा होकर सत्ता को चुनौती देता है तो सत्ताधारी सत्ता के नशे में विद्रोह को कुचलने के लिए नीचता की सारी सीमाओं को पार कर जाते हैं। पुलिस और अपने चापलूसों द्वारा विद्रोह को दबाने के लिए कत्ले आम करवा देते हैं। ऐसे समय में सड़कों पर जमा हुआ खून और टूटी हुई हड्डियों के साथ क्षत-विक्षत अवस्था में लाशें पड़ी रहती हैं जिसके लिए केवल सत्ता में बैठे लोग जिम्मेदार होते हैं। फिर बाद में घड़ियाली आँसू बहाकर जनता के हितेषी होने का ढोंग करते हैं। सत्ता में बैठे अत्याचारियों के इन पापों का उत्तरदायित्व भी आम जनता को ही वहन करना पड़ता है। यह सब होता है रोटी, कपड़ा, मकान, स्वास्थ्य, शिक्षा और रोजगार जैसे असली मुद्दों को भटकाने के लिए। दुष्यन्त कुमार अपने ‘एक कंठ विषपायी’ गीति-नाट्य में ऐसी एक स्थिति का चित्रण करते हुए सर्वहत्त(आम जनता) और ब्रह्मा(सत्ता) संवाद में लिखते हैं-

“मैं इसमें आकर/ प्रयोजन ही भूल गया हूँ...

शायद मैं भूखा हूँ/ रोटी के लिए यहाँ आया हूँ...नहीं! नहीं!

मांस और मदिरा/ नहीं, यह भी नहीं/ हाँ! याद आया/ रक्त!

लाल-लाल/ ताज़ा-ताज़ा/ गरम-गरम, तुम मुझे चुल्लू-भर रक्त

पिला सकते हो। आह/ आज मैं बहुत प्यासा हूँ...

यहाँ तुम्हें रक्त नहीं मिल सकता....

एक बूंद रक्त यहाँ बहुत मूल्य रखता है...

क्या बच्चों-सी बातें करते हैं आप लोग/ आप लोग शासक हैं

और शासकों को कहीं/ रक्त की कमी हुआ करती है।

¹ संपादक विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली भाग- 1, पृ.सं.- 409

आप लोग चाहे तो मेरे लिए/ रक्त का समुंदर भर सकते हैं।”¹

ऐसे विषम समय में जनवादी कवि अपनी कविता की चिंगारी से आम जनता के अंदर आशा, उम्मीद की ज्योति जलाने का काम करता है। जनता सत्ता के जुल्म और तानाशाही रवैये से टकराने के लिए दोबारा खड़ी हो जाती है। आम जनता की इस प्रवृत्ति को देखकर किसी शायर ने लिखा है ‘हर रोज गिरकर भी मुक्कमल खड़े हैं, ऐ जिन्दगी देख मेरे हौसले तुझसे भी बड़े हैं।’ सत्ता के खिलाफ खड़ी होती आम जनता को देखकर दुष्यंत कुमार अपनी ‘तुमने देखा’ शीर्षक कविता में लिखते हैं-

“तुमने देखा-/ लोग अब आहिस्ता-आहिस्ता इस सड़क पर इकट्ठा होने
लगे हैं/ देखो, उनके खाली हाथों की मुट्ठियाँ/ किस तरह कसी हुई हैं!
उनके लहलुहान पाँवों को मत देखों,/ उनकी चाल को देखो।
जिसमें आक्रामक व्याघ्र की चुस्ती बसी हुई है,
उनके शरीर पर मत जाओ-
कि ये अस्थिपंजर कागज़ के पुलों की तरह/ खड़क रहे हैं;
उनके सीनों को देखों/ जिनमें लहू के फव्वारे
जवान चिनगारियों की तरह फड़क रहे हैं।”²

एक प्रश्न यह भी खड़ा होता है कि ये आन्दोलन या विद्रोह जनता करती क्यों है? जब सत्ता में आकर हमारे तथाकथित जननेता कहे जाने वाले अत्याचारी, भ्रष्टाचारी, पापी और बलात्कारी नेता आम जनता, किसानों तथा मजदूरों आदि से किए गए अपने वादों को भूल जाती है तब जनविरोधी निर्णयों के परिणामस्वरूप जनता में असंतोष बढ़ने लगता है और सत्ता के खिलाफ विद्रोह तथा जनविरोधी ताकतों को उखाड़कर फेंक देती है। इस प्रकार के नेताओं के विषय में दुष्यंत कुमार अपनी ‘क्यों अपने प्रण को भूल गए’ शीर्षक कविता में लिखते हैं-

“हम सोशलिस्ट है, भारत में/ मजदूर राज्य दिखला देंगे

¹ संपादक विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली भाग- 2, पृ.सं.- 104-105

² संपादक विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली भाग- 2, पृ.सं.- 215-216

पूँजीपतियों के छीन सभी/ आसन, किसान बिठला देंगे...

क्यों अपने प्रण को भूल गए/ जो किए कभी मजदूरों से”¹

4.4.8 लोकतंत्र के खोखलेपन का चित्रण- कागज़ों में भारत सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है। ऐसे देशों की शासन व्यवस्था की बाग-डोर आमजनता के हाथों में होती है क्योंकि लोकतंत्र को परिभाषित करते हुए अमेरिकी राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने कुछ ऐसा ही लिखा है। इसी उम्मीद में हमारे पूर्वजों ने देश को लोकतांत्रिक संविधान दिया था। लोकतंत्र में पूरी तरह आम जनता करता-धरता होती है इसलिए पहले-पहल जनता को भी यही लगा कि अब हमारे जीवन का अँधेरा दूर हो जाएगा लेकिन अँधेरा दूर होने के बजाए और गहरा हो गया। लोकतंत्र आम जनता की कोठरी से निकलकर अमीरों, उद्योगपतियों और पूँजीपतियों की तिजौरी में जाकर बैठ गया है। व्यंग्यकार सम्पत सरल के शब्दों में कहूँ तो ‘जनता को लगता है कि राजा का चुनाव प्रजा करती है दरअसल दस-बारह मल्टीनेशनल कम्पनियाँ मिलकर जिसमें चाबी भर देते हैं वो खिलौना चल पड़ता है।’ लोकतंत्र रूपी इमारत के चारों स्तम्भ अपने मूलभूत उद्देश्यों को भूलकर चापलूसी में लग गए हैं। विधायिका के नाम पर जनविरोधी कानून बनाए जा रहे हैं। कार्यपालिका कानून को लागू करने में पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाती है। न्यायपालिका से आम जनता का मोहभंग होने लगा है। लोग कोर्ट-कचेरियों के चक्कर काट-काट कर बूढ़े या मर जाते हैं लेकिन न्याय नहीं मिल पाता है। मीडिया जिसको इसलिए बनाया गया था कि इन तीनों पर नजर रख सके। अब हो उल्टा गया है। तीनों इस पर नजर रखते हैं। यह अपने उद्देश्यों को भूलकर चापलूसी में व्यस्त हो गई है। इसने जनता के मुद्दों और प्रश्नों को उठाना ही बंद कर दिया है। लोकतंत्र में जो लिखा गया है ठीक उसका उल्टा हो रहा है। जनता के लिए स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्वता, धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद, लोकतंत्र, संविधान और कानून आदि जैसे शब्द खोखले, मिथ्या, झूठे तथा भ्रमित करने वाले सिद्ध हुए हैं। भारी अर्थ लिए इन शब्दों का प्रभाव आम जनता के बीच पहुँचने से पहले ही दम तोड़ देता है। जिसके कारण जनता के प्रश्नों, मुद्दों और समस्याओं में कोई हल नहीं हुआ इसलिए जनवादी कवियों ने जनता की पीड़ाओं को अपनी कविता का विषय बनाया। इन पीड़ाओं का भोक्ता खुद कवि भी है। लोकतंत्र में बढ़ते भ्रष्टाचार और पक्षपातपूर्ण रवैये का चित्रण करते हुए दुष्यंत कुमार अपने ‘एक कंठ विषपायी’ गीति नाट्य में ‘सर्वहत्त’ (जनता) पात्र के हवाले से कहते हैं कि-

“क्यों?/ क्या अपने महादेव शंकर के साथ/ इन्हीं लोगों ने

¹ संपादक विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली भाग- 1, पृ.सं.- 155

किया नहीं पक्षपात/ सीमा पर उनके लिए/ रक्त की नदियाँ खुलवा दीं
और मुझे कहते हैं- ‘यहाँ रक्त नहीं मिल सकता/ यहाँ रक्त है अमूल्य।’
बतलाओ-/ मुझमें या शिव में क्या अंतर है?/यही ना कि मैं तो सर्वहत्त हूँ
साधारण हूँ/ और वो विशिष्ट देवता है, शिव शंकर है!
किन्तु प्यास दोनों की एक-सी है।/ ओह!
किंतु क्षमा करें/ भटक गया था मैं,/ मैं तो प्रजा हूँ/ मुझे क्या हक़ है?”¹

यह कैसी विडम्बना है कि जिस लोकतंत्र ने प्रजा को सर्वेसर्वा माना है उसी तंत्र में वही सबसे दीन-
हीन दशा में संघर्ष कर रही है। उसकी कोई सुनने वाला नहीं बचा है। वह केवल चुनाव की रैलियों में नारे
लगाने वाली, तालियों से शोर करने वाली, पार्टी का झंडा लहराने वाली आदि भीड़ बनकर रह गई है। और
झूठे आश्वासनों के सिवा इन्हें कुछ नहीं मिलता है। जिस संदर्भ में दुष्यंत कुमार अपनी ‘आश्वासनों का सूर्य’
शीर्षक कविता में लिखते हैं-

“डूब जाएगा पुनः आश्वासनों का सूर्य/ भाषणों की धूप में तपते हुए चेहरे
विदा लेंगे/ फिर अँधेरा घेर लेगा घरों को/ चुपचाप हारे हुए अपने आपसे
सब लोग/ अपने हाथ और हथेलियाँ सहलाएंगे।
जो सभाओं में तालियों का शोर करने /जोर से नारे लगाने को उठाए गए थे
उत्साहवश या विवश करके/ वहाँ लाए गए थे/ वो लोग थककर बैठ जाएँगे
... फिर वही/ फिर-फिर वही, जो हुआ अब तक/ वही होता जाएगा।”²

हमें मालूम है कि लोकतंत्र के यंत्र में हमारे हाथ में कुछ नहीं है। हम केवल इस तंत्र में शतरंज के
मोहरों से ज्यादा कुछ नहीं हैं। हमारे पास अपनी समस्याओं और होठों पर जलते सच तथा न्याय की दुहाई

¹ संपादक विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली भाग- 2, पृ.सं.- 106-107

² संपादक विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली भाग- 2, पृ.सं.- 120

की उम्मीद के सिवा कुछ नहीं है। और एक कलम है हमारे हाथ में जिसे मैं खड़ग बनाता हूँ लोकतंत्र में जनता की अहमियत के विषय में कवि अपनी 'जलता सच' शीर्षक कविता में लिखता है-

“हम जानते हैं कि इस तंत्र में/ क्रिया और कारक कोई है...

हमें यह भी पता है/ कि कागज़ की तरह हम केवल

अंकित होते जाने को अभिशप्त हैं/ हमें यह हक नहीं है

कि अपने सीने पर/ उगे हुए और उगते हुए झूठ को काट दें”¹

जिस लोकतंत्र को जनता ने लौह का पुतला समझा था आखिर में वो तो मोम का निकल गया। उसे अमीरों, उद्योगपतियों और पूंजीपतियों आदि की दौलत की गर्मी के आगे पिघलने में जरा भी देर नहीं लगी। और जिसे उम्मीदों का सूर्य समझा गया वह दौलत की धुंध में अपनी चमक ही भूल गया।

4.4.9 जनभाषा का प्रयोग- जनवादी कविता में आम जनता की समस्याओं को कवि उसकी ही भाषा में लिखता है क्योंकि जनकवि का उद्देश्य अपनी बात को आम जन तक पहुँचाना होता है। जनकवि जन की समस्याओं को जनभाषा में ही प्रकट करता है। जिससे सम्प्रेषण ठीक से हो सके इसलिए जनभाषा का प्रयोग जरूरी हो जाता है। जो उनकी पीड़ाओं को सही से जुबान दे सके। कुछ ऐसा ही दुष्यंत कुमार अपने 'जलते हुए वन का बसंत' कविता संग्रह की भूमिका में लिखते हैं कि, “पाठक से यह पूछना बहुत जरूरी है कि वह कविता के संदर्भ में आज क्या सोचता है? और क्या कविता उस तक पहुँच रही है? मैं ऐसे हवाई पाठक की कल्पना नहीं करता, जिसके बौद्धिक आयाम मेरे साँचों से मेल खाते हों। मैं तो खुद पाठक रूप में, उस कविता की खोज करता हूँ जो हर व्यक्ति की कविता हो और हर कंठ से फूटे।”² बच्चन सिंह जनवादी कविता के लिए जनभाषा का होना आवश्यक नहीं मानते हैं वे मुक्तिबोध के हवाले से लिखते हैं कि, “मुक्तिबोध की कविता तो जनवादी कविता है लेकिन कविता की भाषा जनवादी नहीं है। यह जरूरी नहीं है कि जनभाषा में लिखी गई कविता जनवादी ही हो। जनवादी कविता के लिए जनवादी भाषा की कोई अनिवार्यता नहीं है। कवि अपनी भाषा की तलाश स्वयं करता है।”³

¹ संपादक विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली भाग- 2, पृ.सं.- 135

² संपादक विजय बहादुर सिंह, दुष्यन्त कुमार रचनावली भाग- 2, पृ.सं.- 140

³ बच्चन सिंह, आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.सं- 284

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि दुष्यंत कुमार का काव्य में जनता के प्रश्नों, मुद्दों और समस्याओं को, उन्हीं की भाषा में गंभीरता से उठाया है इसलिए कवि का काव्य जनवादी कविता का पक्का प्रमाण है। दुष्यंत कुमार एक सच्चे जन प्रतिनिधि कवि हैं।

पांचवां अध्याय:

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी ग़ज़ल और दुष्यंत कुमार की ग़ज़ल

हिंदी ग़ज़ल उर्दू ग़ज़ल के समान ही विभिन्न पड़ावों से होकर गुजरी है जिसके प्रस्थान बिंदु अमीर खुसरो, कबीर, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, निराला, त्रिलोचन, शमशेर और दुष्यंत कुमार आदि हैं। शुरुआत में हिंदी कवियों ने उर्दू के शायरों के समान आशिक-माशूका की मोहब्बत भरी गुफ्तगू पर ही ग़ज़ल कही जिसकी अभिव्यक्ति हुश्न-इश्क और साकी-शराब की रसीली भावभूमि रही है। भाषा बदलने के बाद भी ग़ज़ल के रूप में उसी कलाम को स्वीकार किया जाता रहा है जिसमें औरतों के हुस्न और जमाल की तारीफ होती रही है इसलिए लीक से हटकर ग़ज़ल कहना ग़ज़लकारों के लिए दुस्साहस भरा कार्य रहा है। हिंदी के कवियों ने यह दुस्साहस करके, ग़ज़ल के इतिहास में क्रांति ला दी। जिसके लिए उन्हें आलोचना का सामना भी करना पड़ा है। यही कारण था कि जब पहली बार शमशेर बाहदुर सिंह ने पारंपरिक रूमानी संस्कार से ऊपर उठकर ग़ज़ल रचना की तो डॉक्टर राम विलास शर्मा ने यह कहकर खारिज कर दिया कि, “ग़ज़ल तो दरबारों से निकली हुई विधा है, जो प्रगतिशील मूल्यों को व्यक्त करने में अक्षम है!”¹ किन्तु अब स्थिति बदल चुकी है। स्वतंत्रता के बाद हिंदी कवियों ने जनमानस को केंद्र में रखकर देश की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों पर ग़ज़लें लिखीं। हिंदी कवियों ने अपने लिए ग़ज़ल का नया सौन्दर्यशास्त्र बनाया है। परिणाम स्वरूप आज हिंदी ग़ज़ल उर्दू ग़ज़ल के समान ही चर्चित विधा है जिसके प्रमुख कर्णधारों में भारतेन्दु, प्रेमघन, निराला, बलवीरसिंह रंग, त्रिलोचन, शमशेरबहादुर सिंह और दुष्यंत कुमार आदि हैं। हिंदी ग़ज़ल को उर्दू ग़ज़ल के समक्ष खड़ा करने में दुष्यंत कुमार का महत्वपूर्ण योगदान है। दुष्यंत कुमार हिंदी ग़ज़ल के प्रमुख स्तम्भ हैं।

हम यहाँ पर हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा पर बात करने से पहले ‘ग़ज़ल’ के रूपगत स्वरूप पर चर्चा करना अति आवश्यक समझते हैं।

5.1 ‘ग़ज़ल’ का रूपगत स्वरूप-

5.1.1 ‘ग़ज़ल’ शब्द का अर्थ-

¹ सं. अनिरुद्ध ‘विमल’ और राहुल शिवाय, कविता के नवरत्न, पृ.सं.- 9

ग़ज़ल मूलतः अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है- ‘औरतों से या औरतों के बारे में बातें करना’। अरबी भाषा में मृग या हिरन जैसी आँखों वाली औरतों से प्यार या मोहब्बत भरी बातों को ‘ग़ज़ल’ कहा जाता है। ग़ज़ल शब्द के अर्थ और व्युत्पत्ति को लेकर ‘जितने मुँह, उतनी बात’ वाली उक्ति सार्थक नजर आती है क्योंकि ग़ज़ल के अर्थ और उद्भव को लेकर विद्वानों के अलग-अलग विचार देखने को मिलते हैं। कुछ विद्वानों का मानना है कि ‘ग़ज़ल’ शब्द फारसी भाषा के ‘ग़ज़ाला’ शब्द का परिवर्तित रूप है। फारसी भाषा में ‘ग़ज़ाला’ हिरन के बच्चे को कहा जाता है। उर्दू के प्रख्यात ग़ज़लकार रघुपति सहाय ‘फिराक’ गोरखपुरी लिखते हैं कि, ‘जब कोई शिकारी जंगल में कुत्तों के साथ हिरन शावक का पीछा करता है और हिरन शावक भागते-भागते किसी ऐसी झाड़ी में फंस जाता है जहाँ से वह निकल नहीं सकता, उस समय उसके कंठ से जो दर्द भरी आवाज़ निकलती है, उसी करुण स्वर को ग़ज़ल कहते हैं।’¹ ऐसा लगता है जैसे- विद्वानों ने ‘ग़ज़ल’ का अर्थ हिरन के बच्चे की पीड़ा या वेदना से जोड़कर ग्रहण किया है अथवा हिरन के बच्चे की खूबसूरती, कोमलता, नाजुक भावों आदि से तुलना करते हुए नाजुक भावों की अभिव्यक्ति करने वाली कविता को ग़ज़ल कहा होगा। डॉ. सरदार मुजावर का कथन इसी तरफ इशारा करता है। वे लिखते हैं कि “ग़ज़ल शब्द बुनियादी तौर पर अरबी भाषा का शब्द है। ग़ज़ाला से ग़ज़ल शब्द बना है। ग़ज़ाला का अर्थ है- हिरन का जो छोटा बच्चा। ‘ग़ज़ल’ शब्द में ही एक तरह की खूबसूरती और नजाकत भरी हुई है। इसलिए शायद नाजुक भावों की अभिव्यक्ति करने वाली विधा को ग़ज़ल नाम से अभिहित किया गया होगा।”²

सूर्यप्रकाश शर्मा ग़ज़ल का अर्थ ‘ग़ज़ल’ नामक व्यक्ति से संबंधित किंवदंती से जोड़कर लिखते हैं कि, “एक किंवदंती के अनुसार अरब में ‘ग़ज़ल’ नाम का एक आदमी था जिसने अपनी सारी उम्र इश्क करने में बिता दी, उसके बारे में यह प्रचलित है कि वह हमेशा इश्क और हुस्न की बातें ही किया करता था और अपनी बातों को कलात्मक ढंग से कहने में उस्ताद था। कम से कम शब्दों में अधिक प्रभाव उत्पन्न करने हेतु वह शेर कहता था, इसी आधार पर संभवतः इश्क और हुस्न का जिक्र करने वाली कविता को ‘ग़ज़ल’ की संज्ञा दी जाने लगी।”³ कुछ लोगों का मानना है कि अरब में एक व्यक्ति था जिसने अपनी सारी उम्र शराब पीने और इश्क में गुजार दी। वह हमेशा हुस्न और इश्क की तारीफ किया करता था। इस व्यक्ति

¹ डॉ. रामगोपाल सोनी, स्वतंत्रता के पचास वर्ष: हिंदी ग़ज़ल की यात्रा, पृ.सं.- 27

² सरदार मुजावर, हिंदी ग़ज़ल के विविध आयाम, पृ.सं.- 12

³ सूर्यप्रकाश शर्मा, ग़ज़ल एक यात्रा, पृ.सं.- 2

का नाम 'ग़ज़ल' था। इसलिए ऐसे अशआर को ग़ज़ल कहा जाने लगा जिसमें हुस्न तथा इश्क का बयान हो।

कहीं-कहीं कुछ विद्वान् ग़ज़ल का अर्थ 'कातने-बुनने' से जोड़कर भी देखते हैं। वैसे ग़ज़ल में भावनाओं और विचारों की कताई-बुनाई ही होती है। लेकिन 'कातना-बुनना' जिस शब्द का अर्थ होता है वह 'गज़ल' होता है, 'ग़ज़ल' नहीं।

5.1.2 'ग़ज़ल' का कोशगत अर्थ-

'उर्दू-हिंदी शब्दकोश' में ग़ज़ल का अर्थ है, "प्रेमिका से वार्तालाप, उर्दू-फारसी कविता का एक विशेष, जिसमें प्रायः 5 से 11 शेर होते हैं। सारे शेर एक ही रदीफ़ और काफ़िए में होते हैं और हर शेर का मजमून अलग होता है। पहला शेर 'मतला' कहलाता है जिसके दोनों मिस्रे सानुप्रास होते हैं और अंतिम शेर 'मक्ता' होता है जिसमें शायर अपना उपनाम लेता है। ग़ज़ल संग्रह को 'दीवान' एवं सम्पूर्ण प्रकार के पद्य-संग्रह को 'बयाज' कहते हैं।"¹

'हिंदी साहित्य कोश भाग-1' में ग़ज़ल का अर्थ है कि "ग़ज़ल में प्रेम भावनाओं का चित्रण होता है। ग़ज़ल का शाब्दिक अर्थ है- 'नारियों से प्रेम की बातें करना। अतः अच्छी ग़ज़ल वही समझी जाती है जिसमें इश्को-मोहब्बत की बातें सच्चाई और असर के साथ लिखी जाए। यह बात तभी पैदा होती है, जब उसे सरल और मीठी बोली में लिखा जाए ताकि वह दिल में घर कर जाए। लेकिन ग़ज़ल के शेरों का सादा होना कोई जरूरी नियम नहीं है। बहुत से उच्च कोटि के शेर सादे नहीं हैं, फिर भी वे ग़ज़ल के अच्छे नमूने माने जाते हैं।

ग़ज़ल की असली कसौटी प्रभावोत्पादकता है। ग़ज़ल वही अच्छी होगी, जिसमें असर और मौलिकता हो, जिसके पढ़ने वाले समझें कि यह उन्हीं की दिली बातों का वर्णन है।... अक्सर ग़ज़ल का हर शेर स्वयं पूर्ण होता है। इसके बराबर के दो टुकड़े होते हैं, जिनको 'मिसरा' कहते हैं। जितने शेरों का आखिरी शब्द एक हो और उसके पहले का शब्द एक ही आवाज़ का हो, उनको एक साथ लिखते हैं, और ऐसे पाँच से सत्रह शेरों को ग़ज़ल कहते हैं। परन्तु इस संख्या के पालन में उर्दू में कोई खास पाबन्दी नहीं है। बहुत से

¹ संकलनकर्ता मुहम्मद मुस्तफ़ा खां 'मदाह', उर्दू-हिंदी शब्दकोश, पृ.सं.- 177

शायरों ने ग़ज़लों में सत्रह से ज्यादा शेर भी रखे हैं। हर शेर के अंत में जितने शब्द बार-बार आयें, उनको ‘रदीफ़’ और रदीफ़ से पहले के एक ही आवाज वाले शब्दों को ‘काफिया कहते हैं।”¹

‘राजपाल हिंदी शब्दकोश’ में ग़ज़ल के बारे में कहा गया है कि, “ग़ज़ल ऐसी पद्यात्मक रचना है जिसमें नायिका के सौन्दर्य एवं उसके प्रति उत्पन्न प्रेम का वर्णन हो।”²

महाराष्ट्र शब्दकोश(विभाग तीसरा) में ग़ज़ल के बारे में लिखा गया है कि, “एक फारसी वृतांतीलगीत; चीज; गज्जल; हा बहुधा ठुमरीयोग्य रागांतच गायला जातो. यांतील विषय आषुकमाषुकांचे यमकपूर्ण प्रेमोद्गर. ताल पस्तु शोभतो. फारसी प्रेमगीत. ग़ज़ल एक यमकी असून त्यांतील पंक्तियुग्मकांची संख्या पांच ते सतरापर्यंत असते. गज्जलांच्या संग्रहास दिवाण म्हणतात.”³

5.1.3 ‘ग़ज़ल’ के बारे में विद्वानों के मत और परिभाषाएँ-

उर्दू शायर ‘जाँनिसार अख्तर’ के अनुसार- “चन्द लफ्ज़ों में दिल की बात कहने की कला का नाम ‘ग़ज़ल’ है, टूटे दिल की पुकार को ‘ग़ज़ल’ कहते हैं-“हम से पूछों कि ‘ग़ज़ल’ क्या है?/ ग़ज़ल का फन क्या है?/ चन्द लफ्ज़ों में कोई/ आग छुपा दी जाए”⁴

डॉ. रोहिताश्व अस्थाना के अनुसार- “ग़ज़ल वह गेयात्मक काव्य विधा है जिसमें प्रेम की विभिन्न दशाओं के शब्द-चित्र ‘शेरों’ के माध्यम से प्रस्तुत हुए हों तथा जिसमें प्रेम की क्रीड़ा-वीड़ा एवं कोमल अनुभूतियों के स्वर हों अथवा सामाजिक, राजनीतिक एवं हास्य-व्यंग्यात्मक भाव भूमि पर आम आदमी के सांस में दबी पीड़ा व छटपटाहट को वाणी दी गई हो तथा जो विषय-वस्तु की दृष्टि से व्यापक होते हुए भी संक्षिप्तता एवं प्रभावोत्पादकता के गुणों से युक्त हो।”⁵

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार- “ग़ज़ल उर्दू काव्य का सर्वाधिक प्रसिद्ध और सरस भेद है, उसका स्थायी भाव प्रेम जिसमें रहस्यानुभूति, मस्ती, रिन्दी, धार्मिक और विद्रोह आदि भावनायें संचारी रूप से ओत-प्रोत

¹ सं. धीरेन्द्र वर्मा और अन्य, हिन्दी साहित्य कोश, ज्ञानमंडल लिमिटेड(2013) वाराणसी, पृ.सं.- 216

² डॉ. हरदेव बिहारी, राजपाल हिंदी शब्दकोश, पृ.सं.- 159

³ संपादक मंडल दाते और अन्य, महाराष्ट्र शब्दकोश- विभाग तिसरा(1988), एशियन एजुकेशनल सर्वि., पृ.सं.-926

⁴ सं. प्रकाश पंडित, जाँनिसार अख्तर की ग़ज़लें, पृ.सं.- 8

⁵ डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, हिंदी ग़ज़ल उद्भव और विकास, पृ.सं.-22

रहती हैं। विषय के अनुरूप उसका एक विशिष्ट काव्यरूप भी होता है जो मतला, मक्ता, गिरह, काफिया और रदीफ़ में परिबद्ध रहता है।”¹

डॉ. कुँवर बेचैन के अनुसार- “ग़ज़ल हृदय की अनुभूति की सूक्तिमयी शैली है, जिसकी अपनी निजी भाषा, निजी भाव, निजी उपमाएं एवं निजी अलंकार होते हैं। किसी बात को सीधे-सीधे कह देना ग़ज़ल को पसंद नहीं। जो कुछ कहना है संकेतों में। इसलिए ग़ज़ल गागर में सागर है।”²

जहीर कुरैशी का मानना है कि “भेंरी नज़र में ग़ज़ल एक ऐसी विधा है, जिसमें अनेक विषयों पर टुकड़े-टुकड़े बातचीत की जाती है। जिसका हर शेर अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता है और हर स्वतंत्र शेर में एक स्वतंत्र चिंतन प्रक्रिया होती है।”³

शिवओम अम्बर हिंदी ग़ज़ल की प्रवृत्ति के विषय में लिखते हैं, “हिंदी ग़ज़ल भोजपत्र पर विप्लव की अग्निक्रुचा है। वह विद्रोह की मशाल जलाने के साथ-साथ तुलसीदासचौरे पर संध्या दीप जागृत करने की कला में निष्पात हो गई है। उसे आवेग को हुंकार भरने के साथ-साथ, अनुराग की मेंहंदी और अभिसार का महावर के पाटली संदर्भों को बचाने का ढंग आ गया है। इसके अतिरिक्त वह चिंतन के चैत्य में समाधिस्थ, ज्योतिषमयी प्रज्ञा के अंतर्गत प्रकाशित करने का अभिनव अपूर्व प्रयास कर रही है।”⁴

दिनेश शुक्ल हिंदी ग़ज़ल के औचित्य पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं कि, “हिंदी ग़ज़ल के पास जितनी संवेदना की ज़मीन है वह अन्य किसी विधा के पास नहीं। इसलिए ज़मीन से जुड़े, संघर्ष से जुड़े, रोज़ी-रोटी से जुड़े सवालियों के प्रश्नों के उत्तर जिस प्रकार लेखन में आज हिंदी ग़ज़ल में ढूँढ़े जा रहे हैं, तब इन तमाम सच्चाईयों के साथ उसका औचित्य बढ़ गया है।”⁵

डॉ. उर्मिलेश हिंदी ग़ज़ल के बारे में लिखते हैं कि, “आज भी हिंदी ग़ज़ल व्यक्ति और समाज को नई व्याख्या देने वाली विधा है, जो अपने परम्परानुमोदित शिल्प में आबद्ध होते हुए भी अपने भाषिक और व्यावहारिक संस्कारों की सुरक्षा को देखते हुए नई कविता और नवगीत से पैदा हुई ऊब और खीझ को

¹ डॉ. रामप्रकाश पथिक, हिंदी ग़ज़ल का सौन्दर्यशास्त्र, पृ.सं.- 15

² डॉ. कुँवर बेचैन, शमियानें काँच के, पृ.सं.- 10

³ सं. डॉ. सरदार मुज़ावर, हिंदी ग़ज़ल: ग़ज़लकारों की नज़र में, पृ.सं.- 41

⁴ ज्ञान प्रकाश विवेक, हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा, पृ.सं.- 98

⁵ सं. डॉ. सरदार मुज़ावर, हिंदी ग़ज़ल: ग़ज़लकारों की नज़र में, पृ.सं.- 91

अपने रागात्मक तेवर से भरते हुए, चिंतन और सम्प्रेषण के नये आयाम देते हुए हिंदी और उर्दू के बीच फैली सियासी और साम्प्रदायिक दूरी को कम कर रही है।¹

सूर्यभान गुप्त हिंदी ग़ज़ल के विषय में लिखते हैं कि, “हिंदी ग़ज़ल की सबसे बड़ी खूबी है, उसकी भारतीयता। वह उर्दू की तरह फारसी के मोहजाल में नहीं फंसी और इसलिए उसकी ज़ेरोक्स कॉपी बनने से बच गई। उसका काव्य संस्कार उसका चिन्तन, उसकी उपमाएं, उसके प्रतीक, उसकी सम्पूर्ण काव्य भंगिमा भारतीय है। हिंदी की ग़ज़ल हिंदी कविता के अभ्यस्त पाठकों के दिमाग में ग़ज़ल के प्रति वर्षों की जगी हुई रूपवादी, लिजलिजी, रूढ़ धारणा को बहुत हद तक ध्वस्त ही नहीं करती बल्कि आधुनिकता के नाम पर एक बौद्धिक छद्म में जकड़ी हुई कविता से विमुख पाठकों की दिलचस्पी फिर से कविता में जगाती है।”²

उपरोक्त ग़ज़ल के कोशगत अर्थ, परिभाषाओं और मतों आदि को देखने के बाद कहा जा सकता है कि ग़ज़ल शब्द के व्युत्पत्तिपरक अर्थ को लेकर विद्वानों में मतभेद देखने को मिलता है। मोटेतौर पर कुछ बिन्दु निकलकर जरूर सामने आते हैं कि ग़ज़ल मूलतः अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ ‘औरतों से या औरतों के बारे में प्रेम भरी बातें’ करना होता है। जिसमें ग़ज़लकार प्रेम भावनाओं को अभिव्यक्त करता है। अतः इसके आधार पर लिखे गए साहित्य को ग़ज़ल विधा के अंतर्गत रखा गया जिसकी शुरुआत उर्दू-फारसी भाषा में हुई है, जिसका एक अपना छंद और व्याकरण है।

ग़ज़ल एक ही बहर में कहे जाने वाले शेरों का समूह है। इसमें मतला, मक्ता, बहर, काफिया और रदीफ़ होते हैं। ग़ज़ल का प्रत्येक शेर अपनी अलग एक कहानी बयान करता है। यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि उपरोक्त सभी मत शुरुआती ग़ज़ल के विषय को देखते हुए लिखे गए हैं। वर्तमान समय में ग़ज़ल का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत हो चुका है। ब्रह्माण्ड का कोई ऐसा विषय नहीं है जिस पर ग़ज़ल ना कही गई हो या कही नहीं जा सकती हो। ग़ज़ल अपने शुरुआती दौर से बहुत आगे निकल चुकी है। अब ग़ज़ल किसी एक विशेष फूल का गुलदस्ता ना होकर ब्रह्माण्ड में मौजूद सभी फूलों से निर्मित एक सुंदर गुलदस्ते का रूप ले चुकी है। आगे और इस पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

5.1.4 ग़ज़ल के अंग

“ग़ज़ल वो ग़ज़ल जो ग़ज़ल सी लगे

¹ सं. डॉ. सरदार मुजावर, हिंदी ग़ज़ल: ग़ज़लकारों की नज़र में, पृ.सं.- 74

² सं. डॉ. सरदार मुजावर, हिंदी ग़ज़ल: ग़ज़लकारों की नज़र में, पृ.सं.- 35

मेरे महबूब की, हमशकल-सी लगे
 रक्तरंजित 'रदीफ़' काफ़िया चश्मे तर
 इक न इक तो 'बहर' मुकम्मल सी लगे
 मिस्रा-ए-ऊला' कि ज्यों चाँद की सरजमीं
 मिस्रा-ए-सानी, लताफत कँवल-सी लगे
 जुल्फ़ रुखसार पे बन के चिलमन हँसी
 'मतला' फुर नाम निगाहों की छल ही लगे
 'दीप' मकते की बंदिश भी हो इस तरह
 हस्र में आईना-ए-अदल सी लगे'¹

'ग़ज़ल' मुक्तक काव्य का एक भेद है जिसका प्रमुख विषय प्रेम अभिव्यक्ति है। ग़ज़ल की बनावट और बुनावट के बारे में लिखा गया है कि ग़ज़ल एक ही 'बहर' और 'वज़न' के अनुसार लिखे गए शेरों का समूह है। इसके पहले शेर को 'मतला' कहते हैं। ग़ज़ल के अंतिम शेर को 'मक़ता' कहते हैं। मक़ता में आम तौर पर शायर का नाम, उपनाम या तखल्लुस होता है। आम तौर पर ग़ज़लों में शेरों की विषम संख्या होती है जैसे- तीन, पाँच, सात, नौ, ग्यारह, तेरह...। एक ग़ज़ल में 5 से लेकर 25 तक शेर हो सकते हैं। ये शेर एक-दूसरे से स्वतंत्र होते हैं। कभी-कभी एक से अधिक शेर मिलकर अर्थ प्रधान करते हैं। ऐसे शेर 'कतआयुक्त' कहलाते हैं। ग़ज़ल के शेर में तुकांत शब्दों को 'काफ़िया' कहा जाता है और शेरों में दोहराए जाने वाले शब्दों को 'रदीफ़' कहा जाता है। शेर की पंक्ति को 'मिस्रा' कहा जाता है। 'मतले' की दोनों मिस्रों में काफ़िया आता है और शेरों की दूसरी पंक्ति में 'काफ़िया' आता है। 'रदीफ़' हमेशा 'काफ़िये' के बाद आता है। 'रदीफ़' और 'काफ़िया' एक ही शब्द के भाग भी हो सकते हैं और बिना 'रदीफ़' का शेर भी हो सकता है जो 'काफ़िये' पर समाप्त होता है। ग़ज़ल के सबसे अच्छे शेर को 'शाहे बैत' कहा जाता है। हम नीचे दुष्यंत कुमार की ग़ज़ल के उदाहरण से उपरोक्त 'ग़ज़ल' के पारिभाषिक शब्दों का विवेचन-विश्लेषण कर सकते हैं-

¹ डॉ. सरदार मुजावर, हिंदी ग़ज़ल के विविध आयाम, पृ.सं.- 21

“कहाँ तो तय था चिरागाँ हरेक घर के लिए
 कहाँ चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए।
 यहाँ दरख्तों के साये में धूप लगती है,
 चलो यहाँ से चले और उम्र-भर के लिए।
 न हो कमीज तो पावों से पेट ढँक लेंगे
 ये लोग कितने मुनासिब हैं, इस सफ़र के लिए।
 खुदा नहीं, न सही, आदमी का ख्वाब सही,
 कोई हसीन नज़ारा तो है नज़र के लिए।
 वे मुतमइन हैं कि पत्थर पिघल नहीं सकता,
 मैं बेकरार हूँ आवाज़ में असर के लिए।
 तेरा निज़ाम है सिल दे जुबान शायर की,
 ये एहितयात ज़रूरी है इस बहर के लिए।
 जिएँ तो अपने बगीचे में गुलमोहर के तले,
 मरें तो ग़ैर की गलियों में गुलमोहर के लिए।”¹

उपरोक्त ग़ज़ल का विवेचन-विश्लेषण करने के बाद हम कह सकते हैं कि प्रस्तुत ग़ज़ल का पहला शेर ‘मतला’ का उदाहरण है क्योंकि शेर की दोनों पंक्तियों में ‘घर’ और ‘शहर’ आदि शब्द ‘काफ़िया’ तथा दोनों पंक्तियों के अंत में ‘के लिए’ शब्द के रूप में ‘रदीफ़’ का प्रयोग हुआ है जिसके आधार हम कह सकते हैं कि ये ‘मतला’ है। शेर की पहली पंक्ति को ‘मिसर-ए-ऊला’ और दूसरी पंक्ति को ‘मिसर-ए-सानी’ कहते हैं। मतले के बाद ग़ज़ल के बाकि सभी को शेर कहा जाता। ग़ज़ल का प्रत्येक शेर अर्थ के स्तर पर एक-दूसरे से अलग या स्वतंत्र होता है। जिसका प्रमाण ग़ज़ल में देख सकते हैं। ‘रदीफ़’ मतला की दोनों पंक्तियों में होता है जैसा ऊपर कहा गया है। मतला के बाद प्रत्येक शेर की दूसरी पंक्ति में आने वाले अंतिम शब्द को

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 2 पृ.सं.- 261

‘रदीफ़’ कहा जाता है। उपरोक्त ग़ज़ल के सभी शेरों की दूसरी पंक्ति में ‘के लिए’ रदीफ़ का प्रयोग देखने को मिलता है। रदीफ़ की तरह ग़ज़ल के प्रत्येक शेर की दूसरी पंक्ति में आने वाले अन्त्यानुप्रासयुक्त या तुकान्त शब्द को ‘काफ़िया’ कहते हैं। प्रस्तुत ग़ज़ल के प्रत्येक शेर की दूसरी पंक्ति में उम्रभर, सफ़र, नज़र, असर, बहर और गुलमोहर आदि आए शब्द ‘काफ़िया’ के उदाहरण हैं। ग़ज़ल के अंतिम शेर को ‘मकता’ कहा जाता है जिसकी दूसरी पंक्ति में शायर का नाम या उपनाम आता है लेकिन दुष्यंत कुमार अपवाद हैं क्योंकि वह ग़ज़ल के अंतिम या किसी भी शेर में अपना नाम या उपनाम का प्रयोग नहीं करते हैं। जैसा ऊपर कहा गया है कि ग़ज़ल में शेरों की संख्या विषम होती है तो प्रस्तुत ग़ज़ल में शेरों की संख्या सात विषम संख्या ही है। ग़ज़ल के सबसे अच्छे शेर को ‘शाहे बैत’ कहा जाता है। प्रस्तुत ग़ज़ल का सातवाँ शेर मुझे सबसे अच्छा लगा है या लगता है क्योंकि इसमें देश या वतन के लिए कुछ कर गुजरने की भावना है।

5.1.5 ग़ज़ल के प्रकार-

5.1.5.1 तुकान्तता के आधार पर ग़ज़ल दो प्रकार की होती है-

5.1.5.1.1 मुअद्दस ग़ज़ल

जिस ग़ज़ल में ‘रदीफ़’ और ‘काफ़िया’ दोनों का ध्यान रखा जाता है उन्हें ‘मुअद्दस ग़ज़ल’ कहते हैं। दुष्यंत कुमार की ज्यादातर ग़ज़लें ‘मुअद्दस ग़ज़लों’ का ही उदाहरण है। दुष्यंत कुमार की ऊपर लिखी (कहाँ तो तय था चिरागाँ हरेक घर के लिए/ कहाँ चिराग़ मयस्सर नहीं शहर के लिए) ये ग़ज़ल ‘मुअद्दस ग़ज़ल’ का उदाहरण है क्योंकि इस ग़ज़ल में ‘रदीफ़’ और ‘काफ़िया’ आदि दोनों का ध्यान रखा गया है।

5.1.5.1.2 मुकफ़्फ़ा ग़ज़ल

जिन ग़ज़लों के अश'आरों में केवल काफ़िया का ध्यान रखा जाता है वे ‘मुकफ़्फ़ा ग़ज़ल’ कहलाती हैं। दुष्यंत कुमार की निम्नलिखित ग़ज़ल देख सकते हैं-

“अफवाह है या सच है ये कोई नहीं बोला,

मैंने भी सुना है अब जाएगा तेरा डोला।

इन राहों के पत्थर भी मानूस थे पावों से,

पर मैंने पुकारा तो कोई भी नहीं बोला।

लगता है, खुदाई में कुछ तेरा दखल भी है,
इस शाम फिज़ाओं ने वो रंग नहीं घोला।
आखिर तो अँधेरे की जागीर नहीं हूँ मैं,
इस राख में पिन्हा है अब तक भी वही शोला।
सोचा कि तू सोचेगी, तूने किसी शायर की
दस्तक तो सुनी थी पर दरवाज़ा नहीं खोला।”¹

उपरोक्त ग़ज़ल ‘मुक़फ़्फ़ा ग़ज़ल’ का उदाहरण है क्योंकि इसमें ‘रदीफ़’ का प्रयोग न होकर केवल ‘काफ़िया’ का प्रयोग हुआ है। ग़ज़ल में बोला, डोला, घोला, शोला और खोला आदि ‘काफ़िया’ शब्द हैं।

5.1.5.2.भाव के आधार पर भी ग़ज़ल दो प्रकार की होती है-

5.1.5.2.1 मुसल्लसल ग़ज़ल

वह ग़ज़ल जिसका एक शेर, दूसरे शेर से भाव और अर्थ के स्तर पर जुड़ा रहता है। वह ‘मुसल्लसल ग़ज़ल’ कहलाती है। इस प्रकार की ज्यादा ग़ज़ल नहीं लिखी जाती हैं। उदाहरण स्वरूप दुष्यंत कुमार की ये ग़ज़ल देख सकते हैं-

“चाँदनी छत पे चल रही होगी,
अब अकेली टहल रही होगी।
फिर मेंरा ज़िक्र आ गया होगा’
वो बरफ-सी पिघल रही होगी।
सोचता हूँ कि बंद कमरे में,
एक शमाओं-सी जल रही होगी।
शहर की भीड़-भाड़ से बचकर,

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 2 पृ.सं.- 278

तू गली से निकल रही होगी।
तेरे गहनों-सी खनखनाती थी,
बाजरे की फ़सल रही होगी।”¹

दुष्यंत कुमार की उपरोक्त ग़ज़ल ‘मुसल्सल ग़ज़ल’ का उदाहरण है क्योंकि प्रत्येक शेर आपस में भाव और अर्थ के स्तर पर जुड़ा हुआ है।

5.1.5.2.2 ग़ैरमुसल्सल ग़ज़ल

वह ग़ज़ल जिसका प्रत्येक शेर भाव और अर्थ के स्तर पर स्वतंत्र होता है वह ‘ग़ैरमुसल्सल ग़ज़ल’ कहलाती है। दुष्यंत कुमार की ऊपर लिखी (कहाँ तो तय था चिरागाँ हरेक घर के लिए/ कहाँ चिराग़ मयस्सर नहीं शहर के लिए।) ये ग़ज़ल ‘ग़ैरमुसल्सल ग़ज़ल’ का उदाहरण है क्योंकि इस ग़ज़ल का प्रत्येक शेर भाव और अर्थ के स्तर पर अलग या स्वतंत्र है।

5.2 ‘ग़ज़ल’ का उद्भव और विकास

अरब के रेगिस्तान में ‘ग़ज़ल’ का बीज अंकुरित हुआ जब अरब समाज छोटे-छोटे कबीलों, समुदायों, टोलों, राज्यों आदि में बंटा हुआ था। उस समय इस्लाम धर्म का जन्म भी नहीं हुआ था। जब ये अपने सरदार या राजा को ही सर्वोपरि मानते थे। ये लोग दिनभर की थकान दूर करने और मनोरंजन के लिए, अपने सरदार या राजा की स्तुतिगान से परिपूर्ण कविताओं का प्रस्तुतिकरण करते थे। इस कविता को अरब में ‘कसीदा’ विधा के नाम से जाना जाता था। लगभग एक हजार साल पहले ग़ज़ल का जन्म इसी कबीलाई समाज में प्रसिद्ध ‘कसीदा’ से हुआ। कसीदा के तशबीब, गुरेज, मदह और दुआ चार भाग होते हैं। ‘तशबीब’ से ग़ज़ल की उत्पत्ति मानी जाती है। इसका मुख्य विषय प्रेम, प्यार, मुहब्बत और शृंगारिक था जो कसीदे से पहले कहा जाता था। कसीदे सरदार या राजाओं की तारीफ में कहे जाते थे और शायर या ग़ज़लकार अपना जीवन-यापन करने के लिए शासकों की झूठी तारीफ़ करते थे जिससे भोग-विलास में डूबे राजा बहुत खुश होते थे। राजा महफ़िलों में बैठकर कबाब, शराब और शबाब आदि के साथ कसीदे सुनते थे। इसकी तुलना हम हिंदी साहित्य में ‘रीतिकाल से करें तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। ‘पदमाकर’ ने अपने एक पद्य में दरबार का वातावरण दिखाया है-

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 2 पृ.सं.- 270

“गुलगुली गिलमैं गलीचा है गुनीजन हैं,
चाँदनी हैं चिक हैं चिरागन की माला है।
कह ‘पदमाकर’ त्यों गजक गिजा हैं सजी,
सेज हैं सुराही हैं सूर हैं और प्याला हैं।
सिसिर के पला को न व्यापत कसाला तिन्हें,
जिनके अधीन एते उदित मसाला हैं।
तान तुक ताला हैं, बिनोद के रसाला हैं,
सुबाला हैं दुसाला हैं बिसाला चित्रसाला हैं।”¹

इसी से अनुमान लगा सकते हैं कि अरब के सरदारों या राजाओं के दरबारों का लगभग ऐसा ही वातावरण रहा होगा। वे औरतों के जिक्र से खुश होते थे तो शायर औरतों और शराब का जिक्र ही ग़ज़लों में करने लगे होंगे जो आगे चलकर रूढ़ हो गया। और फिर चाहकर भी वे ग़ज़ल में आम जनता का दुख-दर्द बयान नहीं कर सके। परिणाम स्वरूप ग़ज़ल का अर्थ ही औरतों के बारे में जिक्र या बातें करना हो गया।

इस्लाम धर्म की उत्पत्ति के बाद अरबों ने जब इस्लाम के प्रचार-प्रसार के लिए ईरान पर आक्रमण किया था, तब ईरान में इस्लाम के साथ-साथ अरबों की संस्कृति का भी आदान-प्रदान हुआ। इस आदान-प्रदान के खेल में ईरानियों को इस्लाम के साथ कसीदा या तशबीब या ग़ज़ल के बीज भी सौगात में मिले। ईरानी कवियों ने इसे बड़े सम्मान और सत्कार के साथ अपनाया। यही कारण है कि ग़ज़ल के बीज अरब के रेगिस्तान में अंकुरित हुए लेकिन ग़ज़ल रूपी पौधा ईरान की जमीन में उगा। ईरान के कवियों ने कसीदे से तशबीब को अलग करके, ग़ज़ल रूपी नई काव्य विधा का निर्माण किया। इस प्रकार ‘तशबीब’ के विकासात्मक रूप का उद्गम ग़ज़ल के रूप में ईरान की जमीन पर हुआ। इसका श्रेय फारसी के बाबा आदम कहे जाने वाले ‘रौदकी’ को दिया जाता है। इन्होंने अपनी ग़ज़लों में प्रेम-परक विषयों को स्थान दिया था। ईरान की इसी पर्शियन भूमि से होते हुए, ग़ज़ल फारसी कवि ‘अबुल हसन यामीनुद्दीन अमीर खुसरों’ के

¹ पद्माकर, कविता कोश, 10/02/2021

साथ भारत आई। यह ठीक वही समय था जब इस्लाम के प्रचार-प्रसार के लिए इस्लामी अनुयाई, सूफी संत और मुस्लिम आक्रांता भारत में आने शुरू हुए थे।

मुगल शासक जब भारत आए तो अपने साथ फ़ारसी संस्कृति भी लाए और जहाँ-जहाँ उन्होंने राज स्थापित किया वहाँ-वहाँ की अदालती और राजकीय काम-काज की भाषा बदलकर फ़ारसी कर दी। इससे पहले यहाँ पर शौरसेनी अपभ्रंश भाषा का इस्तेमाल होता था जो आम बोलचाल की भाषा न होकर किताबी भाषा थी, जिसकी उत्पत्ति संस्कृत से हुई थी। जब अदालती भाषा और राजकीय काम-काज की भाषा फ़ारसी बनी तो लोगों को मज़बूरन फ़ारसी भाषा सीखनी पड़ी। यहाँ के कवियों ने फ़ारसी भाषा के साथ-साथ ग़ज़ल को भी ग्रहण किया और उसका 'बहर' शास्त्र भी सीखा जिसे फ़ारसी में 'अरूज' कहा जाता था। ग़ज़ल का जो रूप ईरान में था वही रूप भारत के कवियों ने अपनाया। यहाँ एक बात का ज़िक्र करना आवश्यक है कि ये सब शासक मुस्लिम थे इसलिए इन्होंने इस्लाम धर्म और फ़ारसी का ख़ूब प्रचार-प्रसार किया। ये सिलसिला शताब्दियों तक चलता रहा। अरबी से फ़ारसी साहित्य में आकर भी ग़ज़ल के शिल्प में कोई बदलाव नहीं आया परन्तु विषय की दृष्टि से थोड़ी विस्तृत जरूर हुई। फ़ारसी ग़ज़ल में बात तो दैहिक या भौतिक प्रेम की होती रही लेकिन औरत के दैहिक प्रेम ने आध्यात्मिक प्रेम का रूप ले लिया था। अरबी का 'इश्के मजाज़ी' फ़ारसी में 'इश्के हक़ीक़ी' हो गया। फ़ारसी ग़ज़ल में प्रेमी को 'सादिक' (साधक) और प्रेमिका को 'माबूद' (ब्रह्म) का दर्जा दिया गया है। फ़ारसी ग़ज़ल के विकास में सूफी संतों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। फ़ारसी ग़ज़लों में भी संयोग के बजाए वियोग पक्ष की प्रधानता दिखती है जिसका प्रमाण हमें हिंदी साहित्य में सूफी संतों के प्रेमाख्यानों में मिलता है। फ़ारसी भाषा के बाद उर्दू भाषा ने भी अरबी ग़ज़ल के ही शिल्पगत रूप को अपनाया लेकिन विषय भारतीय हो गया।

जब भारत में इस्लाम के प्रचार-प्रसार के लिए इस्लामी अनुयाई, सूफी संत और मुस्लिम आक्रांता आये तो वे अपने साथ अपनी संस्कृति भी लाए। जब इनकी संस्कृति भारत की संस्कृति के सम्पर्क में आई तो एक मिली-जुली संस्कृति का निर्माण हुआ। उस संस्कृति से हमें 'उर्दू भाषा' मिली जिसे शुरू में 'रेख्ता' और बाद में 'उर्दू' नाम से पुकारा जाने लगा। 'उर्दू' भाषा की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए 'सतपाल ख़्याल' इस कथन को देख सकते हैं कि, "उर्दू एक तुर्की लफ़्ज़ है जिसका अर्थ है: छावनी, लश्कर। 'मुअल्ला' अरबी लफ़्ज़ है। शाही कैंप, शाही छावनी, शाही लश्कर के लिए पहले 'उर्दू-ए-मुअल्ला' शब्द का इस्तेमाल शुरू हुआ। बाद में बादशाही सेना की छावनियों तथा बाजारों (लश्कर बाजारों) में हिन्दवी अथवा देहलवी का जो भाषा रूप बोला जाता था उसे 'ज़बाने-उर्दू-ए मुअल्ला' कहा जाने लगा। बाद में

जब यह जुबान फैली तो ‘मुअल्ला’ शब्द हट गया तथा ‘ज़बाने उर्दू’ रह गया। ‘ज़बाने उर्दू’ के मतलब ‘उर्दू की जुबान या अंग्रेजी में ‘लैंग्वेज ऑफ़ उर्दू’। बाद में इसी को संक्षेप में ‘उर्दू’ कहा जाने लगा।¹ उर्दू का प्रयोग सबसे पहले सैनिक छावनियों या लश्कर बाज़ारों में होना शुरू हुआ। उसके बाद आम जनता से होते हुए, तत्कालीन साहित्यकारों के माध्यम से दरबारों तक पहुंची। फिर सरकारी-गैरसरकारी राजकाज की भाषा के रूप में स्थान पाकर पूरे देश में फैल गई।

उर्दू एक मिश्रित भाषा है क्योंकि इसका शब्द-भण्डार अरबी, फ़ारसी और भारतीय भाषाओं के तत्सम और तद्भव शब्दों से मिलकर बना है। इसकी लिपि ‘देवनागरी’ न होकर ‘नस्तालिक़’ (फ़ारसी-अरबी लिपि का एक प्रकार) है। यही एक प्रमुख बिन्दु है जहाँ उर्दू, हिंदी से अलग अपना अस्तित्व गढ़ती है क्योंकि अधिकतर विद्वान हिंदी और उर्दू में केवल लिपि का अंतर मानते हैं तथा यही कारण है कि ‘अमीर ख़ुसरो’ को हिंदी और उर्दू दोनों का पहला ग़ज़लकार माना जाता है। इसी कारण ‘ग़ज़ल’ भारत की भूमि पर कदम रखते ही उर्दू और हिंदी, दो धाराओं में बंट जाती है। यहाँ हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा पर बात करने से पहले उर्दू ग़ज़ल की परम्परा को संक्षिप्त रूप में देख लेना आवश्यक है।

5.3 ‘उर्दू ग़ज़ल’ की परम्परा

भारत की आम अवधारणा के विपरीत ‘उर्दू ग़ज़ल’ का जन्म उत्तर भारत में ना होकर दक्षिण भारत में बहमनी सल्तनत के समय हुआ। यह मध्यकालीन भारत के इतिहास का वह समय था जब खिलजी वंश के प्रमुख शासक ‘अलाउद्दीन खिलजी’ ने दक्षिण के राज्यों पर विजय प्राप्त की। और तुगलक वंश के प्रमुख शासक ‘मुहम्मद बिन तुगलक’ ने ‘दिल्ली’ के स्थान पर ‘दौलताबाद’ को अपनी राजधानी बनाया था। परिणाम स्वरूप दक्षिण भारत में मुस्लिम सत्ता स्थापित होने के बाद लोगों का उत्तर-दक्षिण और दक्षिण-उत्तर आना-जाना बढ़ा। जिसके कारण उत्तर भारत की मिली-जुली संस्कृति, दक्षिण भारत की संस्कृति से मिलती है। इस प्रकार ‘उर्दू भाषा’ जो उत्तर भारत में बाज़ार की भाषा से ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं थी, दक्षिण भारत में पहुँचकर साहित्यिक और सांस्कृतिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो जाती है। इसका श्रेय दक्षिण के ग़ज़लकारों या साहित्यकारों को जाता है।

¹ ब्लॉग नाम- ‘साहित्य शिल्पी’, आलेख- ‘ग़ज़ल का इतिहास और ग़ज़ल की भाषा’ (ग़ज़ल शिल्प और संरचना- स्थायी स्तंभ)- सतपाल ख्याल, 10/02/2021

इस प्रकार जब दक्षिण में पहुँचकर ‘उर्दू भाषा’ साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित होने लगी तो उसी के साथ ‘उर्दू ग़ज़ल’ की मौखिक परम्परा की शुरुआत भी होने लगी और इस तरह बाद में लिखित परम्परा देखने को मिलती है। हम ‘उर्दू ग़ज़ल’ की विकास परम्परा को मोटे तौर पर चार स्तरों पर बांटकर देख सकते हैं-

5.3.1 उर्दू ग़ज़ल का आदिकाल:-

यह स्पष्ट है कि उर्दू ग़ज़ल की आदिकालीन परम्परा का उद्गम दक्षिण भारत में हुआ। हालांकि कुछ विद्वान् उर्दू ग़ज़ल को अमीर खुसरो के कारण उत्तर भारत से जोड़कर देखते हैं जो बेबुनियाद लगता है। इन दोनों ने ‘हिंदुस्तानी’ भाषा को अपनाया जो उर्दू और हिंदी दोनों से बराबर मिलती है। दक्षिण भारत में मुस्लिम राज्य स्थापित हो जाने के बाद यहाँ इस्लाम और फ़ारसी का प्रभाव बढ़ने लगा क्योंकि सूफ़ी संतों ने इस्लाम के प्रसार-प्रचार के लिए फ़ारसी भाषा का प्रयोग किया। इस प्रक्रिया में लम्बा समय लगा। ये सूफ़ी संत पद्य रचना करते थे जिसके प्रभाव से दक्षिण में ‘उर्दू ग़ज़ल’ का बीज अंकुरित हुआ। उर्दू ग़ज़ल सबसे पहले ‘बीजापुर’ और ‘गोलकुंडा’ के शाही दरबारों में बादशाहों के द्वारा ही कही गई क्योंकि वे बादशाह के साथ-साथ शायर भी थे। उर्दू ग़ज़ल का प्रभाव तब और बढ़ गया जब औरंगज़ेब ने बीजापुर को गोलकुंडा में मिलाकर औरंगाबाद को राज्य का मुख्य केंद्र बनाया। जहाँ ग़ज़लकारों से महफ़िल सजती-संवरती थी। इसी औरंगाबाद में उर्दू ग़ज़ल के बाबा आदम कहे जाने वाले ‘शाह वल्लीउल्ला उर्फ़ वली दक्कनी वली’ का जन्म हुआ था। वे बीस वर्ष की उम्र में औरंगाबाद से अहमदाबाद आए जो उस समय शिक्षा और संस्कृति का बड़ा केंद्र था। वली सत्रहवीं शताब्दी में दिल्ली आए, जहाँ उनकी ग़ज़ल शैली की खूब तारीफ़ हुई। वली ने दक्षिण-उत्तर की परम्परा को मिलाने में सेतु का काम किया। वली के विषय में जानकी प्रसाद शर्मा लिखते हैं कि, “वली ने अपनी रचनाशीलता को बचाए रखा और किसी प्रभुता प्राप्त व्यक्ति की शान में कसीदे नहीं लिखे। उन्होंने अपनी शायरी को मनुष्य की कर्मशीलता, सहिष्णुता और रागात्मकता जैसी सद्गुणों को उभारने का वसीला बनाया।”¹

वली के बाद मुहम्मद कुली कुतुबशाह ‘मयानी’ का नाम दक्षिण की उर्दू ग़ज़ल में अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि वे बादशाह के साथ-साथ शायर भी थे और इनका उर्दू ग़ज़ल का पहला ‘दीवान’ (काव्य संग्रह) प्रकाशित हुआ था। दक्षिण के अतिरिक्त उत्तर भारत में दिल्ली-लखनऊ के ग़ज़लकार उर्दू भाषा में ग़ज़ल

¹ सं. जानकी प्रसाद शर्मा, उर्दू शायरी के बाबा आदम- वली दक्कनी, पृ.सं.- 6

कह रहे थे। प्रथम दौर की उर्दू ग़ज़ल में प्रेम, मोहब्बत, आशिकी और श्रृंगार तथा तसव्वुफ़(अध्यात्मवाद) आदि मुख्य विषय थे। कहीं-कहीं दीन-दुनिया को भी विषय बनाया गया है। उर्दू ग़ज़ल के आदिकाल के शाह वल्लीउल्ला उर्फ़ वली दक्कनी वली, मुहम्मद कुली कुतुबशाह ‘मयानी’, सैयद सिराजुद्दीन औरंगाबादी(सिराज), शाकिर नाजी, शाह मुबारक आबरू, ख़ान-ए-आरज़ू सिराजुद्दीन अली और हातिम शाह आदि उत्तर-दक्षिण के प्रमुख ग़ज़लकार हैं। यहाँ हम उर्दू ग़ज़ल के आदिकाल की कुछ ग़ज़लों के उदाहरण देख सकते हैं-

शाह वल्लीउल्ला उर्फ़ वली दक्कनी वली:-

“अयाँ है हर तरफ़ आलम में हुस्न-ए-बेहिजाब उसका
बग़ैर अज़ दीदा-ए-हैरां नहीं जग में निक्काब उसका
हुआ है मुझ पे शम्मे-बज़्म यकरंगी सूँ यूँ रौशन
कि हर ज़र्रे उपर ताबाँ है दायम आफ़ताब उसका”¹

मुहम्मद कुली कुतुब शाह:-

“ऐ नार है इस जग मने तुज मुख अजब रौशन चराग़
देखे नहीं अजनों कहीं इस धात का नोखन चराग़
मुल्ला है ख़िदमत-गार तिल धन मुख की मसज़ीद में
पलकाँ बतियाँ काजल धुआँ देता है लहे लौ बन चराग़”²

सैयद सिराजुद्दीन औरंगाबादी(सिराज):-

“नक्श-ए-कदम हुआ हूँ मोहब्बत की राह का
क्या दिल-कुशा मकाँ है मिरी सजदा-गाह का

¹ ज्ञान प्रकाश विवेक, हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा, पृ.सं.- 14

² KavitaKosh.org_muhammad quli qutab shah, 15/02/2021

गर्मी सीं आफ़ताब-ए-क़यामत की क्यूँ डरूँ
साया है मुझ कूँ सर्व-ए-क़यामत-पनाह का”¹

शाकिर नाज़ी:-

“ज़िक्र हर सुब्ह ओ शाम है तेरा
विर्द-ए-आशिक कूँ नाम है तेरा
मत कर आज़ाद दाम-ए-जुल्फ़ सीं दिल
बाल बाँधा गुलाम है तेरा।”²

शाह मुबारक ‘आबरू’:-

“फिरते थे दशत दशत दिवाने किधर गए
वे आशिक़ी के हाए ज़माने किधर गए।
मिज़गाँ तो तेज़-तर हैं व लेकिन ज़िगर कहाँ
तरक़श तो सब भरे हैं निशाने किधर गए।”³

ख़ान-ए-आरज़ू सिराजुद्दीन अली:-

“आता है सुबह उठ कर तेरी बराबरी को
क्या दिन लगे हैं देखो ख़ुर्शीद-ए-ख़ावरी को
दिल मारने का नुस्खा पहुँचा है आशिक़ों तक
क्या कोई जानता है इस कीमिया-गरी को।”⁴

¹ KavitaKosh.org_ siraj aurangabadi, 15/02/2021

² KavitaKosh.org_ shakir nazi, 15/02/2021

³ KavitaKosh.org_ shah Mubarak abroo, 15/02/2021

⁴ rekhta.org_ khan arazoo sirajuddin ali, 15/02/2021

हातिम शाह:-

“ऐ दिल न कर तू फ़िक्र पड़ेगा बला के हाथ

आईना हो के जा के लग अब दिलरूबा के हाथ

पैगाम दर्द-ए-दिल का मिरे गुंचा-लब सती

पहुँचा सकेगा कौन मगर दूँ सब के हाथ।”¹

5.3.2 उर्दू ग़ज़ल का मध्यकाल

उर्दू ग़ज़ल का दूसरा दौर राजनीतिक दृष्टिकोण से उथल-पुथल भरा रहा था। यह युग मुगल साम्राज्य के पतन का समय था और अंग्रेजी शासन का सूर्य सर के ऊपर चमक रहा था। अंग्रेजों ने चारों तरफ लूट-खसोट मचा रखी थी। इन्होंने धीरे-धीरे पूरे भारत पर एकाधिकार प्राप्त कर लिया था। इसी समय भारत पर नादिरशाह(1739) का आक्रमण हुआ जिससे शाहआलम की हुकूमत डगमगा गई थी। मराठों और सिक्खों का स्वतंत्रता संघर्ष भी हुआ। इस राजनैतिक उथल-पुथल के दौर में इन सब के बावजूद दिल्ली और लखनऊ में ग़ज़लों की महफिल बराबर सज रही थी लेकिन एक ऐसा भी समय आया जब मुगल साम्राज्य अपने पतन के रथ पर सवार हो चुका था तो ज्यादातर नामचीन शायरों ने लखनऊ और फैजाबाद की तरफ रुख कर लिया था। मीर भी दिल्ली छोड़ कर लखनऊ चले गये थे।

उर्दू ग़ज़ल का मध्यकाल, आदिकाल की तुलना में अधिक संपन्न है। इस दौर की ग़ज़ल पौधे से वृक्ष का रूप ग्रहण कर रही थी। वह वृक्ष के समान ही अपने अंदर विषय विविधता रूपी शाखाओं का विस्तार कर रही थी। उर्दू ग़ज़ल के मध्यकाल को ‘उर्दू ग़ज़ल का स्वर्णिम काल’ कहा जाता है। इस काल की एक महत्वपूर्ण बात यह है कि अधिकांश ग़ज़लकार सूफी पंथ से संबंध रखने वाले थे। इनकी ग़ज़लों पर सूफी विचारधारा का प्रभाव दिखाई देता है। इस समय उर्दू ग़ज़ल ने औरत या माशूका के वार्तालाप से आगे बढ़कर आम जनता के दुःख-दर्द और जीवन-जगत की समस्याओं के बारे में भी सोचना शुरू कर दिया था।

उर्दू ग़ज़ल के मध्यकाल को पूर्वार्ध और उत्तरार्ध में बाँटकर देख सकते हैं। पूर्वार्ध काल के प्रमुख ग़ज़लकारों में मीर तकी मीर, खाजा मीर ‘दर्द’, मिर्जा मुहम्मद रफ़ी ‘सौदा’, मीर गुलाम हसन, सैय्यद मुहम्मद

¹ rekhta.org_ hatim shah, 15/02/2021

मीर 'सोज', नजीर अकबराबादी और शेख गुलाम हमदानी 'मुसहफ़ी' आदि हैं। आलोचकों ने मीर, दर्द और सौदा को क्रमशः सूर्य, चाँद और तारिक(बुध ग्रह) आदि की उपमाएँ दी हैं। इन सभी ग़ज़लकारों ने उर्दू ग़ज़ल की उच्चकोटि की ग़ज़लें कहकर, उसमें नाज़ुकी और नज़ाकत लाने का महत्वपूर्ण कार्य किया। 'मीर' की ग़ज़ल में व्यक्त दर्द के कारण उन्हें 'दिल और दिल्ली का मर्सिया' कहा जाने लगा था। मीर की ग़ज़लों में सूफीवाद के प्रभाव के कारण 'उदात्तता' का गुण पाया जाता है। उनका दृष्टिकोण एक दार्शनिक के समान था। मीर के विषय में 'शम्सुर्रहमान फ़ारूकी ने 'मीर और मैं' लेख में लिखते हैं कि, "मीर बयकवक्त(एक ही समय) में सूफी भी और पापी भी, राजा भी और प्रजा भी, आशिक भी और अय्याश भी, कड़वे भी और मीठे भी, दानिशमंद भी और दीवाने भी- इंसानी तजुर्बे का कोई ऐसा पहलू नहीं है, जिसे मीर न जानते हों, जिसे वो अपने शेरों में बयान न कर सकते हों।"¹ उनकी ग़ज़ल में मुख्य रूप से दुःख, दर्द, पीड़ा, वेदना, घुटन और निराशा आदि का भाव है इसलिए शायद श्री कृष्णदास 'ज़िक्रे मीर' की भूमिका में उन्हें मूलतः प्रेम और करुणा का कवि कहते हैं। उनकी ग़ज़लें सीधे पाठक या श्रोता के दिल पर कब्ज़ा करती हैं क्योंकि उनकी भाषा हिंदी-उर्दू की सांझी विरासत होने के कारण सीधे जनमानस से जुड़ती है। इसके विषय में वे स्वयं लिखते कि, "मेरी शायरी वही समझ सकता है जिसे जामा मस्जिद की सीढियों पर बोली जाने वाली जुबान आती हो।"²

मीर के बाद दूसरे महत्वपूर्ण ग़ज़लकार 'दर्द' का जन्म सूफी परिवार में हुआ था। उनके जीवन और ग़ज़ल दोनों में सूफीवाद का सरल और सहज भाव लक्षित होता दिखाई देता है। वे कठिन से कठिन विषय को भी सरलता से अभिव्यक्त करते थे। इनकी ग़ज़ल में व्यक्त प्रेम का मीठा दर्द हृदय और दिमाग दोनों को शांति प्रदान करता है। उनकी ग़ज़ल में एक मनमौजीपन की प्रवृत्ति दिखाई देती है।

मीर और दर्द के समकालीन ग़ज़लकारों में दिल्ली के प्रसिद्ध शायरों में 'सौदा' का स्थान महत्वपूर्ण है। सौदा को कसीदों और तंज(व्यंग्य) के सबसे अच्छे शायरों में स्थान प्राप्त है। उन्होंने पहले फ़ारसी और बाद में उर्दू में लिखा था। वे ग़ज़ल को उच्च संस्कारित लोगों का हुनर मानते थे। सौदा के समकालीन ही दिल्ली के मीर गुलाम हसन हुए हैं। लेकिन बाद में दिल्ली के बिगड़ते माहौल को देखकर ये फैज़ाबाद चले गए थे। उन्हें और उनके पोते मीर बब्बर अली अनीस को 'मर्सिया' और 'मसनवी' में खूब प्रसिद्धि मिली। इनका अंदाज़ रंगीन और हुस्नपरस्त था। उपरोक्त चारों की तरह 'सोज' भी दिल्ली में पैदा हुए थे और बाद

¹ ज्ञान प्रकाश विवेक, हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा, पृ.सं.- 15

² ज्ञान प्रकाश विवेक, हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा, पृ.सं.- 15-16

में आपने फर्रुखाबाद और मुर्शिदाबाद होते हुए लखनऊ में अपना ठिकाना बनाया। इनकी गजलों का स्वर प्रेमप्रधान है जो आध्यात्मिक प्रेम न होकर भौतिक प्रेम अधिक है। अब कुछ गजलों के उदाहरण देख सकते हैं।

मीर तकी मीर:-

“हस्ती अपनी हबाब की सी है/ ये नुमाइश सराब की सी है
नाज़ुकी उस के लब की क्या कहिए/ पंखुड़ी इक गुलाब की सी है
चश्म-ए-दिल खोल इस भी आलम पर/ याँ की औक्रात ख्वाब की सी है
‘मीर’ उन नीम-बाज़ आँखों में/ सारी मस्ती शराब की सी है”¹

खाज़ा मीर ‘दर्द’:-

“तेरी गली में मैं न चलूँ और सबा चले
यूँ ही खुदा जो चाहे तो बंदे की क्या चले
किस की ये मौज-ए-हुस्न हुई जल्वा-गर कि यूँ
दरिया में जो हबाब थे आँखें छुपा चले”²

मिर्ज़ा मुहम्मद रफी ‘सौदा’:-

“जब यार ने उठा कर जुल्फों के बाल बाँधे
तब मैंने अपने दिल में लाखों खयाल बाँधे
दो दिन में हम तो रीझे ऐ वाए हाल उन का
गुजरे हैं जिन के दिल को याँ माह ओ साल बाँधे”³

¹ कुलदीप सलिल, बेस्ट ऑफ़ मीर, पृ.सं.- 28

² rekhta.org_khvaza meer dard, 15/02/2021

³ rekhta.org_meerza muhammad rafi sauda, 15/02/2021

मीर गुलाम हसन:-

“हम न निकहत हैं न गुल हैं जो महकते जावें
आग की तरह जिधर जावें दहकते जावें
जो कोई आवे है नजदीक ही बैठे है तिरे
हम कहाँ तक तिरे पहलू से सरकते जावें।”¹

सैय्यद मुहम्मद मीर ‘सोज’:-

मोहब्बत मुँह पे करना और दिल में बेवफ़ाई है
ये आईना यहाँ कहता है कैसी आश्राई है
ये आशिक़ अपने अपने अशक़ को तूफ़ान कहते हैं
जो सच पूछो तो ये गंगा हमारी ही खुदाई है”²

नजीर अकबराबादी:-

“जब मैं सुना कि यार का दिल मुझ से हट गया
सुनते ही इस के मेरा कलेजा उलट गया
मैं इश्क़ का जला हूँ मिरा कुछ नहीं इलाज
वो पेड़ क्या हरा हो जो जड़ से उखड़ गया।”³

उर्दू ग़ज़ल के मध्यकाल के उत्तरार्ध की बात करें तो इस दौर के प्रमुख ग़ज़लकारों में मिर्जा असदुल्लाह खां ‘ग़ालिब’, मोमिन खां ‘मोमिन’, शेख़ इब्राहिम ‘ज़ौक’ और नवाब मिर्जा खां ‘दाग़ देहलवी’ आदि हैं। इन्होंने ग़ज़ल की मध्यम पढ़ती लौ को प्रकाशमान बनाए रखा। मिर्जा असदुल्लाह खां ‘ग़ालिब’ उर्दू ग़ज़ल का ऐसा नामचीन नाम है जो ग़ज़ल नाम लेते ही जुबान पर अपने आप कुलमुलाने लगता है।

¹ rekhta.org_meer gulam hasan, 15/02/2021

² rekhta.or_meer soz, 15/02/2021

³ rekhta.or_nazeer akbrabadi, 15/02/2021

इनकी ग़ज़ल हर आमो-खास की जुबान पर चढ़ी हुई है। इनकी भाषा सरल और कठिन दोनों प्रकार की है। इन्होंने सरलता का गुण अपने पूर्व के महान ग़ज़लकार मीर से प्राप्त किया है। ग़ालिब समय के साथ-साथ भाषा से ऊपर उठ गए थे। ‘फ़िक्रें दुनिया में सर खपाता हूँ’ कहकर तो वे महान और मानववादी हो जाते हैं। वो एक विद्वान शायर थे। इस दौर के ग़ज़लकारों में सूफीमत के सिद्धान्तों के मिश्रण का प्रभाव अंतिम बार ग़ालिब के यहाँ प्रबल रूप से दिखता है। ज़ौक इनके उस्ताद शायरों में शुमार किए जाते हैं, जिनके अनेक शागिर्दों ने अदबी दुनिया में अच्छा मुक़ाम हासिल किया है।

मोमिन शायर होने के साथ-साथ हकीम भी थे और ग़ालिब और ज़ौक के समकालीन भी। वह हकीम, ज्योतिषी और शतरंज के खिलाड़ी भी थे। कहा जाता है कि मिर्जा ग़ालिब ने उनके शेर ‘तुम मेरे पास होते हो गोया/ जब कोई दूसरा नहीं होता’ पर अपना पूरा दीवान देने की बात कही थी। मोमिन उर्दू के उन चंद शायरों में हैं जिनकी बदीलत उर्दू ग़ज़ल की प्रसिद्धि और लोकप्रियता की बुलंदी छू सकी। मोमिन की ग़ज़ल के विषय में ‘रेख्ता’ के पेज पर लिखा है कि ‘मोमिन की ग़ज़ल तग़ज़ज़ुल की शोखी, शगुफ़्तगी, व्यंग्य और प्रतीकात्मकता की सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि कही जा सकती है।’ यहाँ ज़ौक को अपना गुरु मानने वाले लोकप्रिय ग़ज़लकार नवाब मिर्जा खां ‘दाग देहलवी’ महत्वपूर्ण हैं लेकिन उर्दू ग़ज़ल के इतिहास में उनका नाम थोड़े संकोच के साथ लिया जाता है। आलोचक मानते हैं कि दाग ने ग़ज़ल को सामंतों के दरबार से निकालकर तवायफ़ों के कोठों पर ले जाकर बैठा दिया। इस सब के बावजूद दाग ने उर्दू ग़ज़ल को लोकप्रियता दिलाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इस दौर की ग़ज़लों के कुछ उदाहरण देख सकते हैं-

मिर्जा असदुल्लाह खां ‘ग़ालिब’:-

“उनके देखे से, जो आ जाती है मुंह पर रौनक

वो समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है।”¹

“हजारों ख्वाहिशें ऐसी, कि हर ख्वाहिश पे दम निकले

बहुत निकले मेरे अरमान लेकिन फिर भी कम निकले।”²

“हम को मालूम है जन्नत की हक़ीक़त लेकिन

¹ मालिक राम, मिर्जा ग़ालिब, पृ.सं.- 51

² मालिक राम, मिर्जा ग़ालिब, पृ.सं.- 45

दिल के खुश रखने को 'ग़ालिब' ये खयाल अच्छा है”¹

मोमिन खां ‘मोमिन’:-

“वो जो हम में तुम में करार था तुम्हें याद हो के न याद हो
वही यानी वादा निबाह का तुम्हें याद हो के न याद हो
वो नये गिले वो शिकायतें वो मज़े-मज़े की हिकायतें
वो हर एक बात पे रूठना तुम्हें याद हो के न याद हो”²
“उम्र तो सारी क़टी इश्क़-ए-बुताँ में मोमिन
आखरी उम्र में क्या खाक मुसलमाँ होंगे।”³

शेख़ इब्राहिम ‘ज़ौक’

“‘ज़ौक’ जो मदरसे के बिगड़े हुए हैं मुल्ला
उन को मय-ख़ाने में ले आओ सँवर जाएँगे।”⁴
“कितने मुफ़लिस हो गए कितने तवंगर हो गए
खाक में जब मिल गए दोनों बराबर हो गए।”⁵
“नाज़ है गुल को नज़ाकत पे चमन में ऐ ‘ज़ौक’
देखे ही नहीं नाज़-ओ-नज़ाकत वाले।”⁶

नवाब मिर्ज़ा खां ‘दाग़ देहलवी’:-

¹ मालिक राम, मिर्ज़ा ग़ालिब, पृ.सं.- 41

² rekhta.org_momin khan momin, 15/02/2021

³ rekhta.org_momin khan momin, 15/02/2021

⁴ rekhta.org_shaikh Ibrahim zaunk, 15/02/2021

⁵ rekhta.org_shaikh Ibrahim zaunk, 15/02/2021

⁶ rekhta.org_shaikh Ibrahim zaunk, 15/02/2021

“तुम्हारे खत में नया इक सलाम किस का था
न था रक़ीब तो आख़िर वो नाम किस का था
वो क़त्ल कर के हर किसी से पूछते हैं
ये काम किस ने किया है ये काम किस का था
हर इक से कहते हैं क्या 'दाग़' बेवफ़ा निकला
ये पूछे इन से कोई वो गुलाम किस का था”¹

5.3.3 ‘उर्दू ग़ज़ल’ का आधुनिककाल

1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के बाद भारत की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों में परिवर्तन आने शुरू हो गए। जनता अपने अस्तित्व और अस्मिता को बचाने के लिए जागरूक होने लगी थी। इस समय को हिंदी साहित्य में ‘नवजागरण, पुनर्जागरण, पुनरुत्थान, नवजीवन, नवजागृति और नवोत्थान’ आदि नामों से जाना जाता है। इसके प्रभाव से भारतीय समाज और साहित्य में समाजिक और राजनीतिक आंदोलन, देशभक्त-राष्ट्रवादी चेतना का उत्थान और साहित्य-कला-संस्कृति आदि में अनूठी प्रगति देखने को मिलती है। इस दौरान समाज सुधारकों, साहित्यकारों और कलाकारों ने स्थापित असामाजिक परम्पराओं को अपने-अपने स्तर पर उखाड़ने या चुनौती देने का निरन्तर प्रयास किया। इस घटनाक्रम ने समग्र भारतीयों पर आधुनिकता की छाप छोड़ी जिसका प्रभाव उर्दू ग़ज़ल पर भी पड़ा लेकिन कुछ देर से। जहाँ से उर्दू ग़ज़ल ने ग़ियर बदलकर जीवन-मरण और दीन-दुनिया की समस्याओं और परिस्थितियों को विषय बनाना आरम्भ किया।

आधुनिक उर्दू ग़ज़ल के प्रमुख ग़ज़लकारों में मौलाना अलताफ़ हुसैन ‘हाली’, मौलाना मुहम्मद हुसैन ‘आज़ाद’, डॉ. इकबाल, सैय्यद अकबर हुसैन ‘अकबर इलाहाबादी’ सैय्यद फजलूल हसन ‘हसरत मोहानी’ और अली सिकंदर ‘जिगर मुरादाबादी’ आदि हैं। ज्ञान प्रकाश विवेक ‘हाली’ के विषय में लिखते हैं कि “हाली उर्दू ग़ज़ल के लिए एक तरह से हिंदी के भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हुए। यहीं से ग़ज़ल का मिजाज़ बदलता दिखाई देता है। यहीं से कथ्यगत तबदीलियों को भी रेखांकित किया जा सकता है बेशक उनका मुस्लसल ग़ज़ल का प्रयोग सफल नहीं हुआ। इसके बावजूद उन्होंने ग़ज़ल में विस्तार की मांग की और

¹ rekhta.org_navab mirza khan dagh dehlvi, 15/02/2021

इस विषयगत विस्तार से उनकी ग़ज़लें, नज़्मों के करीब जाती दिखाई दीं।”¹ इनकी ग़ज़लों में व्यंग्य का स्वर भी अधिक देखने को मिलता है। साहित्याचार्य पं. पद्मसिंह शर्मा ने हाली की तुलना रीतिकाल के श्रृंगारिक आचार्य कवि बिहारी से की है। हाली और आज़ाद को उर्दू ग़ज़ल आलोचकों में गिना जाता है। आज़ाद को उर्दू ग़ज़ल की आलोचना को नया आयाम देने वाला माना जाता है। इन्होंने ‘आबेहयात’ उर्दू का इतिहास लिखा है। वे उत्तर भारत के पहले उर्दू अख़बार ‘देहली उर्दू अख़बार’ के सम्पादक भी थे।

डॉ. इकबाल उर्दू ग़ज़ल के मध्यकाल और आधुनिक काल के दोयम को मिलाने वाले ग़ज़लकार हैं। हाली ने उर्दू ग़ज़ल के जिस विस्तार को अधूरा छोड़ा था उसे इन्होंने पूरा किया। डॉ. इकबाल के विषय में ‘डॉ. वज़ीर आगा लिखते हैं कि, “इकबाल ने ग़ज़ल को एक विशिष्ट जीवन दर्शन और दृष्टिकोण प्रस्तुत करने के लिए प्रयुक्त किया। इकबाल ने विषय को ग़ज़ल के स्पर्श से एक सांकेतिकता प्रदान की तो ग़ज़ल में एक नई शैली-सी उभर आई। ‘बाले-जिब्रील (इकबाल का काव्य संग्रह) तक आते-आते उनकी शैली में क्रान्तिकारी परिवर्तन आ गया”। गुलज़ार देहलवी इनके विषय में लिखते हैं कि ‘मीर के बाद ग़ालिब ओ इक़बाल/ इक सदा, इक सदी में गुज़री है’।

अकबर इलाहाबादी आम जनता के ग़ज़लकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। वे दमदार शायर के साथ-साथ सरकारी आदमी भी थे। उनकी ग़ज़लों में मानवता और सामाजिक विडम्बनाओं-विसंगतियों का चित्रण देखने को मिलता है। आज बात होती है नारी सशक्तिकरण की। इस विषय में अकबर इलाहाबादी सौ-सवा-सौ साल पहले सोच रहे थे। हसरत मोहानी साहित्यकार, स्वतंत्रता सेनानी, शायर, पत्रकार, इस्लामी विद्वान, समाजसेवक और आज़ादी के सिपाही आदि सभी थे। वे मुस्लिम-हिन्दू के पक्षकार थे। उन्होंने सर्वप्रथम ‘इन्क़लाब जिंदाबाद’ का नारा लिखा। जिस नारे को बाद में भगतसिंह ने बोलकर अमर किया। इन्होंने अपनी ग़ज़लों में सांसारिक प्रेम के जीवित चित्र उकेरें हैं। ये मोमिन की परम्परा के ग़ज़लकार हैं।

जिगर मुरादाबादी प्रसिद्ध उर्दू कवि और उर्दू ग़ज़ल के प्रमुख हस्ताक्षरों में से एक हैं। उनके प्रसिद्ध ग़ज़ल संग्रह ‘आतिश-ए-गुल’ के लिए उन्हें 1958 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से नवाज़ा गया। इनकी ग़ज़लों पर सूफीवाद का प्रभाव था। इनकी ग़ज़लों में संगीतात्मकता का गुण होने के कारण वे अधिक लोकप्रिय हुईं। इस युग के प्रमुख ग़ज़लकारों की ग़ज़लों के कुछ उदाहरण देख सकते हैं-

मौलाना अलताफ़ हुसैन ‘हाली’:-

¹ ज्ञान प्रकाश विवेक, हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा, पृ.सं.- 23

“हक़ वफ़ा के जो हम जताने लगे/ आप कुछ कह के मुस्कुराने लगे
डर है मेरी ज़बाँ न खुल जाए/ अब वो बातें बहुत बनाने लगे
जान बचती नज़र नहीं आती/ ग़ैर उल्फ़त बहुत जताने लगे
तुम को करना पड़ेगा उज़्र-ए-जफ़ा/ हम अगर दर्द-ए-दिल सुनाने लगे”¹

डॉ. इकबाल:-

“सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोसिताँ हमारा
हम बुलबुलें हैं इसकी यह गुलसिताँ हमारा
गुर्बत में हों अगर हम, रहता है दिल वतन में
समझो वहीं हमें भी दिल हो जहाँ हमारा
परबत वह सबसे ऊँचा, हम्साया आसमाँ का
वह संतरी हमारा, वह पासबाँ हमारा
गोदी में खेलती हैं इसकी हज़ारों नदियाँ
गुलशन है जिनके दम से रश्क-ए-जनाँ हमारा!”²

सैय्यद अकबर हुसैन ‘अकबर इलाहाबादी’:-

“दुनिया में हूँ दुनिया का तलबगार नहीं हूँ
बाज़ार से गुज़रा हूँ ख़रीदार नहीं हूँ”³

सैय्यद फजलूल हसन ‘हसरत मोहानी’:-

“वो चुप हो गए मुझ से क्या कहते कहते

¹ rekhta.org_ altaf husain hali, 15/02/2021

² सं. सुरेश सलिल, इकबाल की ज़िन्दगी और शायरी, पृ.सं.- 19

³ rekhta.org_akbar alahabadi, 15/02/2021

कि दिल रह गया मुद्दा कहते कहते

मिरा इश्क भी खुद-ग़रज़ हो चला है

तेरे हुस्न को बेवफ़ा कहते कहते ”¹

जिगर मुरादाबादी’:-

“आदमी आदमी से मिलता है/ दिल मगर कम किसी से मिलता है

भूल जाता हूँ मैं सितम उसके/ वो कुछ इस सादगी से मिलता है

आज क्या बात है कि फूलों का/ रंग तेरी हँसी से मिलता है

कारोबार-ए-जहाँ सँवरते हैं/ होश जब बे-खुदी से मिलता है ।”²

5.3.4 उर्दू ग़ज़ल स्वतंत्रता के बाद

20वीं शताब्दी के दूसरे दशक के अंतिम समय से, गाँधी और अन्य लोगों के नेतृत्व में हो रहे स्वतंत्रता आंदोलनों में तेजी आती है। भारतीय परिस्थितियों में जलियांवाला नर संहार, असहयोग आन्दोलन, साईमन कमीशन बहिष्कार, लालालाजपत राय की शहादत, नागरिक अवज्ञा आंदोलन, भगत सिंह की शहादत, डांडी पैदल मार्च और भारत छोड़ो आंदोलन आदि कुछ प्रमुख घटनाओं के कारण परिवर्तन आता है जिसका प्रभाव उर्दू ग़ज़ल पर भी पड़ता है। इन परिस्थितियों ने उर्दू ग़ज़ल को रघुपति सहाय ‘फ़िराक गोरखपुरी’, फैज़ अहमद फैज़, और शब्बीर हसन खां ‘जोश मलियाबादी’ आदि जैसे प्रगतिशील विचारधारा के ग़ज़लकार दिए। इन्होंने उर्दू ग़ज़ल को राष्ट्रीयता की भावना, देश-प्रेम, देशहित, सामाजिक सुधार और असामाजिक परम्पराओं की आलोचना आदि विषयों से ऊपर उठाकर सीधे तौर पर जन जीवन और समाज केन्द्रित समस्याओं तथा समसामयिक मुद्दों से रूबरू कराया। यहाँ उर्दू ग़ज़ल सरकारी और गैरसरकारी व्यवस्था और सत्ता को सीधे चुनौती देती है।

फैज़ पाकिस्तानी होने के साथ भारतीय भी थे और यह भारतीयता जीवन और लेखन दोनों में स्पष्ट झलकती है। वे तरक्कीपसंद लेखन के लिए जाने जाते हैं। उनका लेखन सीमा के दोनों ओर पसंद किया

¹ rekhta.org_hasrat muhani, 15/02/2021

² rekhta.org_jigar muradabadi, 15/02/2021

जाता है। वे स्वतंत्रता पूर्व और बाद की उर्दू ग़ज़ल के बीच समन्वय के रंग भरने वाले प्रमुख ग़ज़लकार हैं। वे कुछ नया नहीं करते हैं लेकिन पुराने मुहावरों को नये रंग के साथ प्रस्तुत करते हैं। फैज़ के विषय में ज्ञान प्रकाश विवेक लिखते हैं कि, “फैज़ अहमद फैज़ आधुनिक काल के उन चंद बड़े शायरों में से हैं, जिन्होंने काव्य-कला में नए प्रयोग तो किए लेकिन उनकी बुनियाद पुराने प्रयोगों पर रखी और इस मूल तथ्य को कभी नहीं भुलाया कि हर नई चीज़ पुरानी कोख से जन्म लेती है।”¹

फ़िराक उर्दू का एक बड़ा नाम है। वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अंग्रेजी विभाग में अध्यापक थे। उनके साहित्यिक योगदान के लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार, ज्ञानपीठ पुरस्कार, सोवियत लैंड नेहरू अवार्ड और पद्म भूषण आदि पुरस्कारों से नवाज़ा गया था। उन्होंने अपने लेखन की शुरुआत ग़ज़ल से की। उनकी शुरुआती ग़ज़लों पर ‘दाग’ का प्रभाव दिखाई देता है। लेकिन बाद में उन्होंने दाग की ग़ज़लों से अपनी असहमति दर्ज की। उनकी ग़ज़लों में प्रकृति, लोकजीवन, के साथ-साथ सामाजिक दुःख-दर्द-पीड़ा की अभिव्यक्ति हुई है। उन्होंने पुरानी परम्परा पर चलते हुए उर्दू ग़ज़ल के कथ्यगत विषयों में विस्तार किया और भारतीय संस्कृति का सहारा लेकर उसे भारतीयता प्रदान की। प्रो. शमीम हनफ़ी फ़िराक की शायरी के विषय में लिखते हैं कि, “फ़िराक की शायरी का एक हिस्सा ऐसा है जिस पर प्राचीन भारत की परछाइयां बहुत लम्बी, बहुत गहरी हैं।”² वे ग़ज़ल में जीवन मूल्यों के पक्षपाती थे।

‘जोश’ उर्दू ग़ज़ल के क्रांतिकारी ग़ज़लकार थे। उन्हें अंग्रेजी शासन काल में ‘शायरे-इन्कलाब’ उपाधि दी गई थी। उनकी ग़ज़लों के जलते शब्द दिलों में हलचल मचा देते थे। उनकी ग़ज़लों में व्यवस्था विरोध, मुल्ला-मौलवी को फटकार और प्यार-मौहब्बत सब एक साथ हैं। इनके विषय में कहा जाता है कि जोश इधर के हुए ना उधर के, क्योंकि आज़ादी के बाद ये पाकिस्तान चले गए थे जहाँ इनको भारतीय जासूस कहा गया। अब इन तीनों तरक्कीपसंद शायरों के ग़ज़लों के उदाहरण देखते हैं-

रघुपति सहाय ‘फ़िराक गोरखपुरी’:-

“बहुत पहले से उन क़दमों की आहट जान लेते हैं

तुझे ऐ ज़िंदगी हम दूर से पहचान लेते हैं

¹ ज्ञान प्रकाश विवेक, हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा, पृ.सं.- 25

² ज्ञान प्रकाश विवेक, हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा, पृ.सं.- 27

तबीयत अपनी घबराती है जब सुनसान रातों में
हम ऐसे भी तेरी यादों की चादर तान लेते हैं।”¹

फैज़ अहमद फैज़:-

“शाम-ए-फ़िराक़ अब न पूछ आई और आ के टल गई
दिल था कि फिर बहल गया जाँ थी कि फिर सँभल गई
बज़्म-ए-ख़याल में तिरे हुस्न की शम्‌अ जल गई
दर्द का चाँद बुझ गया हिज़्र की रात ढल गई
जब तुझे याद कर लिया सुब्ह महक महक उठी
जब तिरा ग़म जगा लिया रात मचल मचल गई।”²

शब्बीर हसन खां ‘जोश मलियाबादी’:-

“उठो वह सुबह का गुर्फा खुला जंजीर-शब टूटी
वह देखो पौ फटी, गुंछे खिले, पहली किरन फूटी
उठो, चौंको, बढ़ो मुंह हाथ धो, आंखों को मल डालो
हवाए - इंक़िलाब आने को है हिन्दोस्तां वालो”³

उपरोक्त शायरों ने अपने लेखन की शुरुआत स्वतंत्रता से पूर्व की और स्वतंत्रता के बाद भी, ये सुचारू रूप से लेखन करते रहे। इन्होंने स्वतंत्रता के बाद के अपने अनुज शायरों को रास्ता दिखाने का काम किया और इस साठोत्तरी उर्दू ग़ज़ल रूपी रास्ते पर वे उन्हें साथ लेकर आगे बढ़े। मैंने यहाँ पहले उपरोक्त शायरों के विषय में जानना आवश्यक समझा है क्योंकि इन्हीं के शुरुआती लेखन पर साठोत्तरी उर्दू ग़ज़ल की नींव रखी है।

¹ सं. रमेशचन्द्र द्विवेदी, हजार शेर फ़िराक के, पृ.सं.- 23

² rekhta.org_faiz ahmad faiz, 15/02/2021

³ rekhta.org_shabbir hasan khan ‘josh maliyabadi’, 15/02/2021

स्वतंत्रता से पहले शायरों ने जिस आशा और उम्मीद के साथ ग़ज़ल लिखी थीं, वे सन साठ तक आते-आते धूमिल हो गईं। सरकारें जनता की मूलभूत ज़रूरतों को पूरा करने में नाकाम हो रही थीं। आम जनता के साथ-साथ देश का बौद्धिक वर्ग भी सपनों के टूट जाने से चिंतित और परेशान था इसलिए निराश और क्षुब्ध मन से 'फैज़' लिखते हैं कि 'ये दाग़ दाग़ उजाला ये शब-गज़ीदा सहर/ वो इंतज़ार था जिसका ये वो सहर तो नहीं'। इसी के कारण साठोत्तरी ग़ज़ल में जन-जीवन से जुड़े प्रश्नों, मुद्दों और समस्याओं आदि को उसी की भाषा में अभिव्यक्त किया गया है। और इसके लिए वह पुराने प्रतीकों और बिम्बों को छोड़कर, दैनिक जीवन से प्रतीकों और बिम्बों को ग्रहण करती है। इस समय की उर्दू और हिंदी ग़ज़लों की भाषा समान हो जाती है या यूँ कहें कि हिन्दुस्तानी भाषा हो जाती है। साठोत्तरी उर्दू ग़ज़ल में अपनी पूर्ववर्ती ग़ज़लों की तुलना में विषय और भाषा दोनों स्तरों पर अधिक विस्तार हुआ है। शायरों ने दीन-दुनिया का कोई ऐसा विषय नहीं छोड़ा है जिस पर अपनी लेखनी नहीं चलाई हो। अब हम साठोत्तरी ग़ज़ल के प्रमुख शायरों की ग़ज़लों के उदाहरण देखते हैं-

नासिर काज़मी:-

“मुसलसल बेकली दिल को रही है
मगर जीने की सूरत तो रही है
मैं क्यों फिरता हूँ तन्हा मारा-मारा
यह बस्ती चैन से क्यों सो रही है
हमारे घर की दीवारों पे 'नासिर'
उदासी बाल खोले सो रही है”¹

अहमद फराज़:-

“अपनी ही आवाज़ को बे-शक कान में रखना
लेकिन शहर की ख़ामोशी भी ध्यान में रखना

¹ सं. ओमप्रकाश शर्मा, ग़ज़लें सरहद पार से, दिल्ली, पृ.सं.- 90

कल तारीख यक्रीनन खुद को दोहराएगी
आज के इक-इक मंजर को पहचान में रखना”¹

कतील शिफाई:-

“पत्थर उसे न जान, पिघलता भी देख उसे
खुद अपने तजुर्बात में जलता भी देख उसे
वो सिर्फ जिस्म ही नहीं, एहसास भी तो है
रातों में चाँद बन के निकलता भी देख उसे
वो धड़कनों के शोर से भी मुतमईन न था
अब चन्द आहटों से बहलता भी देख उसे”²

अखलाक मोहम्मद खान ‘शहरयार’:-

“सियाह रात नहीं लेती नाम ढलने का
यही तो वक़्त है सूरज तिरे निकलने का”³
“सीने में जलन आँखों में तूफ़ान सा क्यों है
इस शहर में हर शख्स परेशान सा क्यों है”⁴

बशीर बद्र:-

“मैं तमाम तारे उठा-उठा के गरीब लोगों में बाँट दूँ
कभी एक रात वो आसमां का निज़ाम दे मिरे हाथ में”⁵
“लोग टूट जाते हैं एक घर बनाने में

¹ सं. ओमप्रकाश शर्मा, गज़लें सरहद पार से, दिल्ली, पृ.सं.- 39

² सं. ओमप्रकाश शर्मा, गज़लें सरहद पार से, दिल्ली, पृ.सं.- 62

³ rekhta.org_akhlak mohammad khan ‘shaharyaar’, 15/02/2021

⁴ rekhta.org_akhlak mohammad khan ‘shaharyaar’, 15/02/2021

⁵ चुनिंदा अशआर बशीर बद्र, पृ.सं.- 16

तुम तरस नहीं खाते बस्तियाँ जलाने में”¹
“खुदा की इतनी बड़ी काइनात में मैंने
बस एक शख्स को माँगा मुझे वही न मिला”²

निदा फाज़ली:-

“हर आदमी में होते हैं दस बीस आदमी
जिस को भी देखना हो कई बार देखना”³
“कोई हिन्दू कोई मुस्लिम कोई ईसाई है
सब ने इंसान न बनने की क्रसम खाई है”⁴

जौन एलिया:-

“अपना रिश्ता ज़मीं से ही रखो
कुछ नहीं आसमान में रक्खा”⁵

राहत इन्दौरी:-

“सिर्फ खंजर ही नहीं आँखों में पानी चाहिये
ऐ खुदा, दुश्मन भी मुझको खानदानी चाहिये
मैंने अपनी खुशक आँखों से लहू छलका दिया
इक समन्दर कह रहा था मुझको पानी चाहियो”⁶

मुनव्वर राना:-

“किसी को घर मिला हिस्से में या कोई दुकाँ आई

¹ चुनिंदा अशआर बशीर बद्र, पृ.सं.- 20

² चुनिंदा अशआर बशीर बद्र, पृ.सं.- 25

³ rekhta.org_nida fazli, 15/02/2021

⁴ rekhta.org_nida fazli, 15/02/2021

⁵ rekhta.org_jaun eliya, 15/02/2021

⁶ राहत इंदौरी, नाराज़, गज़ल- 50

मैं घर में सब से छोटा था मिरे हिस्से में माँ आई¹

“सो जाते हैं फुटपाथ पे अखबार बिछा कर

मजदूर कभी नींद की गोली नहीं खाते”²

नज़ीर बनारसी:-

“रहिए अगर वतन में तो इन्साँ की शान से

वरना कफन उठाइए, उठिए जहान से

धड़कन है दिल की सुनिए करीब आ के कान से

यह शब्द वह नहीं जो अदा हो जबान से।”³

परवीन शाकिर:-

“जिन्दगी से नज़र मिलाओ कभी/ हार के बाद मुसकुराओं कभी

तर्के उल्फत के बाद उम्मीदे वफ़ा/ रेत पर चल सकी है नाव कभी

शाख से मौजे-गुल थमी है कहीं/ हाथ में रुक सका है बहाव कभी

बारिशें क्या जमीं के दुःख बांटे/ आंसुओं से बुझा अलाब कभी।”⁴

इस प्रकार हमने यहाँ उर्दू ग़ज़ल की सम्पन्न और विकसित तथा गौरवशाली परम्परा को संक्षिप्त रूप से देखा है। वह किस प्रकार रेगिस्तान से उपमहाद्वीप में आकर विकसित हुई और साथ ही उसे काल विशेष के मुख्य शायरों की ग़ज़लों के उदाहरणों से समझने का प्रयास किया है। अब हम आगे हिंदी ग़ज़ल की परम्परा को देखेंगे।

5.4. हिंदी ग़ज़ल की परम्परा

¹ rekhta.org_munnwar rana, 15/02/2021

² rekhta.org_munnwar rana, 15/02/2021

³ rekhta.org_nazeer banarsi, 15/02/2021

⁴ सं. ओमप्रकाश शर्मा, ग़ज़लें सरहद पार से, पृ.सं.- 102

ग़ज़ल हिंदी में ही नहीं, बल्कि भारत में भी आयातित विधा है। ग़ज़ल अरबी, फारसी और उर्दू भाषाओं से होते हुए हिंदी भाषा में आई है। जब ग़ज़ल ने भारत की पावन भूमि पर कदम रखा तो वह फारसी भाषा के रंग रूप से सुसज्जित थी लेकिन बाद में धीरे-धीरे फारसी का रंग फीका और भारतीयता का रंग चढ़ना शुरू हुआ। शुरुआत में फारसी के कवि अमीर खुसरो और दक्खनी हिंदी के वली तथा अन्य शायरों ने ग़ज़ल को भारतीयता प्रदान की। इन्होंने भारत की सरजमीं पर ग़ज़ल का अंकुरित पौधा लगाया। दक्खनी के शायर वली ने ग़ज़ल की इस परम्परा को उत्तर भारत से जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य किया। यह वह समय था जब भारत में मुस्लिम साम्राज्य स्थापित हो रहा था। फारसी भाषा और भारतीय भाषाओं के मेल से एक नई 'उर्दू भाषा' का जन्म हुआ। जिसने आगे राजभाषा का दर्जा प्राप्त किया और इसके बाद पूरे देश में फैल गई। इसी उर्दू भाषा के शायरों ने ग़ज़ल रूपी पौधे का पालन-पोषण करके इसे विशाल वृक्ष का आकार प्रदान किया जिसका परिणाम यह हुआ कि उर्दू ग़ज़ल ने अपना 'दिन दौगुना, रात चौगुना' विकास किया और ग़ज़ल उर्दू भाषा की प्रमुख विधा के रूप में स्थापित होने लगी। आम जनता की जुबान पर उर्दू की ग़ज़लें थिरकने लगीं। उर्दू ग़ज़ल की बढ़ती लोकप्रियता के कारण हिंदी के कवियों का ध्यान इसकी ओर आकर्षित हुआ। ग़ज़ल की अभिव्यक्ति की क्षमता, प्रभावोत्पादकता, मौलिकता और अन्दाजे-बयां आदि को देखते हुए इसे हिंदी के कवियों ने अपनी उपमाओं-उपमानों, प्रतीकों और बिम्बों आदि के साथ अपनाया। इस प्रकार हिंदी को एक नई विधा मिली। हिंदी के कवियों ने शुरुआत में उर्दू ग़ज़ल के समान अपनी ग़ज़लों के केंद्र में प्रेम और मोहब्बत को रखा लेकिन आगे चलकर हिंदी के ग़ज़लकारों ने ग़ज़ल को सामाजिक सरोकारों से जोड़कर यह साबित कर दिया कि ग़ज़ल विधा में दीन-दुनिया के किसी भी विषय को उठाया जा सकता है। इसके लिए रचनाकारों ने उस भाषा को अपनाया, जो आम-आदमी की भाषा है और जिसे आम आदमी समझता है, बोलता है, सुनता है, पढ़ता है, जीता है।

जब हम हिंदी ग़ज़ल की परम्परा की शुरुआत को खोजने के लिए इतिहास को खंगालना शुरू करते हैं तो हमें उसकी जड़ें, उर्दू ग़ज़ल की जड़ों से मिली हुई दिखाई देती हैं। क्योंकि जहाँ उर्दू ग़ज़ल की परम्परा अमीर खुसरो से शुरू होती है तो वहीं हिंदी के सभी इतिहासकार हिंदी खड़ी बोली के साहित्य की शुरुआत अमीर खुसरो से ही मानते हैं। इसलिए कुछ विद्वान् हिंदी ग़ज़ल की शुरुआत अमीर खुसरो से मानने के पक्ष में हैं तो कुछ उन्हें फारसी-उर्दू का कवि मानते हैं। लेकिन वे भी उनके हिंदी साहित्य के योगदान को नकारते नहीं हैं। वे अपना तर्क देते हैं कि उनके द्वारा लिखी गई ग़ज़लें फारसी-उर्दू भाषा में हैं जो तत्कालीन हिंदी के बहुत ज्यादा करीब लगती हैं। इन सब के बावजूद अप्रमाणिक ही सही पर अमीर खुसरो को हिंदी ग़ज़ल

का पहला ग़ज़लकार कहा जा सकता है। अतः हम कह सकते हैं कि हिंदी ग़ज़ल की परम्परा अमीर खुसरो से शुरू होकर वर्तमान समय तक पहुँची है। यहाँ हिंदी ग़ज़ल के विकास के अध्ययन की दृष्टि को निम्न वर्गों में बाँटकर अध्ययन किया जा सकता है-

5.4.1 भारतेन्दु पूर्व हिंदी ग़ज़ल (हिंदी ग़ज़ल का आदिकाल)

भारतेन्दु पूर्व युग में हिंदी ग़ज़ल की परम्परा के केंद्र बिंदु अमीर खुसरो हैं। ये मुख्यतः फारसी के कवि थे लेकिन इनका योगदान विद्वानों द्वारा उर्दू और हिंदी में भी स्वीकार किया गया है। इनकी मुकरियाँ, दोहे, गीत, पहेलियाँ और ग़ज़लें आदि प्रसिद्ध हैं। इनकी ग़ज़लें भारत में ग़ज़ल के विकास में मील का पत्थर साबित हुई हैं चाहे वे फारसी, उर्दू और हिंदी आदि में से किसी भी भाषा की क्यों ना रही हों? इनकी ऐसी ग़ज़लों की संख्या नगण्य है जिनपर तत्कालीन हिंदी भाषा या बोली का प्रभाव दिखाई देता है। इनकी भाषा में फारसी भाषा का भारतीयकरण किया गया है। ये बहुत प्रतिभा के धनी व्यक्तित्व थे और साहित्य के अतिरिक्त वाद्ययंत्र बजाने में पारंगत थे। अमीर खुसरो की निम्नलिखित ग़ज़लों को उदाहरण स्वरूप देख सकते हैं-

“जब यार देखा नैन भर, दिल की गई चिंता उतर

ऐसा नहीं कोई अजब राखे उसे समझाय कर

खुसरो कहै बातें ग़ज़ब, दिल में न लावे कुछ अजब

कुदरत खुदा की है अजब, जब जिव दिया गुल लाय कर”¹

“ज़िहाल-ए मिस्कीं मकुन तगाफ़ुल, दुराये नैना बनाये बतियां

कि ताब-ए-हिजरां नदारम ऐ जान, न लेहो काहे लगाये छतियां

शबां-ए-हिजरां दरज़ चूं जुल्फ़ वा रोज़-ए-वस्लत चो उम्र कोताह,

सखि पिया को जो मैं न देखूं तो कैसे काटूं अंधेरी रतियां”²

¹ बालस्वरूप राही, राही को समझाए कौन, पृ.सं- 17

² विश्वनाथ त्रिपठी, हिंदी साहित्य का सरल इतिहास, पृ.सं.- 9

अमीर खुसरो की उपरोक्त ग़ज़लों को देखकर कहा जा सकता है कि ये ग़ज़ल व्याकरणिक कसौटी पर खरी उतरती हैं। और इनकी ग़ज़लों का मिजाज़, भाषागत लचीलापन और शब्द चयन आदि बहुत सुंदर है। इनकी भाषा में फारसी और हिंदी भाषा का अनूठा मिश्रण देखने को मिलता है जिसकी बदौलत ये हिंदी के प्रथम ग़ज़लकार कहलाते हैं।

हिंदी ग़ज़ल की परम्परा में अमीर खुसरो के बाद भक्तिकाल के संत सिरमणि कबीर का नाम जुड़ता है। ये अपनी फक्कड़पन, घुमक्कड़पन, खंडन-मंडन की प्रवृत्ति और सपाट बयानबाजी के लिए विख्यात हैं। इनकी यह प्रवृत्ति ग़ज़लों में भी देखने को मिलती है। कबीर की निम्न ग़ज़ल को देख सकते हैं-

“हमन है इश्क मस्ताना, हमन को होशियारी क्या
रहें आजाद या जग से, हमन को दुनिया से यारी क्या
जो बिछुड़े हैं पियारे से, भटकते दर-ब-दर फिरते,
हमारा यार है हम में हमन को इंतजारी क्या
कबीरा इश्क का माता, दुई को दूर कर दिल से,
जो चलना राह नाज़ुक है, हमन सिर बोझ भारी क्या”¹

अमीर खुसरो की ग़ज़लों की तुलना में कबीर की ग़ज़ल हिंदी के ज्यादा करीब है। लेकिन इनकी संख्या ज्यादा नहीं है। कबीर ने अपनी उपरोक्त ग़ज़ल में रदीफ़-काफ़िया का ध्यान बराबर रखा है।

कबीर के बाद हिंदी ग़ज़ल की धीमी पड़ती धारा को प्यारेलाल शौकी ने सम्भालने का प्रयास किया। इनकी ग़ज़लों में सूफियों का अलौकिक प्रेम, निस्वार्थ भक्ति का प्रभाव दिखाई देता है। इनकी भाषा कबीर के समान प्रतीत होती है। इन्होंने भी बाह्य आडम्बरो और दिखावे पर चोट की है। प्यारेलाल शौकी की निम्न ग़ज़ल को उदाहरण स्वरूप देख सकते हैं-

“जिन प्रेम रस चाखा नहीं, अमृत पिया तो क्या हुआ
जिन इश्क में सर ना दिया, सो जग जिया तो क्या हुआ

¹ हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ.सं.- 127

ताबीज औ तूमार में सारी उमर जाया किसी
सीखे मगर हीले घने, मुल्ला हुआ तो क्या हुआ
जोगी न जंगम से बड़ा, रंग लाल कपड़े पहन के
वाकिफ़ नहीं इस हाल से कपड़ रंगा तो क्या हुआ”¹

प्यारेलाल शौखी के बाद हिंदी ग़ज़ल में कोई ग़ज़लकार नहीं दिखाई देता है। एक लम्बे समय के बाद भारतेन्दु हरीशचंद्र के पिता बाबू गिरिधरदास गोपाल की कुछ ग़ज़लें दिखती हैं। कहा जाता है कि इनका उर्दू और हिंदी पर समान अधिकार प्राप्त था। उर्दू के ज्ञान के कारण ही इनका झुकाव ग़ज़ल की तरफ़ हुआ था। इनकी निम्न ग़ज़ल पर उर्दू का प्रभाव स्पष्ट दिखता है-

“हम भी उस बेपीर के आशिक हैं कहलाने लगे।
आज हम मजनूँ- खुमारी में गिने जाने लगे।
हो गया मुझ से खफ़ा वह याद अब आता नहीं।
जब से सब बेपीर आकर उसे बहकाने लगे।”²

इस प्रकार कह सकते हैं कि हिंदी ग़ज़ल की शुरुआती परम्परा ज्यादा समृद्ध नहीं थी। इस काल में हिंदी के अधिक ग़ज़लकार भी नहीं हुए हैं। हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि जिस अमीर खुसरों को हम हिंदी ग़ज़ल का प्रारम्भिक मानते हैं वह फारसी का पहले और बाद में हिंदी और उर्दू का ग़ज़लकार है। लेकिन हिंदी के शुरुआती लेखन में उनके योगदान को चाहकर भी नकारा नहीं जा सकता है। यदि कबीर की बात करें कि उन्हें ग़ज़लकार माने या नहीं, तो इसका स्पष्ट जबाब देते हुए ज्ञानप्रकाश विवेक लिखते हैं कि, “बहरहाल हिंदी ग़ज़ल के कुछेक विद्वान्, आलोचक और ग़ज़लकार कबीर को हिंदी का पहला ग़ज़लकार मानते हैं। यानी हिंदी ग़ज़ल की परम्परा कबीर से जोड़ते हैं। कबीर के साथ यह सरासर नाइंसाफी है। कबीर क्रांतिकारी संत कवि थे। उनकी वाणी में ओज था। खरापन किसी जादू की भांति और अक्खड़पन, फक्कड़ संत कवियों जैसा। भाषागत खुरदरापन, उनकी रचनाओं को शक्ति देता है। उन्हें कलावादी होने से

¹ बालस्वरूप राही, राही को समझाए कौन, पृ.सं- 19

² बालस्वरूप राही, राही को समझाए कौन, पृ.सं- 19

बचाता भी है। ग़ज़ल का अपना रूप है। यानि वह कलावादी विधा है। कबीर की फितरत में नहीं था कि वे ग़ज़ल की नफ़ासत को बोझ की तरह ढोते। उन्होंने दो-तीन ग़ज़लें, फकीराना मौज में लिख दी होंगी।”¹

प्यारेलाल शौखी की बात करें तो उनकी भी दो-तीन ग़ज़लों से ज्यादा ग़ज़लें नहीं मिलती हैं। यही हाल बाबू गिरिधरदास गोपाल का है। हिंदी ग़ज़ल के शुरूआती दौर को देखकर ऐसा लगता है जैसे बिन मौसम बरसात में कहीं-कहीं बूंदों के छीटें पड़ जाते हैं वैसे ही इस दौर में ना के बराबर ऐसी ग़ज़ल दिखती हैं जिन पर तत्कालीन हिंदी भाषा या बोली का प्रभाव दिखता है। और जिन्हें हिंदी ग़ज़ल कहा जा सकता है। कभी-कभी तो ऐसा लगा है जैसे कुछ लोगों ने उर्दू ग़ज़ल की परम्परा से हिंदी ग़ज़ल की परम्परा को पुराना सिद्ध करने के चक्कर में गड़े-मुरदे उखाड़ने का प्रयास किया हो। यदि हिंदी ग़ज़ल की कोई पुरानी परम्परा होती तो इस दौर में ग़ज़लकारों और ग़ज़लों का अकाल नहीं दिखता। और इन ग़ज़लकारों को अँगुलियों पर गिनने की नौबत नहीं आती। इससे यह साफ प्रतीत होता है कि हिंदी ग़ज़ल की परम्परा बाद की है। और यदि कोई परम्परा थी तो वह बहुत ही कुंद थी। अब हम भारतेन्दुकालीन ग़ज़ल की विकास यात्रा पर बात करेंगे।

5.4.2 हिंदी ग़ज़ल का आधुनिक काल

हिंदी साहित्य के काल विभाजन के आधार पर बात करें तो यहाँ भारतेन्दु युग से स्वतंत्रता तक की हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा पर बात करेंगे। उर्दू ग़ज़ल के दृष्टिकोण से यह स्वर्णकाल कहा जा सकता है। इस समय उर्दू ग़ज़ल का सूर्य बिल्कुल सिर के ऊपर चमक रहा था क्योंकि उर्दू ग़ज़ल में वली दक्खनी, मीर, ग़ालिब और इकबाल आदि जैसे बड़े शायर अपना योगदान दे चुके थे। वहीं हिंदी ग़ज़ल का सूर्य अभी अपनी लालिमा भी नहीं त्यागा था। हिंदी साहित्य में भारतेन्दु युग राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण का युग होने के कारण अत्यंत महत्वपूर्ण है जिसमें काव्य के अतिरिक्त अन्य गद्य विधाओं का खड़ीबोली में लेखन कार्य आरम्भ हुआ था। और यही वह समय था जब हिंदी में ग़ज़ल लिखने की परम्परा स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगती है।

हिंदी ग़ज़ल के प्रतिनिधि ग़ज़लकार के रूप में स्वयं भारतेन्दु हरिश्चंद्र विख्यात हैं। इनके अतिरिक्त पं. बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र, गोपाल लाल गुल और श्रीधर पाठक आदि का नाम भी महत्वपूर्ण है लेकिन भारतेन्दु और प्रेमघन इस युग के प्रमुख ग़ज़लकार थे। हिंदी में भारतेन्दु और प्रेमघन

¹ ज्ञान प्रकाश विवेक, हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा, पृ.सं- 44

दोनों क्रमशः 'रसा' और 'अब्र' आदि उपनाम से ग़ज़ल लिखा करते थे। इस युग में ग़ज़लों का मुख्य विषय प्रेम-मोहब्बत था। और ये ग़ज़लें ग़ज़ल के व्याकरणिक दृष्टिकोण से किसी भी स्तर पर उर्दू ग़ज़लों से कमतर नहीं हैं। इन ग़ज़लों की संख्या भी अच्छी खासी है। इस युग की ग़ज़लों पर उर्दू भाषा का प्रभाव दिखाई देता है। भारतेन्दु और प्रेमघन की ग़ज़लों पर अधिक, वहीं अन्य ग़ज़लकारों की ग़ज़लों पर यह प्रभाव कम दिखाई देता है। भारतेन्दु युग की कुछ ग़ज़लों के शेरों को उदाहरण स्वरूप देखा जा सकता है-

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

“अजब जोबन है गुल पर आमदे फ़स्ले बहारी है

शिताब आ साकिया गुलरू कि तेरी यादगारी है

रिहा करता है सैयादे सितमगर मौसिमें गुल में

असीराने कफ़स लो तुमसे अब रुख़सत हमारी है।”¹

“बुत-ए-काफ़िर जो तू मुझ से ख़फ़ा हो/ नहीं कुछ ख़ौफ़ मेरा भी ख़ुदा है

ये दर-पर्दा सितारों की सदा है/ गली-कूचा में गर कहिए बजा है

रक़ीबों में वो होंगे सुख़-रू आज/ हमारे क़त्ल का बेड़ा लिया है

यही है तार उस मुतरिब का हर रोज़/ नया इक राग ला कर छेड़ता है

शुनीदा कै बवद मानिंद-ए-दीद/ तुझे देखा है हूरों को सुना है

पहुँचता हूँ जो मैं हर रोज़ जा कर/ तो कहते हैं ग़ज़ब तू भी 'रसा' है”²

“गले मुझको लगा लो ऐ दिलदार होली में

बुझे दिल की लगी भी तो ऐ यार होली में

नहीं ये है गुलाले-सुख़ उड़ता हर जगह प्यारे

¹ सं. हेमन्त शर्मा, भारतेन्दु समग्र(भारतेन्दु ग्रंथावली), पृ.सं.- 269

² सं. हेमन्त शर्मा, भारतेन्दु समग्र(भारतेन्दु ग्रंथावली), पृ.सं.- 273

ये आशिक की है उमड़ी आहें आतिशबार होली में
गुलाबी गाल पर कुछ रंग मुझको भी जमाने दो
मनाने दो मुझे भी जानेमन त्योहार होली में”¹

पं. बद्रीनारायण चौधरी ‘प्रेमघन

“ऐ सनम तूने अगर आँख लड़ाई होती,
रूह कालिब से उसी दम ही जुदाई होती।
तू ने गुस्से से अगर आँख दिखाई होती,
रूह कालिब से उसी दम निकल आई होती।
लेता फिर नाम न फ़रहाद कभी शीरीं का,
चाँद-सी तुमने जो सूरत ये दिखाई होती।”²
“तेरे इश्क में हमने दिल को जलाया,
कसम सर की तेरे मजा कुछ न पाया।।
करूँ शुक्र अल्लाह का या तुम्हारा,
मेरे भाग जागे जो तू आज आया।
दोआ मुदद्दों माँगी है मसजिदों में,
तब उस बुत को हमने शिवाले में पाया।”³

प्रतापनारायण मिश्र

“बने पढ़ के गौरण्ड-भाषा द्विजाति,/ मुरीदाने पीर मुर्गों कैसे-कैसे

¹ सं. हेमन्त शर्मा, भारतेन्दु समग्र(भारतेन्दु ग्रंथावली), पृ.सं.- 128

² सं. डॉ.भवदेव पाण्डेय, बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन संचयिता, पृ.सं.- 76

³ सं. डॉ.भवदेव पाण्डेय, बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन संचयिता, पृ.सं.- 76-77

बसो मुखते देवि आयो के जी में,/ तुम्हारे लिए हैं मकाँ कैसे-कैसे
अनुद्योग आलस्य संतोष सेवा,/ हमारे भाग है मिहारबों कैसे-कैसे”¹

श्रीधर पाठक

“कहीं ये स्वर्गीय कोई बाला सुमंजू वीणा बजा रही है
सुरों के संगीत सी कैसी सुरीली गुंजार आ रही है
कभी नई तान प्रेममय है कभी प्रकम्पन कभी विनय है
दया है दाक्षिण्य का उदय है, अनकों बानक बना रही है”²

भारतेन्दु युग के बाद दिवेदी युग के साहित्यकारों में अयोध्यासिंह उपाध्याय ‘हरिऔध’, नाथूराम शर्मा ‘शंकर’, लाला भगवानदीन, मैथलीशरण गुप्त, गया प्रसाद शुक्ल ‘स्नेही’ और जगदम्बाप्रसाद मिश्र ‘हितैषी’ आदि ने मुख्य रूप से हिंदी ग़ज़ल लिखने का प्रयास किया। ये सभी हिंदी साहित्य में द्विवेदी युग के बड़े नाम हैं। इस युग की कविता में देशप्रेम और राष्ट्रीय चेतना अधिक देखने को मिलती है क्योंकि इस समय देश में स्वतंत्रता के लिए संघर्ष चल रहा था जिसका प्रभाव हिंदी ग़ज़ल पर भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है इसलिए इस युग की कविता में महबूबा के प्रेम के साथ-साथ देशप्रेम, राष्ट्रीय चेतना और सामाजिक यथार्थ तथा व्यंग्य आदि का स्वर भी सुनाई देता है। इस युग की ग़ज़लों की भाषा उर्दू के प्रभाव से दूर होती दिखाई देती है। हम यहाँ द्विवेदी युग के कवियों द्वारा लिखित हिंदी ग़ज़लों के कुछ शेरों के उदाहरण देख सकते हैं-

अयोध्यासिंह उपाध्याय ‘हरिऔध’

“सेमल को साल सुमन मिलें हैं कहाँ,
पीले-पीले पुष्प दिये किसने बबूलों को।
तूली तुलिकाएँ ले-ले कैसे साजता है कौन,

¹ मुकुन्ददेव शर्मा, हरिऔध और उनका साहित्य, पृ.सं.- 362-363

² ज्ञान प्रकाश विवेक, हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा, पृ.सं.- 48

सुललित लतिका के कालीन दुकूलों को।
हरिऔध किसके किलाये कलियाँ हैं खिलीं,
दे दे दान मंजुल मरंद अनुकूलों को।
किससे रंगीली साड़ियाँ है तितली को मिली,
कौन रंगरेज़ रंगता है इन फूलों को।”¹

नाथूराम शर्मा ‘शंकर’

“आतिशे मुसीबत न दूर की कुदरत को
बात को नाबत मिली लज्जते शकर में
‘शंकर’ नतीजा इलहाल का यही है बस
सच्ची आशिकी में नफा होता है जहर से”²

लाला भगवानदीन

“तुमने पैरों में लगाई महेंदी
मेरी आँखों में समाई महेंदी
है हरी ऊपर मगर अन्तस लाल
है ये जादू की जगाई महेंदी।”³

मैथिलीशरण गुप्त

“इस देश को है दीन बन्धों आप फिर से अपनाइए
भगवान् भारतवर्ष को फिर से पुण्यभूमि बनाइए

¹ मुकुन्ददेव शर्मा, हरिऔध, पृ.सं.- 41

² सूर्यप्रकाश शर्मा, गजल: एक यात्रा, पृ.सं.- 42

³ बालस्वरूप राही, राही को समझाए कौन, पृ.सं.- 22

सर्वत्र बाहर और भीतर रिक्त भारत हो चुका,
फिर भाग्य इसका विधाता! पूर्व-सा पलटाइए!”¹

गया प्रसाद शुक्ल ‘स्नेही’

“अब वतन देखूँ कि सरकार की अबरू देखूँ
हिन्द को देखूँ कि अब मुसलमाँ हिन्दू देखूँ
तहकी समझेंगे सखुन फहम जवां हो कोई
काम अपना करूँ या हिंदी ओ उर्दू देखूँ।”²

जगदम्बाप्रसाद मिश्र ‘हितैषी’

“उरूजे कामयाबी पर कभी हिन्दोस्ताँ होगा
रिहा सैयाद के हाथों से अपना आशियाँ होगा
चखाएँगे मज़ा बर्बादिए गुलशन का गुलचीं को
बहार आ जाएगी उस दम जब अपना बाग़बाँ होगा
वतन की आबरू का पास देखें कौन करता है
सुना है आज मक़तल में हमारा इम्तिहाँ होगा
शहीदों की चिताओं पर लगेगें हर बरस मेंले
वतन पर मरनेवालों का यही बाक़ी निशाँ होगा
कभी वह दिन भी आएगा जब अपना राज देखेंगे
जब अपनी ही ज़मीं होगी और अपना आसमाँ होगा।”³

¹ मैथलीशरण गुप्त, भारत भारती, पृ.सं.- 181

² नरेशचन्द्र चतुर्वेदी, गयाप्रसाद शुक्ल ‘स्नेही’, पृ.सं.-37

³ KavitaKosh.org_jagdmabprasad mishr hitaishi, 15/02/2021

द्विवेदी युग की परम्परा को आगे बढ़ाने में छायावाद के कवियों में सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। थोड़ा बहुत इनका सहयोग जयशंकर प्रसाद और माखनलाल चतुर्वेदी ने दिया। निराला इस युग के महत्वपूर्ण कवि हैं जिन्होंने अपने समकालीनों की तुलना में अधिक गज़लें लिखी जों ‘बेला’ काव्य संग्रह में संकलित हैं। इन्होंने गज़लें विभिन्न बहरो में लिखी हैं। इनकी गज़लों पर उर्दू और संस्कृत भाषा का प्रभाव दिखता है। इन्होंने गज़ल विधा को हिंदी साहित्य की मुख्यधारा में लाने के लिए मजबूती से कदम बढ़ाए। शायद इसलिए इनकी गज़लों के विषय में रामविलास शर्मा लिखते हैं कि, “उनकी गज़लों में कहीं पुरानी कल्पनाएँ हैं। कहीं-कहीं भौतिक सौन्दर्य का वर्णन है। गीतिका में अनेक छन्दों जैसी मांसलता है। देश की सुरबहार पर स्नेह की रागनी बजाना ऐसी ही कल्पना है। उन्होंने उर्दू की बोलचाल का रंग अपनाया है। इन गज़लों को पढ़ते हुए लगता है जैसे कवि की नई चेतना प्रकाश में आने के लिए रूढ़ियों से टकरा रही हो।”¹

जयशंकर प्रसाद ने अपने लेखन के शुरुआती जीवन में गज़ल लिखने का प्रयास जरूर किया है। इनकी गज़लों के मुख्य विषय प्रेम और राष्ट्रीय चेतना है। इनकी कुछ गज़लें उच्च कोटि की हैं जिनमें काफिया और रदीफ़ के साथ-साथ मतला और मक्ते का भी पूरा ध्यान रखा गया है। इनकी गज़लों को कभी-कभी देखकर ऐसा भी लगता है जैसे इन्होंने उर्दू गज़ल के छंद में कविता लिखने की कोशिश की हो और गज़ल लिखने में इनका ज्यादा मन रमा नहीं। इस बहती धारा में माखनलाल चतुर्वेदी ने भी कुछ गज़ल या कविता गज़ल बहर में लिखकर अपना योगदान दिया है। इस युग की गज़लों के केंद्र में महबूबा से प्रेम-मोहब्बत की बातें, राष्ट्रीयता की भावना, सामाजिक समस्या, प्रकृति को आलम्बन बनाकर प्रेम का चित्रण, देश की बिगड़ती स्थिति का वर्णन, पनपती पूंजीवादी व्यवस्था पर प्रहार, मानवीय संघर्ष और पीड़ा का यथार्थ चित्रण आदि विषय प्रमुखता से उठाए गए। इस युग की गज़लों में विषय की दृष्टि से विस्तार हुआ है। यहाँ हम इस युग की गज़लों के उदाहरण देख सकते हैं-

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

“भेद खुल जाए वह सूरत हमारे दिल में है

देश को मिल जाए जो पूँजी तुम्हारी मिल में है।”²

¹ ज्ञान प्रकाश विवेक, हिंदी गज़ल की विकास यात्रा, पृ.सं- 52

² सं. नंदकिशोर नवल, निराला रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 161

“बदली जो आँखें उनकी, इरादा बदल गया
गुल जैसे चमचमाया कि बुलबुल मसल गया।”¹
“किनारा वह हमसे किये जा रहे हैं
दिखने को दर्शन दिये जा रहे हैं।”²

जयशंकर प्रसाद

“सरासर भूल करते हैं उन्हें जो प्यार करते हैं
बुराई कर रहे हैं और अस्वीकार करते हैं
उन्हें अवकाश की इतना कहाँ है मुझसे मिलने का
किसी से पूछ लेते हैं यही उपकार करते हैं।”³
“देश की दुर्दशा निहारोगे/ डूबते को कभी उबारोगे
हारते ही रहे न है कुछ अब/ दाँव पर आपको न हारोगे”
सो रहे तुम, न भाग्य होता है/ आप बिगड़ी तुम्हीं संवारोगे
दीन जीवन बिता रहे अब तक/ क्या हुए जा रहे, विचारोगे।”⁴

माखनलाल चतुर्वेदी

“भाई, छेड़ो नहीं, मुझे खुलकर रोने दो।
यह पत्थर का हृदय आँसुओं से धोने दो।
रहो प्रेम तुम्हीं मौज से मंजु महल में,

¹ सं. नंदकिशोर नवल, निराला रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 130

² सं. नंदकिशोर नवल, निराला रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 134

³ बालस्वरूप राही, राही को समझाए कौन, पृ.सं.- 25

⁴ जयशंकर प्रसाद, स्कंदगुप्त, पृ.सं.- 158

मुझे दुखों की इसी झोपड़ी में सोने दो।”¹

छायावादोत्तर युग के बाद हिंदी ग़ज़ल के कथ्य में परिवर्तन दिखता है। इस परिवर्तन के पीछे देश की तेजी से बदलती परिस्थितियाँ हैं क्योंकि इस समय स्वतंत्रता के आन्दोलनों में तेजी आती है। 1936 में 'अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना, से हिंदी साहित्य ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में बदलाव की लहर दौड़ गई। इसका पहला अधिवेशन प्रेमचन्द की अध्यक्षता में लखनऊ में हुआ था। जिसमें सभी भाषाओं के प्रगतिशील साहित्यकारों ने हिस्सा लिया था। इसमें साम्राज्यवादी, अत्याचारी और पूंजीपतियों आदि का विरोध और पीड़ित जनता, मजदूरों और किसानों आदि का पक्षधर होने की बात कही गई। साहित्य में स्वाधीनता आन्दोलनों की अभिव्यक्ति पर बल दिया गया। इन सभी परिस्थितियों का प्रभाव हिंदी ग़ज़ल पर भी पड़ा। यहाँ से हिंदी ग़ज़ल यू-टर्न लेती दिखाई देती है।

छायावादोत्तर युग की ग़ज़ल अपनी पूर्ववर्ती ग़ज़ल-परम्परा से जुड़कर भी कई स्तरों पर अलग है। इस युग में पहली बार प्रेम-मोहब्बत, राष्ट्रीयता, सामाजिक सुधार, नैतिकता, मानवीय जीवन-मूल्यों का गिरता स्तर और वर्ग-भेद आदि विषयों के साथ-साथ आम आदमी, मजदूर और किसान आदि मेंहनतकश वर्ग को स्थान मिला। इस युग में हिंदी नये मुकाम से गुजर रही थी जिसका अपना एक नया सौन्दर्य था। इस युग को सरदार मुजावर 'हिंदी ग़ज़ल का रूमानी युग' की संज्ञा देते हैं। इस युग में हिंदी ग़ज़ल के पहली बार स्वतंत्र ग़ज़ल संग्रह देखने को मिलते हैं। हिंदी ग़ज़ल लिखने वाले कवियों में रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', हरिकृष्ण प्रेमी, जानकीवल्लभ शास्त्री, बलवीरसिंह 'रंग', त्रिलोचन शास्त्री और शमशेरबहादुर सिंह आदि प्रमुख हिंदी कवि हैं। अंचल की ग़ज़लें 'आवाज़ों को ठहरा लो' शीर्षक ग़ज़ल संग्रह में संकलित हैं। ये प्रेम और सौन्दर्य के कवि हैं जिसका प्रभाव इनकी ग़ज़लों पर भी है। इनकी ग़ज़लों में समसामयिक मुद्दों को भी विषय बनाया गया है। इस युग में सबसे ज्यादा हिंदी ग़ज़ल यदि किसी हिंदी कवि ने लिखी तो वह हरिकृष्ण प्रेमी ने। इनकी लगभग तीन सौ ग़ज़लें 'रूपरेखा' और 'रूपदर्शन' शीर्षक ग़ज़ल संग्रहों में संकलित हैं। इनकी ग़ज़लों पर गीतों का प्रभाव है। इन्होंने अपनी ग़ज़ल यात्रा के विषय में स्वयं लिखा है कि, “उर्दू की ग़ज़ल और हिंदी के गीतों का सम्मिश्रण मैंने अपनी रचनाओं में किया है। मेरे गीत का प्रत्येक जोड़ा अपने आप में पूर्ण है, लेकिन अपूर्ण भी क्योंकि आगे की पंक्तियों में सम्बन्ध कायम है। ग़ज़ल को हिंदी साहित्य में लेने का प्रयत्न तो बहुत पहले से चल रहा है और महाकवि कहे जाने वाले प्रतिभापति भी ग़ज़ल रचना की कसरत करते रहे हैं। किन्तु उर्दू वाले निखार शोखी और अदा के दर्शन अभी तक नहीं हुए हैं। इस उर्दू की

¹ सं. श्रीकांत जोशी, माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली, भाग- 6, पृ.सं.- 41

बेटी से मैंने मोहब्बत की है। मैं इसे मना रहा हूँ। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि यह मुझसे कुछ प्रसन्न तो हुई है।”¹

हिंदी साहित्य के गीतकार जानकीवल्लभ शास्त्री ने भी गीतों को ग़ज़ल की बहर में लिखकर हिंदी ग़ज़ल में अपना योगदान दिया है इसलिए इनकी ग़ज़लों में गीतात्मकता का गुण पाया जाता है। इनकी ग़ज़लों में प्रेम के विविध रूपों की अभिव्यक्ति हुई है। कुछ समस्यात्मक ग़ज़ल भी लिखी हैं। इनकी ग़ज़लें ‘सुने कौन नग्मा’ शीर्षक काव्य संग्रह में संकलित हैं। इनकी ग़ज़लें ठेठ उर्दू और हिंदी दोनों भाषाओं में मिलती हैं। हिंदी ग़ज़ल की विकास परम्परा में बलवीर सिंह ‘रंग’ का नाम बहुत सम्मान के साथ लिया जाता है। इनकी ग़ज़लों पर उर्दू ग़ज़लों जैसी खानगी, रंगत और संगीतात्मकता दिखती है। इनकी अधिकतर ग़ज़लों में नाद और रूमानीयत एक साथ प्रस्तुत हुए हैं। ये अपनी ग़ज़लों के माध्यम से हिंदी ग़ज़ल की परम्परा को मजबूत करते हैं। हिंदी ग़ज़ल के जानकार कहते हैं कि इनकी ग़ज़लों का तेवर दुष्यंत की ग़ज़लों से मिलता है।

हिंदी ग़ज़ल की परम्परा को स्वतंत्रता के बाद की परम्परा से जोड़ने में शमशेरबहादुर सिंह और त्रिलोचन शास्त्री का महत्वपूर्ण योगदान है या कहें इन्होंने पुल का काम किया। पहले त्रिलोचन पर बात करते हैं। हिंदी ग़ज़ल में त्रिलोचन शास्त्री एक महत्वपूर्ण नाम है। इनका एक सौ दो ग़ज़लों का ‘गुलाब और बुलबुल’ शीर्षक ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित है। इन्होंने अपनी ग़ज़लों का विषय समसामयिक प्रश्नों, मुद्दों और समस्याओं आदि को बनाया है। इनकी ग़ज़लों की भाषा उर्दू के साथ बोलचाल का लहजा लिए हुए है।

शमशेरबहादुर सिंह का नाम हिंदी ग़ज़ल में बहुत सम्मान के साथ लिया जाता है। इन्होंने पहली बार लीक से अलग हटकर ग़ज़ल को आम आदमी से रबर कराया और प्रगतिशील विचारों को ग़ज़ल के द्वारा अभिव्यक्ति मिली। शमशेर की इन ग़ज़लों को पढ़कर प्रगतिशील आलोचक कहे जाने वाले रामविलास शर्मा ने कहा था कि, “ग़ज़ल तो दरबारों से निकली हुई विधा है, जो प्रगतिशील मूल्यों को व्यक्त करने में अक्षम है!”² पहले शर्मा के इस मत को शमशेर और बाद में दुष्यंत कुमार तथा अन्य ग़ज़लकारों ने गलत साबित कर दिया। वे उर्दू और हिंदी के मिश्रण से ग़ज़ल लिखते हैं इसलिए वे शायद अपने आप को हिंदी और उर्दू का ‘दोआब’ कहते हैं। इनकी ग़ज़लों पर उर्दू का प्रभाव ज्यादा है कभी-कभी पहचानने में धोखा हो जाता है कि ये हिंदी की है या उर्दू की। शमशेर ठेठ उर्दू मुहावरों में ग़ज़ल कहते रहे। उसके बावजूद वे

¹ हरिकृष्ण प्रेमी, रूपरेखा, पृ. सं- 2

² सं. अनिरुद्ध ‘विमल’ और राहुल शिवाय, कविता के नवरत्न, पृ. सं.- 9

हिंदी ग़ज़ल को प्रभावित करते रहे हैं। बेशक, वे दुष्यंत की तरह ग़ज़ल के जरिये प्रभाव नहीं छोड़ते, लेकिन हिंदी ग़ज़ल के माहौल को माकूल बनाने में उनकी ग़ज़लें सार्थक हस्तक्षेप करती हैं। शमशेर के विषय में विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं कि, “ हिंदी रचनाकारों में ग़ज़ल की परम्परा का सर्वाधिक निर्वाह शमशेर के यहाँ हुआ है। लेकिन वे उर्दू भाषा-साहित्य के निपुण जानकार थे और उनकी ग़ज़लें पढ़ने में उर्दू की लगती हैं। वे उर्दू साहित्य की काव्य रूढ़ियों के भी जानकार हैं।”¹ इन प्रमुख कवियों के अतिरिक्त भी अन्य कवियों ने ग़ज़ल लिखने का प्रयास किया लेकिन वे ज्यादा सफल नहीं हुए इसलिए बीच रास्ते ही लौट गए। अब इस युग के उपरोक्त हिंदी कवियों की ग़ज़लों के उदाहरण देखते हैं-

रामेश्वर शुक्ल ‘अंचल’

“आज उन्हीं के जलवे सायों जीवित करते हैं
स्याह अंधेरी की साजिश में दिन का जादू भरते हैं
खूनें शहीदों का बिकता है नेतापन की आदत में
जिसकी यादों से सत्ता के चेहरे रोज संवरते हैं।”²

हरिकृष्ण प्रेमी

“सोचता था मैं रहूँगा पीर प्राणों की छुपाकर
आँसुओं ने पर उमड़कर कर दिया अभिमान पानी
साधना भी थक गई है, प्यार प्रियतम से नहीं पाया
पर अमर धन वेदना का दे गए नादान दानी।”³

जानकीवल्लभ शास्त्री

“क्या बताऊं आज तो मैं धूल हूँ उस राह की

¹ सं. रामकुमार कृषक, समकालीन हिंदी ग़ज़ल(आ. के. विशेषांक), ‘अलाव’ पत्रिका, मई-अगस्त, 2015, पृ.सं.- 39

² KavitaKosh.org_ rameshwar shukal anchal, 15/02/2021

³ हरिकृष्ण प्रेमी, रुपरेखा, पृ.सं.- 61

पैर रखने की किसी ने भी न जिस पर चाह की
महमहाते हैं चमन, खिलते सुमन, जलते दिए
क्या पपीहे ने वहां दुखते गले से आह की।”¹

बलवीरसिंह ‘रंग’

गुलसितां में आ गया कैसा ज़माना आजकल
दामने सैय्यद में है आबोदाना आजकल
खल्क में मिटने को है क्या प्यार का नामों-निशां
क्योंकि हर शय की है फिकरत मुजरिमाना आजकल
जिनकी नज़दीकी में हमने काट दीं तनहाइयां
ढूंढते हैं उनसे मिलने का बहाना आजकल।”²

त्रिलोचन शास्त्री

“अंधेरी रात है, मैं हूं अकेला दीप जलता है
हवा जग-जग के सोती है, पथिक अब कौन चलता है
तुम्हारी बात सोची, और अपनी बात भी सोची
इन्हीं दो बिन्दुओं के बीच जीवन की विकलता है
कहूं क्या बात आंखों की इन्हें परदा नहीं आता
कहीं कुछ वेदना देखी कि आंसू बह निकलता है
‘त्रिलोचन’ भाव आते हैं तो फिर रोके नहीं रुकते

¹ ज्ञान प्रकाश विवेक, हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा, पृ.सं.- 56

² सं. रामकुमार कृषक, समकालीन हिंदी ग़ज़ल(आ. के. विशेषांक), ‘अलाव’ पत्रिका, मई-अगस्त, 2015, पृ.सं.- 22

कभी झरने को देखा है जो अपनी ढाल ढलता है।”¹

शमशेरबहादुर सिंह

“अपने दिल का हाल यारों हम किसी से क्या कहें

कोई भी ऐसा नहीं मिलता जिसे अपना कहें

हो चुकी जब खत्म अपनी ज़िंदगी की दास्ताँ

उन की फ़रमाइश हुई है इस को दोबारा कहें

देख कर के आखिर-ए-वक़्त उन की मोहब्बत की नज़र

हम को याद आया वो कुछ कहना जिसे शिकवा कहें।”²

5.4.3 स्वातंत्र्योत्तर हिंदी ग़ज़ल

स्वतंत्रता के बाद सरकारों ने जो आम जनता को सुनहरे सपने दिखाए थे वे थोड़े समय के बाद ही धराशायी होकर बिखर गए। देश की सरकारें आम जनता की मूलभूत जरूरतों को ही पूरा करने में असफल साबित हुईं। देश में चारों तरफ लुट-खसोट हो रही थी। व्यवस्था से जुड़ा प्रत्येक कर्मचारी और उनके चाटुकार मिलकर जनता का खून चूस-चूसकर अपनी तिजौरी भरने में लगे हुए थे। अमीर और गरीब के बीच की खाई बढ़ती जा रही थी। देश का मेंहनतकश वर्ग दो जून की रोटी और तन ढकने के कपड़े के लिए तरस रहा था। स्वास्थ्य और शिक्षा तो दूर की बात थी। नामात्र का अन्नदाता स्वयं अन्न के लिए तरस रहा था। उसके स्वयं का परिवार खेत मजदूर बनकर रह गया था। वहीं दूसरा वर्ग इनकी मेंहनत पर मलाई चाट रहा था। देश की विषम परिस्थितियों के कारण आम जनता का व्यवस्था से मोहभंग हो गया। इसलिए इस युग को जनमानस की समस्याओं का युग कहा जा सकता है। इन विषम परिस्थितियों का भोक्ता साहित्यकार और कलाकार स्वयं भी थे जिन्होंने अपनी-अपनी कलाओं में आम जनता के प्रश्नों, मुद्दों और समस्याओं तथा व्यवस्था तंत्र का विरोध आदि को उठाना शुरू किया। यहीं काम हिंदी के ग़ज़लकारों ने अपनी ग़ज़लों के माध्यम से किया। इसलिए इस युग की ग़ज़ल आम आदमी से सीधे जुड़ती है। ऐसा लगता है जैसे ग़ज़लकार स्वयं ग़ज़ल के माध्यम से सत्ता की आँखों में आँखें डालकर अपने प्रश्नों, मुद्दों और समस्याओं आदि को लेकर

¹ सं. रामकुमार कृषक, समकालीन हिंदी ग़ज़ल(आ. के. विशेषांक), ‘अलाव’ पत्रिका, मई-अगस्त, 2015, पृ.सं.- 20

² सं. रामकुमार कृषक, समकालीन हिंदी ग़ज़ल(आ. के. विशेषांक), ‘अलाव’ पत्रिका, मई-अगस्त, 2015, पृ.सं.- 21

जवाब तलब कर रहा हो। और यह सब उसी की बोलचाल की भाषा में घटित हो रहा था। जिसके कारण ग़ज़ल सीधे आम आदमी से जुड़ती हुई दिखाई देती है।

इस युग की ग़ज़लों की अगुआई हिंदी ग़ज़ल के पितामह दुष्यंत कुमार स्वयं कर रहे थे जो अपने समकालीन अन्य ग़ज़लकारों के साथ मिलकर अपने पूर्वजों की ग़ज़लों की नींव पर अपने युग में हिंदी ग़ज़ल की भव्य इमारत खड़ी करते हैं जो अपनी और आने वाली पीढ़ी को हिंदी ग़ज़ल की विरासत सौंपकर दुनिया से विदा हो गए। इस युग के ग़ज़लकारों में दुष्यंत कुमार के अतिरिक्त चंद्रसेन विराट, गोपालदास नीरज, सूर्यभान गुप्त, डॉ. कुँवर बेचैन, रामावतार त्यागी, बालस्वरूप राही, जहीर कुरैशी, शेरजंग गर्ग, बेकल उत्साही और डॉ. रोहिताश्व अस्थाना आदि प्रमुख हैं।

हिंदी ग़ज़ल में चंद्रसेन विराट ने आठ ग़ज़ल संग्रह लिखकर अपना बहुमूल्य योगदान दिया है। इनकी ग़ज़लें तत्कालीन परिस्थितियों से जन्मी हैं। इनमें आम आदमी का दुःख, दर्द और पीड़ा तथा संघर्ष की गूँज सुनाई देती है। इनकी ग़ज़लों के विषय में डॉ. मधु खराटे लिखती हैं कि, “विराट जी की ग़ज़लों की मूल भवना आज के मनुष्य की समस्याएँ, कटुता तथा मानसिक तनाव से गुजरती जिन्दगी की प्रतिध्वनि है, जो कहीं दूर तक आप्लावित करती है। कवि के पास कहने के लिए बहुत कुछ है। कवि अपने आस-पास के जाने-पहचाने जीवन से संघर्षशील व्यक्ति से गहरा रिश्ता कायम करता है, जिससे उनकी ग़ज़लें एक ठोस आकार प्राप्त कर लेती हैं”¹

गोपालदास सक्सेना ‘नीरज’ ने हिंदी ग़ज़ल को उच्च मुकाम हासिल कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन्होंने हिंदी ग़ज़ल को देश-विदेश के मुशायरों के मंच से आम जनता तक पहुँचाने का काम किया है। ये स्वयं और इनकी ग़ज़लें दोनों लोकप्रिय थीं। नीरज के ‘नीरज की पाती’ और ‘नीरज की गीतिकाएँ’ शीर्षक दो ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित हैं। इनकी ग़ज़लों के केंद्र में सामाजिक यथार्थ, साम्प्रदायिक सद्भाव, युगीन समस्याएँ और प्रेम आदि विषय रहें हैं। इनकी ग़ज़लों की भाषा उर्दू-हिंदी का मिश्रित रूप है जिसमें बोलचाल की भाषा का छोंक लगा हुआ है। सूर्यभान गुप्त ने अपनी ‘हिंदी एक्सप्रेस’ साप्ताहिक पत्रिका के द्वारा हिंदी ग़ज़ल को पाठकों तक पहुँचाने का कार्य किया। और इनकी स्वयं की ग़ज़लें भी आम आदमी की समस्याओं को बड़ी मार्मिकता के साथ व्यक्त करती हैं।

¹ मधु खराटे, साठोत्तरी हिंदी ग़ज़ल, पृ.सं.- 63

हिंदी ग़ज़ल का एक बड़ा नाम डॉ. कुँवर बेचैन है। इन्होंने ग़ज़लकार और ग़ज़ल आलोचक दोनों की भूमिका एक साथ निभाई है। इनके ‘शामियाने काँच के’, ‘महावर इंतजार के’, ‘रस्सियाँ पानी की’ और पत्थर की बांसुरी आदि चार ग़ज़ल संग्रह तथा ‘हिंदी ग़ज़ल का व्याकरण’ एक आलोचनात्मक किताब प्रकाशित है। इनकी ग़ज़लें आम आदमी के संघर्ष की गाथा बयान करने वाली हैं।

रामावतार त्यागी का एक ‘लहू के चंद कतरे’ ग़ज़ल संग्रह है। इनकी ग़ज़लों के केंद्र में देश में फैली गरीबी और महंगाई की मार से त्रस्त सर्वहारावर्ग की पीड़ा है। बालस्वरूप राही अपनी ग़ज़लों के माध्यम से राजनेताओं को नसीहत देते रहते हैं और इनकी ग़ज़लों में सामाजिक यथार्थ बोध के दर्शन भी होते हैं। जहीर कुरैशी हिंदी के बहुत चर्चित ग़ज़लकार हैं। इनके ‘एक टुकड़ा धूप’ और ‘चाँदनी का दुःख’ शीर्षक दो ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित हैं। इन्होंने अपनी ग़ज़लों में अपने समय की सामाजिक विसंगतियों और विद्रूपताओं को स्थान दिया है जिन्होंने आम आदमी को दयनीय स्थिति में पहुँचाने का काम किया। इनकी ग़ज़लों में व्यंग से अधिक काम लिया गया है जिससे इनकी ग़ज़लों का स्वर थोड़ा तीखा हो गया है।

शेरजंग गर्ग ने भी हिंदी ग़ज़लें लिखी हैं। इनकी ग़ज़लों का मूल विषय भी तत्कालीन परिस्थितियाँ ही रही हैं। बेकल उत्साही का असली नाम मोहम्मद शफी खां लोदी है। इन्होंने उर्दू और हिंदी दोनों भाषाओं में ग़ज़लें लिखी हैं। इनकी ग़ज़लों में प्रेम-मोहब्बत के साथ-साथ आम आदमी की पीड़ा का स्वर भी सुनाई देता है। डॉ. रोहिताश्व अस्थाना ने ग़ज़लकार के साथ-साथ ‘हिंदी ग़ज़ल: उद्भव और विकास’ विषय पर शोध करके ग़ज़ल-आलोचक की भूमिका का निर्वाह भी किया है। इनकी ग़ज़लें जीवन के विविध पहलुओं को समाहित किए हुए हैं।

उपरोक्त ग़ज़लकारों के अतिरिक्त भी अन्य ग़ज़लकार हैं जिन्होंने हिंदी ग़ज़ल की विकास परम्परा में अपना बहुमूल्य योगदान दिया है और अभी भी हिंदी ग़ज़ल को लगातार समृद्ध कर रहे हैं। यहाँ सभी का नाम लेना संभव नहीं है लेकिन यहाँ इतना अवश्य कह सकता हूँ कि इस युग के सभी ग़ज़लकारों की ग़ज़लों के केंद्र में आम आदमी और उसकी समस्याएँ ही रही हैं। अब उपरोक्त ग़ज़लकारों की ग़ज़लों के उदाहरण देखते हैं-

चंद्रसेन विराट

“पालकर रख न उसे हाथ के छाले जैसा।

देर तक दुख को नहीं ओढ़ दुशाले जैसा।

ठीक तो ये है कि दुख जितना है उतना ही रहे,
एक काँटे को बना खुद ही भाले जैसा।”¹

गोपालदास नीरज

“बात अब करते हैं कतरे भी समन्दर की तरह,
लोग इमान बदलते हैं कलेण्डर की तरह।
न कोई राह, न मंजिल, न है मकसद कोई
है ये जनतंत्र यतीमों के मुकद्दर की तरह।”²
“अब तो मजहब कोई ऐसा चलाया जाए
जिसमें इंसान को इंसान बनाया जाए।”³

सूर्यभान गुप्त

“माँझा कोई यकीन के क्राबिल नहीं रहा
तन्हाईयों के पेड़ से अटकी पतंग है
रिश्ते गुजर रहे हैं लिए दिन में बत्तियाँ
मैं इस नई सदी की अँधेरी सुरंग हूँ।”⁴
“लोग गिरते नहीं थे नजरों से/ इश्क के कुछ उसूल थे पहले
अन्नदाता है अब गुलाबों के/ जितने सूखे बबूल थे पहले।”⁵

डॉ. कुँवर बेचैन

¹ KavitaKosh.org_ chandrsen virat, 15/02/2021

² सं. नरेश शांडिल्य, जान-ए-गज़ल, पृ.सं.- 26

³ सं. नरेश शांडिल्य, जान-ए-गज़ल, पृ.सं.- 25

⁴ सं. नरेश शांडिल्य, जान-ए-गज़ल, पृ.सं.- 67

⁵ सं. नरेश शांडिल्य, जान-ए-गज़ल, पृ.सं.- 66

“बदन से तेरे आती है मुझे ऐ माँ वही खुशबू
जो इक पूजा के दीपक में पिघलते घी से आती है
हजारों खुशबुएँ दुनिया की उस खुशबू से छोटी है
किसी भूखे को जो सिकती हुई रोटी से आती है”¹
“ज़िन्दगी यूँ भी जली यूँ भी जली मीलों तक
चाँदनी चार क़दम धुप चली मीलों तक
हम तुम्हारे हैं ‘कुँवर’ उसने कहा था एक दिन
मन में घुलती रही मिसरी की डली मीलों तक”²

रामावतार त्यागी

“तन बचाने चले थे कि मन खो गया
एक मिट्टी के पीछे रतन खो गया
घर वही, तुम वही, मैं वही, सब वही
और सब कुछ है वातावरण खो गया
यह शहर पा लिया, वह शहर पा लिया
गाँव का जो दिया था वचन खो गया।”³

बालस्वरूप राही

“जो जुलूसों को साथ लाए हैं/ सुखियों में वही समाए हैं

¹ सं. नरेश शांडिल्य, जान-ए-गज़ल, पृ.सं.- 79

² सं. नरेश शांडिल्य, जान-ए-गज़ल, पृ.सं.- 80

³ KavitaKosh.org_ ramavtaar tyagi, 15/02/2021

ज़ख्म कब तक खुले रखेंगे हम/ आप अब तक नमक छिपाए है!”¹

“मिल गया भीख में भूखे को निवाला लेकिन

उस पे चीलों की शुरू से ही नज़र है, यारो!

कैसे कागज़ है न गलते है न तर होते हैं

एक मुद्दत से खिंची इन पे नहर है यारो!”²

जहीर कुरैशी

“वो जिन लोगों को सपने बेचते हैं/ फिर उनको ही करिश्मे बेचते हैं

हों हेड और टेल जिनके एक जैसे/ ठगों को हम वो सिक्के बेचते हैं

खुले बाज़ार की काली सदी में/ अब आईनों को अन्धे बेचते हैं

है जिनके मन में गहरी तित्कताएँ/ हमेंशा व्यंग्य तीखे बेचते हैं

जो उड़ना चाहते हैं बिन परो के/ पतंगें या परिंदे बेचते हैं

घटी विज्ञापनों से तारिकाएँ/ कई चीज़ों को बच्चे बेचते हैं

ये कैसा दौर है जादूगरी का/ मदारी को जमूरे बेचते हैं।”³

शेरजंग गर्ग

“कब तक यों ही रुलायेगी मुझे किस्मत,

नाउमीदी में दुबायेगी मुझे किस्मत

हाथ से मैंने मिटा दी भाग्य की रेखा-

¹ सं. नरेश शांडिल्य, जान-ए-गज़ल, पृ.सं.- 42

² सं. नरेश शांडिल्य, जान-ए-गज़ल, पृ.सं.- 44

³ KavitaKosh.org_ zaheer kuraishi, 15/02/2021

अब मुझे कैसे मिटायेगी किस्मत?”¹

“हो गए बेवफ़ा यहाँ तक तुम/ खोलते अब नहीं जुबां तक तुम,
ऐसी क्या बात है जो मुश्किल से/ कह नहीं पा रहे हो हाँ तक तुम।
मेरी बदनामियों में पाओगे-/ अपनी शोहरत की दास्तां तक तुम”²

बेकल उत्साही

“सुनहरी सरज़मीं मेरी, रुपहला आसमाँ मेरा
मगर अब तक नहीं समझा, ठिकाना है कहाँ मेरा
किसी बस्ती को जब जलते हुए देखा तो ये सोचा
मैं खुद ही जल रहा हूँ और फैला है धुआँ मेरा
सुकूँ पाएँ चमन वाले हर इक घर रोशनी पहुँचे
मुझे अच्छा लगेगा तुम जला दो आशियाँ मेरा”³

डॉ. रोहिताश्व अस्थाना

“सड़कें वहीं हैं और मकानात वही हैं
मेरे शहर में आज भी हालत वही हैं
चूल्हें बुझे हैं, क्या हुआ, हर दिल तो जल रहा है
उठ देख जिन्दगी के आलामात वहीं हैं।”⁴

उपरोक्त विवेचन-विश्लेषण के बाद कहा जा सकता है कि ग़ज़ल का इतिहास लगभग एक हज़ार वर्ष पुराना है। ग़ज़ल का जन्म अरब के रेगिस्थान में हुआ जो मुस्लिम अनुयाइयों के साथ ईरान से होते हुए

¹ शेरजंग गर्ग, चंद ताज़ा गुलाब तेरे नाम, पृ.सं.- 36

² शेरजंग गर्ग, चंद ताज़ा गुलाब तेरे नाम, पृ.सं.- 42

³ बेकल उत्साही, लफ्जों की घटाएँ, पृ.सं.-

⁴ सं. रोहिताश्व अस्थाना, नवीनतम हिंदी ग़ज़लें, पृ.सं.- 97

गंगा और हिमालय के रास्ते से भारत की पवित्र भूमि पर कदम रखती है और सबसे पहले संत निजामुद्दीन औलिया की दरगाह में अमीर खुसरों के साथ माथा टेकने जाती है। उसके बाद भारत की आबों-हवा से परिचय करती है। शुरुआत में फारसी भाषा के पुट के साथ अमीर खुसरों ने भारत की जमीन पर पहली ग़ज़ल लिखी। अमीर खुसरों के प्रभाव से भारत में ग़ज़ल लिखने की परम्परा की शुरुआत हुई। उर्दू भाषा के अस्तित्व में आने के बाद भारत में ग़ज़ल उर्दू-फारसी और हिंदी-फारसी मिश्रित दो धाराओं में विभाजित होकर लिखी जाने लगी। उर्दू की परम्परा दिन दूनी रात चौगनी विकसित होती गई। मुस्लिम राज में उर्दू भाषा को राजभाषा का दर्जा प्राप्त होने के कारण ग़ज़ल को बहुत फायदा हुआ जिसके पश्चात् लोगों ने उर्दू भाषा सीखी थी।

उर्दू ग़ज़ल में वली, मीर, ग़ालिब, इकबाल, सौदा, दाग़, हाली, फैज़, अहमद फराज़, फ़िराक़ गोरखपुरी और नाजिर काज़मी आदि बड़े शायर पैदा हुए जिन्होंने उर्दू ग़ज़ल को बुलंदी पर पहुँचाने में अपना बहुमूल्य योगदान दिया। इनके द्वारा बनाई उर्दू ग़ज़ल की इमारत को सजाने और संवारने का कार्य इनके अनुज ग़ज़लकार समय-समय पर करते रहे हैं। वहीं हिंदी ग़ज़ल की धारा चींटी की चाल से चलते हुए भारतेन्दु युग तक जैसे-तैसे पहुँचती है। परिणामस्वरूप हिंदी ग़ज़ल के प्रारम्भिक दौर में अमीर खुसरों और कबीर जैसे दो बड़े नाम हुए हैं जिनको लेकर आलोचकों के बीच मत भेद देखने को मिलता है। भारतेन्दुयुग से पूर्व और बाद तक ग़ज़ल के केंद्र में औरत, प्रेमिका, माशूका, महबूबा, सोना और बाबू आदि से सम्बन्धित प्रेम, प्यार और मोहब्बत आदि की गुफ्तगू थी।

भारतेन्दु युग से हिंदी ग़ज़ल रफ़्तार पकड़ती है। यहाँ से हिंदी ग़ज़ल की धारा प्रवाहित होती दिखती है। स्वतंत्रता तक आते-आते हिंदी ग़ज़ल में भारतेन्दु, प्रेमधन, हरिकृष्ण प्रेमी, जगदम्बाप्रसाद हितैषी, प्रसाद, निराला बलवीरसिंह रंग, त्रिलोचन शास्त्री और शमशेरबहादुर सिंह आदि जैसे कुछ बड़े नाम दिखते हैं जिन्होंने हिंदी ग़ज़ल की सही मायनों में बुनियाद रखने का काम किया। इस समय ग़ज़ल में प्रेम-मोहब्बत की गुफ्तगू के साथ-साथ राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना तथा समसामयिक प्रश्नों, मुद्दों तथा समस्याओं आदि विषयों को भी उठाया जाने लगा था। हिंदी ग़ज़ल के इस दौर में शमशेर बहादुर सिंह और त्रिलोचन शास्त्री का विशेष योगदान रहा है। इन दोनों ने सर्वप्रथम हिंदी ग़ज़ल में प्रगतिशील विचारों से लेस ग़ज़लें लिखीं। यह सिलसिला स्वतंत्रता के कुछ बाद तक चलता रहा। स्वतंत्रता के बाद देश की परिस्थितियों में तेज़ी से परिवर्तन होने लगता है। जिसका प्रभाव हिंदी ग़ज़ल पर भी पड़ा। यहाँ से हिंदी ग़ज़ल में नया अध्याय जुड़ता है। इसकी शुरुआत आम जनता के मोहभंग से होती है। क्योंकि नेताओं ने जनता से जो वादे किए थे उन्हें पूरा करने में असफल हो चुके थे। वादे केवल वादे बनकर रह गए थे। वे रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा

और स्वास्थ्य आदि मूलभूत जरूरतों को पूरा नहीं कर पा रहे थे। देश में चारों ओर आम आदमी गरीबी, भुखमरी, महंगाई, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, अत्याचार, शोषण और साम्प्रदायिक घटना आदि से त्रस्त था। जनता में निराशा, हताशा, विवशता, क्षोभ और कुंठा आदि का भाव घर करने लगा था। आपातकाल ने स्थितियों को और नाजुक बना दिया था।

इस युग का ग़ज़लकार इन दयनीय परिस्थितियों और समस्याओं का स्वयं भी भोक्ता रहा। जिसने सत्ता को अपनी ग़ज़लों के माध्यम से ललकारना शुरू किया और अपने अधिकारों के लिए आवाज उठानी शुरू की। इस तरह हिंदी ग़ज़ल अपनी पुरानी धुरी और भूमिका को छोड़कर ज़माने के जलसे में शामिल होती है और जनमानस का अभिन्न अंग बन जाती है। अब ग़ज़ल जनमानस की तकलीफों, समस्याओं और जद्दोजेहद भरी जिन्दगी के समूचे फलसफे, वाक्यात और हकीकतें आदि को अभिव्यक्त करने लगी थी। अब ग़ज़ल पूरी तरह चौराहों पर आकर खड़ी हो गई। उसने राजनीतिक स्वार्थपरता, संकीर्णता, मूल्यहीनता, अराजकता और आतंकवाद आदि बड़े विषयों को भी व्यक्त करना शुरू कर दिया था।

स्वतंत्रता के बाद के हिंदी ग़ज़लकारों का नेतृत्व दुष्यंत कुमार कर रहे थे। इनकी देखा-देखी जनमानस की आवाज को उठाने वाले ग़ज़लकारों की एक बड़ी जमात खड़ी हो गई थी। इस जमात में दुष्यंत कुमार के अतिरिक्त चंद्रसेन विराट, गोपालदास नीरज, सूर्यभान गुप्त, डॉ. कुँवर बेचैन, रामावतार त्यागी, बालस्वरूप राही, जहीर कुरैशी, शेरजंग गर्ग, बेकल उत्साही, डॉ. रोहिताश्व अस्थाना डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल, डॉ. हनुमंत नायडू, भवानी शंकर, अंजना संधीर डॉ. उर्मिलेश, डॉ. रामकुमार कृषक, धनंजय सिंह, डॉ. शिवओम अम्बर, शलभ श्रीराम सिंह, अदम गोंडवी, रामकुमार कृषक, भवानी शंकर, पुरुषोत्तम प्रतीक, हरजीत सिंह, नार्वी, आलोक श्रीवास्तव और अजय प्रसून आदि प्रमुख ग़ज़लकार थे। इन सब ने हिंदी ग़ज़ल की परम्परा को वहां लाकर खड़ा कर दिया जहाँ से इनके अनुज ग़ज़लकार उर्दू ग़ज़लकारों के साथ बैठकर ग़ज़ल लिखते रहें हैं। जो किसी भी दृष्टि से उर्दू ग़ज़ल से कमतर नहीं हैं। वैसे भी उर्दू ग़ज़ल और हिंदी ग़ज़ल इस युग तक आते-आते इतनी घुल मिल गई है कि यह पहचान पाना मुश्किल होता है कि ये कौन सी भाषा की ग़ज़ल है। वर्तमान समय में हिंदी ग़ज़ल को समृद्ध करने का काम शिवशंकर मिश्र, बल्लीसिंह चीमा, एहतराम इस्लाम, कमल किशोर श्रमिक, माधव कौशिक, राम मेंश्राम, देवेन्द्र आर्य, आनंद परमानंद, नूर मुहम्मद नूर, इंदु श्रीवास्तव, कुमार विनोद, विनय कुमार, मालिनी गौतम और मृदुला अरुण आदि प्रमुख ग़ज़लकार कर रहें हैं। इनकी बदौलत आज हिंदी ग़ज़ल का सूर्य सिर के ऊपर चमचमा रहा है।

5.5 स्वातंत्र्योत्तर हिंदी ग़ज़ल और दुष्यंत कुमार की ग़ज़ल

दुष्यंत कुमार की गजलें व्यक्तिगत पीड़ा और सामाजिक वैषम्य की पृष्ठभूमि पर लिखी गई हैं। गज़लकार ने इन गज़लों में सत्ता का सलूक, शोषित-पराजित इंसान की विवशता, संघर्ष और घुटन, राजनीतिक साजिश, परिवर्तन और क्रांति की जरूरत आदि अनेक मुद्दों को उठाया है। आजादी के बाद हिंदी गजलों का सही विकास देखने को मिलता है। गज़लकार की सामाजिक और राजनीतिक चेतना बहुत प्रखर है और इन गज़लों में व्यंग्य की धार बहुत पैनी है। उनकी गज़लों में शोषण, पराजय, दैन्य, उत्पीड़न और व्यवस्था की निर्भीक अभिव्यक्ति है। उनका आस्था का केंद्र ईश्वर नहीं, मनुष्य है। उन्हें सामाजिक वैषम्य बहुत गहरे तक कुरेदता है। वह राजनेता की भूमिका को बारीकी से देखते हैं और राजनीतिक स्वतंत्रता के बाद मोहभंग की स्थिति का यथार्थता से चित्रण प्रस्तुत करते हैं। दुष्यंत कुमार सामाजिक परिवेश में व्याप्त भ्रांतियों और विकृतियों को पहचानते हैं। वह क्रांति के विरुद्ध लोगों द्वारा सलीब पर चढ़ाये जाने की चेतावनी भी समझते हैं और इस भयावह परिवेश में जीने की बाध्यता भी जानते हैं। वह शोषकपरक तहजीब को खुलेआम बयान करते हैं जहां आदमी को भूनकर खाया जाता है और व्यवस्था के अनुरूप, यथास्थिति को आतंक के दम पर पोषित किया जाता है।

दुष्यंत कुमार ने अपनी गजलों में अपने समय के यथार्थ परिवेश को अभिव्यक्त किया है। देश में आम आदमी की पीड़ा, मानवीय मूल्यों का विघटन, मोहभंग, अत्याचार, भ्रष्टाचार, गरीबी, बेरोजगारी, महंगाई, आर्थिक विषमता, साम्प्रदायिकता और अलगाववाद आदि समस्याएँ फैल रही थीं। इन सभी समस्याओं को दुष्यंत कुमार ने अपनी गजलों का मुख्य विषय बनाया है। अब हम देखेंगे कि दुष्यंत कुमार ने अपनी गजलों में उस स्वर को कैसे व्यक्त किया है? जिससे हिंदी गज़ल ने अपने आप को 'गज़ल के इतिहास' में स्थापित किया, और अपनी एक अनोखी पहचान बनाई है। इसके लिए हम देश की तत्कालीन स्थितियों से कुछ बिन्दुओं को उठाकर आधार बनाएँगे-

5.5.1 आम आदमी की समस्याओं का यथार्थ चित्रण

दुष्यंत कुमार ने अपनी गजलों में सबसे ज्यादा आम-आदमी को केंद्र में रखा है। उसी से जुड़े हुए प्रश्नों, मुद्दों और समस्याओं को गज़ल में उठाया है। गज़लों में व्यक्त पीड़ा आदमी के साथ-साथ दुष्यंत कुमार की भी है। उन्होंने भी उस दुःख दर्द को भोगा है इसलिए वे कहते हैं कि 'मैं जिसे ओढ़ता बिछाता हूँ, वो गज़ल आप को सुनाता हूँ' वे अपनी गजलों में मूलभूत जरूरतों के अभाव से ग्रस्त फटेहाल आम आदमी की समस्याओं को अभिव्यक्त करते हैं। जनता ने आजादी से क्या उम्मीद लगाई थी और क्या हो गया? आम जनता के लिए 'खोदा पहाड़ निकला चूहा' जैसी स्थिति उत्पन्न हो गई थी। जनता निराश, हताश और

विवश थी ,उसे समझ ही नहीं आ रहा था कि अब वो करे भी तो क्या करे? उसका चारों ओर शोषण हो रहा था। उसके लिए दुष्यंत कुमार लिखते हैं कि-

“कल नुमाईश में मिला वो चिथड़े पहने हुए,

मैंने पूछा नाम तो बोला कि हिन्दुस्तान है।”¹

संसार के किसी भी देश में आम आदमी की स्थिति बहुत ही दयनीय है लेकिन भारत में स्थिति कुछ ज्यादा ही खराब है इसलिए दुष्यंत कुमार लिखते हैं कि-

“हालते जिस्म, सूरते जां, और भी खराब,

चारों तरफ खराब, यहाँ और भी खराब।”²

लोगों के पास खाने को रोट्टी ही नहीं बल्कि तन ढकने के लिए कपड़े भी नहीं हैं। वे अपने पेट की आग को कम करने के लिए अपने घुटनों को पेट से चिपकाएँ हुए हैं। यह लोग इस समय की सचाई बयान करने के प्रमाण है। सत्ता ने इनके बारे सोचना ही बंद कर दिया है। दुष्यंत कुमार लिखते हैं कि-

“न हो कमीज तो पांवों से पेट ढक लेंगे,

ये लोग कितने मुनासिब हैं, इस सफर के लिए।”³

जनता की समस्या इतनी बढ़ गई है उसका सारा शरीर पीड़ा की अग्नि में तप रहा है। दुष्यंत कुमार लिखते हैं कि-

“सिर में सीने में कभी, पेट से पांवों में कभी,

एक जगह हो तो कहें दर्द इधर होता है।”⁴

आम आदमी को दुःख, दर्द और पीड़ा ने अपना निशाना बना लिया है। वह उसका पीछा ही नहीं छोड़ते हैं। और न ही रहनुमाओं ने जनता की पीड़ा को दूर करने के लिए उचित कार्य ही किए हैं। दुःख उनके जीवन में

¹ सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 288

² सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 282

³ सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 261

⁴ सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 282

आकर जाने का नाम ही नहीं लेता है जबकि उनके जीवन में सुख कपूर की तरह है जो न जाने कब आता है और दुखों की हवा का स्पर्श पाते ही उड़ जाता है। उनके जीवन में सुख की अनुभूति कुछ पलों के लिए ही होती है। ज्यादातर तो उन्हें दुखों का सहारा ही रहता है। इसलिए दुष्यंत कुमार लिखते हैं कि-

“दुःख को बहुत सहेज के रखना पड़ा हमें,

तो किसी कपूर की टिकिया-सा उड़ गया।”¹

5.5.2 लोकतंत्र, नेता और राजनीति का चित्रण

जब भारत आजाद हुआ, तो देश को चलाने के लिए विद्वानों ने संविधान बनाया। संविधान इस तरह से बनाया गया था कि प्रत्येक स्तर पर होने वाले वर्ग-भेद को समाप्त किया जा सके और देश की नजर में प्रत्येक नागरिक समान होगा, चाहे वह किसी भी वर्ग या धर्म से सम्बन्ध क्यों न रखता हो? उसके साथ किसी भी तरह का भेदभाव दंडनीय अपराध घोषित किया था। देश की जनता लोकतांत्रिक देश बनने की खुशी में पागल हो गई थी। उसे उम्मीद थी कि अब उसके जीवन से दुखों के बादल छट जायेंगे लेकिन उसे नहीं मालूम था कि हमारा देश संविधान से नहीं सामन्ती मूल्यों से चलता है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में बैठे हुए लोग सामन्ती सोच के ही हैं। यह आजादी और लोकतंत्र जनता के लिए नहीं बल्कि सत्ता में बैठे हुए कुछ लोगों के लिए था जिन्होंने उसे अपनी जागीर समझकर अपने यहाँ कैद कर लिया है। जनता के हाथ में कुछ नहीं बचा। उसके हाथ में आजादी रूपी जो चिड़िया आई थी, उसे पता भी नहीं चला कि वह हाथों से कब उड़ गई है। जनता कहने को आजाद देश में साँस ले रही थी लेकिन उसकी स्थिति में कोई आमूल-चूल परिवर्तन नहीं हुआ था। वह अभी भी दाने-दाने के लिए संघर्ष कर रही थी। नेताओं द्वारा किए गए वादे भी मिथ्या सिद्ध हो चुके थे। इसलिए दुष्यंत कुमार लिखते हैं कि-

“कहाँ तो तय चिरागाँ हर एक घर के लिए

कहाँ चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए”²

नेता जनता से किए गए वादों से बचते हुए नजर आ रहे थे। उनकी कथनी-करनी में अंतर आ गया था। वे जनता के हितों की बात करके व्यवस्था में आते थे और व्यवस्था में आते ही अपने हितों को साधने में लग

¹ सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 277

² सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 261

जाते थे इसलिए जनता को आजादी झूठी लगने लगी थी शायद इसलिए ही दुष्यंत कुमार व्यंग्य पूर्ण लहजे में लिखते हैं कि-

“सूर्य हमने भी नहीं देखा सुबह से,
क्या करोगे, सूर्य का क्या देखना है”¹

एक अन्य शेर में दुष्यंत कुमार आजादी रूपी रोशनी को छल या धोखा बताते हुए जनता से कहते हैं कि-

“ये रोशनी है हकीकत में एक छल लोगों,
कि जैसे जल में झलकता हुआ महल लोगों।”²

जनता के लिए आजादी केवल क्षण भर के लिए आई और आकर चली गई। वे आजादी की खुशी भी नहीं मना पाए थे कि नेताओं की भ्रष्ट करतूतों की वजह से आजादी रूपी मेंला ही उझड़ गया था। दुष्यंत कुमार लिखते हैं कि-

“लेकर उमंग संग चले थे हँसी-खुशी,
पहुंचे नदी के घाट तो मेंला उजड़ गया।”³

जनता ने सूर्य रूपी आजादी को देखा ही नहीं था क्योंकि आजादी की किरणें उन तक पहुंची ही नहीं थी। आजादी के सूर्य पर राहू रूपी नेताओं ने ग्रहण लगा दिया था। नेताओं की सियासत जनता की समझ में नहीं आ रही थी। दुष्यंत कुमार राजनीति के विषय में जनता से कहते हैं कि-

“मस्तहत आमंज होते हैं सियासत के कदम,
तू न समझेगा सियासत तू अभी इंसान है।”⁴

देश की सियासत में सौ-सौ कोस के बलात्कारी, लुटेरे, कातिल, चोर शामिल हो गए थे इसलिए ग़ज़लकार कहता है कि सियासत इंसानों की समझ में आने वाली चीज नहीं है। उन्होंने जनता को पागल बनाने के

¹ सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 270

² सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 271

³ सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 278

⁴ सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 288

सिवा कुछ नहीं किया है। जनता की भूख और रोटी के मुद्दों को देश की संसद में आम जनता की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए उठाते हैं क्योंकि उनकी बातों का असर जमीन पर होता ही नहीं है। केवल बहस का एक मुद्दा बनकर रह जाता है। जनता को चर्चा से ही सब्र करना पड़ता है। इसलिए दुष्यंत कुमार कहते हैं कि-

“भूख है तो सब्र कर, रोटी नहीं तो क्या हुआ,

आजकल दिल्ली में हैं ज़ेरे बहस ये मुद्दा।”¹

इस लोकतांत्रिक देश में जनता केवल झुनझुना बनकर रह गई है जिसे जब जी करता है कोई भी नेता बजाकर चला जाता है। उसकी समस्याओं से किसी का सरोकार नहीं है। वह इस लोकतंत्र में वोट डालने का एक ठप्पा बनकर रह गई है या यूँ कहें कि जनता नेताओं के हाथों की कठपुतली बनकर रह गई है। दुष्यंत कुमार जनता की दयनीय स्थिति को देखकर कहते हैं कि-

“जिस तरह चाहो बजाओ इस सभा में,

हम नहीं है आदमी हम झुनझुने हैं।”²

जनता को लगता है इस लोकतांत्रिक देश में हमारा कोई अस्तित्व ही नहीं है। हमारी सुनने वाली हुकूमत नहीं है। दुष्यंत कुमार जनता की निराशा और हताशा को व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि-

“हमको पता नहीं था हमें अब पता चला

इस मुल्क में हमारी हुकूमत नहीं रही।”³

जनता को लगने लगा है कि हम अपने देश में ही भटक गए हैं। अब हमारा कुछ उद्धार नहीं हो सकता है। खुदा जाने हमारी जीवन रूपी नौका कैसे किनारे लगेगी। इसलिए दुष्यंत कुमार लिखते हैं कि-

“मेंले में भटके होते तो कोई घर पहुँचा जाता,

हम घर में भटके हैं, कैसे ठौर-ठिकाने आएँगे।”⁴

¹ सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.सं.- 266

² सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.सं.- 280

³ सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.सं.- 264

⁴ सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.सं.- 276

नेताओं ने इस देश की नौका को डुबाने का कार्य किया है इसलिए दुष्यंत कुमार जनता से ही उम्मीद करते हैं कि आप ही इस बिगड़ती स्थिति को संभाल सकते हो। इन नेताओं के भरोसे मत बैठे रहो। ये कुछ करने वाले नहीं हैं। इनकी कथनी-करनी में अंतर है। इनकी जुबान लोकतंत्र की तरह झूठी है। लोकतंत्र में भी हमारे लिए बड़े-बड़े प्रावधान थे। कहाँ गए वे प्रावधान जो हमें आज तक नहीं मिले हैं इसलिए दुष्यंत कुमार नेताओं और लोकतंत्र को झूठा कहते हैं। ये नेता लोग भद्दी-सी गाली से ज्यादा अच्छे नहीं हैं। दुष्यंत कुमार लिखते हैं कि-

“रहनुमाओं की अदाओं पे फ़िदा है दुनिया,
इस बहकती हुई दुनिया को संभालों यारों।”¹
“तेरी जुबान है झूठी जम्हूरियत की तरह,
तू एक ज़लील-सी गाली से बेहतरीन नहीं।”²

दुष्यंत कुमार ये भी जानते हैं कि स्थिति अब बहुत नाजुक हो चुकी है। यहाँ से स्थिति को संभाल पाना मुश्किल है लेकिन इन नेताओं ने स्थिति को इतना विषम बना दिया है कि अब उनसे इसको संभाल पाना मुश्किल है। दुष्यंत कुमार लिखते हैं कि-

“देख, दहलीज़ से काई नहीं जाने वाली,
ये खतरनाक सच्चाई नहीं जाने वाली।
कितना अच्छा है कि साँसों की हवा लगती है,
आग अब उनसे बुझाई नहीं जाने वाली।”³

इसलिए दुष्यंत कुमार जनता से कहते हैं कि इन नेताओं से अपने अधिकार छीन के लेने पड़ेंगे। आपको सड़कों पर निकलकर चीखना पड़ेगा उनके बंद कानों में तभी आवाज जा सकती है। इन नेताओं को पेट भर कर गालियाँ दो और आह भरकर बहुआ। साथ ही जनता से सड़कों पर निकलकर आन्दोलन करने को कहते हैं लेकिन जनता भी कुछ करने के लिए तैयार ही नहीं लगती है। इसलिए दुष्यंत कुमार लिखते हैं कि

¹ सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 283

² सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 291

³ सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 263

अब शहर में कोई वारदात हो या बारात, किसी बात पर खुलती नहीं है खिड़कियाँ। लोग भी अपने अधिकारों को लेकर उदासीन नजर आते हैं। इसलिए वे लिखते हैं कि-

“यहाँ तो सिर्फ गूँगे और बहरे लोग बसते हैं,
खुदा जाने यहाँ पर किस तरह जलसा हुआ होगा।”¹

5.5.3 विद्रोह का स्वर

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य में ही नहीं, बल्कि हिंदी ग़ज़ल में भी विद्रोह का कड़ा स्वर सुनाई देता है। स्वतंत्रता के बाद मोहभंग का दौर था। मोहभंग के कारण सत्ता और व्यवस्था के खिलाफ जनता में विद्रोह की भावना पनपने लगती है जिसकी प्रतिक्रिया हमें हिंदी ग़ज़ल में दिखती है। दुष्यंत कुमार की ग़ज़लें जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। व्यवस्था से आम जनता को जो उम्मीदें थीं वे लम्बे समय तक जब पूरी होती नहीं दिख रही थीं तो जनता की उम्मीदें विद्रोह में बदलने लगीं। जनता की पीड़ा पर्वत के समान हो रही थी, साथ ही समस्या हल होती नहीं दिख रही थी। जनता ने सत्ता के खिलाफ आवाज़ उठाना शुरू कर दिया था। इस संदर्भ में दुष्यंत कुमार लिखते हैं कि-

“हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए,
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।
हर सड़क पर, हर गली में, हर नगर, हर गाँव में,
हाथ लहराते हुए हर लाश चलनी चाहिए।”²

दुष्यंत कुमार कहते हैं कि अब हमें सड़कों और गलियों पर निकलकर अपने अधिकारों के लिए मांग करनी होगी, तभी सत्ता के कान पर जूँ चल सकती है। घर में बैठकर बात बनाने से कुछ नहीं होगा। सड़कों पर निकलकर हंगामा करने की आवश्यकता है। दुष्यंत कुमार इस संदर्भ में लिखते हैं कि-

पक गई आदतें, बातों से सर होगी नहीं,

¹ सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 262

² सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 272

कोई हंगामा करो, ऐसे गुजर होगी नहीं।¹

दुष्यंत कुमार जनता को यह भी बता देते हैं कि सिर्फ बातों के द्वारा हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं है मेरी कोशिश है कि हर हाल में जनता को समस्याओं से छुटकारा मिलना चाहिए। वे शोषणकारी सत्ता को उखाड़कर फेंक देना चाहते हैं इसलिए वे लिखते हैं कि-

“सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं,
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।
आज यह दीवार, परदों की तरह हिलने लगी,
शर्त लेकिन थी कि ये बुनियाद हिलनी चाहिए।”²

साथ ही जनता से कहते हैं कि डरने की आवश्यकता नहीं है। हमें आज नहीं तो कल घरों से निकलकर अपने अधिकारों के लिए लड़ना पड़ेगा ही। हमें जान लेना चाहिए कि बिना मांगे और लड़े कुछ नहीं मिलता है इसलिए हमें अपने दिल से डरों को निकालकर अपने अधिकारों की मांग करनी होगी। दुष्यंत कुमार लिखते हैं कि-

“पुराने पड़ गए डर, फेंक दो तुम भी,
ये कचरा आज बाहर फेंक दो तुम भी।”³

हम यदि सड़कों पर निकलकर सत्ता से अपने अधिकारों की मांग करेंगे और अधिकारों के लिए लड़ेंगे तो कुछ न कुछ जरूर होगा इसलिए दुष्यंत कुमार जनता से कहते हैं कि-

“कैसे आसमान में सूराख नहीं हो सकता,
एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारों।”⁴

¹ सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.सं.- 284

² सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.सं.- 272

³ सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.सं.- 274

⁴ सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.सं.- 283

दुष्यंत कुमार जनता से आह्वाहन करते हुए कहते हैं कि इस जनता विरोधी व्यवस्था को बदलने का समय आ गया है। व्यवस्था के कार्यों से जनता बहुत परेशान हो चुकी है। इनके कार्यों से देश रूपी तालाब का पानी सड़ने लगा है। इस संदर्भ में वे लिखते हैं कि-

“अब तो इस तलाब का पानी बदल दो,

ये कँवल के फूल कुम्हलाने लगे हैं।”¹

जनता के अधिकारों के लिए लड़ते हुए दुष्यंत कुमार को अपने जीवन में व्यक्तिगत रूप से सत्ता की चुनौतियों का सामना भी करना पड़ा था। उन्हें कई बार जवाब-तलब किया गया लेकिन उसके बाद और मुखर रूप से होकर लिखने लगे। वे लिखते हैं कि-

“तेरा निज़ाम है सिल दे जुबान शायर की,

ये एहतियात ज़रूरी है इस बहर के लिए।”²

एक अन्य गजल में व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि-

“हिम्मत से सच रखो तो बुरा मानते हैं लोग,

रो रो के बात कहने की आदत नहीं रही।”³

दुष्यंत कुमार सत्ता की आँखों में आखें डालकर कहते हैं कि मैं चुप या लिखना बंद नहीं कर सकता हूँ। मैं अपने जैसे करोड़ों लोगों का प्रतिनिधित्व करता हूँ। मेरी गजलों में सिर्फ मेरा दर्द या पीड़ा नहीं है इसमें मेरे जैसे करोड़ों शोषित और पीड़ित लोगों की वेदना शामिल है। मेरी गजलें निरंकुश और शोषणकारी व्यवस्था के खिलाफ़ बयान और विद्रोह की पहली चिंगारी है। दुष्यंत कुमार लिखते हैं कि-

“मुझमें रहते हैं करोड़ों लोग चुप कैसे रहूँ,

हर गजल अब सल्तनत के नाम एक बयान है।”⁴

¹ सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 261

² सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 261

³ सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 264

⁴ सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 288

जनता को अपने अधिकारों के लिए जबान खोलनी ही पड़ेगी। यदि अपने अधिकारों की मांग नहीं करोगे तो जिन्दगी जीना कठिन हो जायेगा इसलिए दुष्यंत कुमार लिखते हैं कि-

“ये जुबाँ हमसे सी नहीं जाती,
जिंदगी है कि जी नहीं जाती।”¹

5.5.4 आर्थिक मोहभंग की स्थिति का चित्रण

स्वतंत्रता के बाद की हिंदी ग़ज़ल में आर्थिक स्थिति से परेशान जनता का चित्रण यथार्थ रूप में हुआ है। जनता की माली हालत बहुत खस्ता थी। वह अपनी रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी मूलभूत आवश्यकताओं के अभाव में गुजर-बसर कर रही थी। उसने आज़ादी के समय सपने देखे थे कि अब उसे सारी सुख-सुविधाएँ मिलेंगी और दो जून की रोटी प्राप्त करने के लिए कोल्हू के बैल की तरह काम नहीं करना पड़ेगा। जनता इन सारी उम्मीदों के साथ अच्छे दिनों का इंतजार करने लगी लेकिन लम्बे समय के बाद भी उसे अपनी माली हालत में सुधार नहीं दिखाई दिया। उसकी स्थिति पहले से भी दयनीय हो गई। उसे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संघर्ष करना पड़ा। उसके बच्चों के लिए ना खाना, ना शरीर ढकने के लिए कपड़ा, ना सिर पर छत, ना बीमारी के लिए स्वास्थ्य सेवा और ना शिक्षा के लिए अच्छे विद्यालय आदि थे। यदि किसी तरह पढ़-लिख भी गए तो उनको रोजगार की तलाश में दर-दर भटकना पड़ता। बेरोजगारी की समस्या से आर्थिक स्थिति और दयनीय हो गई थी। वहीं देश का दूसरा वर्ग व्यवस्था के साथ मिलकर रात दिन तरक्की कर रहा था। उसने जनता के श्रम से अपने लिए दौलत का पहाड़ खड़ा कर लिया था जहाँ से उसे आम आदमी कीड़े-मकोड़ों की तरह रेंगते हुए नजर आते थे। देश में आर्थिक विषमता लगातार बढ़ रही थी। व्यवस्था ने आज़ादी के समय जनता से गरीबी-अमीरी की खाई को कम करने के जो वादे किए थे वह सब झूठे साबित होते हैं। जनता के उद्धार के नाम पर आने वाली योजनाएँ बीच में ही गायब हो जाती थीं। स्वार्थी नेता और चाटुकारों का पेट इतना बढ़ गया था कि योजनाओं के बड़े भाग को हजम कर जाते थे। जनता के नाम पर आने वाली योजनाओं के विषय में दुष्यंत कुमार लिखते हैं कि-

“यहाँ तक आते-आते सूख जाती हैं कई नदियाँ,

¹ सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 281

मुझे मालूम है पानी कहाँ ठहरा हुआ होगा।”¹

नेता इन योजनाओं का विज्ञापन इतने जोर-सोर से करवाते हैं कि जैसे जनता की सभी समस्याएँ हल हो गई हैं। नेताओं की इस प्रवृत्ति के विषय में दुष्यंत कुमार लिखते हैं कि-

“अब किसी को भी नज़र आती नहीं कोई दरार,
घर की हर दीवार पर चिपके हैं इतने इश्तहार।”²

योजनाओं के विज्ञापन को अखबारों में पढ़कर दुष्यंत कुमार व्यंग्य करते हुए लिखते हैं कि-

“रोज़ अखबारों में पढ़कर ये ख्याल आया हमें,
इस तरफ आती तो हम भी देखते फ़सलें-बहार।”³

जनता को व्यवस्था में फैली भ्रष्टाचार की प्रवृत्ति के कारण योजना का लाभ नहीं मिल पाता। व्यवस्था की प्रत्येक सड़क पर भ्रष्टाचार का कीचड़ जमा हुआ था और उससे प्रत्येक के पाँव गन्दे थे या भ्रष्टाचार में सभी शामिल थे। दुष्यंत कुमार इस संदर्भ में लिखते हैं कि-

“हर सड़क पर इस तरह कीचड़ बिछा है,
हर किसी का पाँव घुटनों तक सना है।”⁴

जनता को लगने लगा था कि इस आज़ादी का हमारे लिए कोई अर्थ नहीं है। हमारा पहले भी शोषण हो रहा था और आज भी हो रहा है, फर्क केवल इतना है कि पहले अंग्रेज कर रहे थे आज अपने लोग ही कर रहे हैं। जनता को आज़ादी के वृक्ष के नीचे, जिस सुख रूपी छाया की उम्मीद थी उसे वह नसीब ही नहीं हो रही थी, उसे तो दुखों की धूप लग रही थी। दुष्यंत कुमार इस मोहभंग की स्थिति का चित्रण करते हुए लिखते हैं कि-

“यहाँ दरख्तों के साये में धूप लगती है,

¹ सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 262

² सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 291

³ सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 291

⁴ सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 270

चलो यहाँ से चलो उग्र भर के लिए”¹

आम आदमी अपनी जरूरतों को पूरा करते-करते टूट जाता है लेकिन फिर भी उसके जीवन का संघर्ष खत्म नहीं होता है। उसे रोज खाने के लिए रोज कमाना पड़ता है। उसे ऐसा रोजगार नहीं मिलता है कि जिससे वह बुढ़ापे में चैन से बैठकर जीवन यापन कर सके। दुष्यंत कुमार श्रम से टूटे व्यक्ति का चित्रण करते हुए लिखते हैं कि-

“ये जिस्म झुककर बोझ से दुहरा हुआ होगा,

मैं सजदे में नहीं था, आपको धोखा हुआ होगा।”²

जनता के जीवन से संघर्ष जाने का नाम ही नहीं लेता है। उसकी आर्थिक स्थिति इतनी दयनीय हो गई है कि वह भूखा रह-रह कर मर जाता है और हमारे रहनुमा उसकी मौत को भी अपने अपने ढंग से व्याख्यित करते हैं। दुष्यंत कुमार रहनुमाओं के विषय में लिखते हैं कि-

“कई फाके बिताकर मर गया, जो उसके बारे में,

वो सब कहते हैं अब, ऐसा नहीं, ऐसा हुआ होगा।”³

भूख के कारण लोगों के शरीर सूखकर लकड़ी हो गए हैं। जनता में हाहाकार मचा हुआ है। देश की आर्थिक स्थिति इतनी खराब है कि दुष्यंत कुमार पीड़ित जनता को देखकर कहते हैं कि-

“हालते जिस्म, सूरते जाँ, और भी खराब,

चारो तरफ खराब, यहाँ और भी खराब।”⁴

देश के नेताओं ने देश की हालत सुधारने का वचन दिया था लेकिन इन्होंने तो स्थिति को और नाजुक बना दिया है इस लिए दुष्यंत कुमार लिखते हैं कि-

“मूरत सँवारने में बिगड़ती चली गई,

¹ सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 261

² सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 262

³ सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 262

⁴ सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 282

पहले से हो गया है जहाँ और भी खराबा।”¹

5.5.5 महानगरीय बोध

आज़ादी के बाद नेताओं ने औद्योगिक प्रगति पर ज्यादा जोर दिया था जिससे नगरों-महानगरों का विकास बहुत तेजी से होने लगा था, साथ ही एक महानगरीय संस्कृति भी विकसित हुई जिसने भारतीय प्राचीन संस्कृति पर प्रहार किया। समाज में विसंगति, विद्रूपताएं और विडम्बनाएं देखने को मिलने लगती हैं। इंसान नगरों-महानगरों में जाकर अपने मानवीय मूल्यों का त्याग करने लगता है। वह इतना स्वार्थी बन जाता है कि अपने आत्मीय सम्बन्धों को भी नजरअंदाज करने लगता है। उसके व्यवहार में औपचारिकता की प्रवृत्ति दिखाई देने लगती है। मानवता से उसका कोई सरोकार नहीं रहता है। वह लोगों से घिरा होकर भी अकेला है और जिससे भी सम्बन्ध रखता है तो अपने स्वार्थों को सिद्ध करने के लिए रखता है। वह वहां की चकाचौंध भरी जिन्दगी में अपनों को भूल जाता है। वह सबसे आगे निकलने की अंधी दौड़ में दौड़ने लग जाता है जिसकी अपनी एक पीड़ा और अपना दुःख है। इस संदर्भ में दुष्यंत कुमार लिखते हैं कि-

“ये धुएँ का एक घेरा कि मैं जिस में रह रहा हूँ,

मुझे किस कदर नया है, मैं जो दर्द सह रहा हूँ।”²

इंसान ऊपरी तौर पर महानगरों की चकाचौंध भरी जिन्दगी में सफल लगता है लेकिन साथ ही वह अंदर से एक पीड़ा और दर्द से भी गुजर रहा होता है। गाँव में जब वह रहता था तो उसके पास जरूर अभाव था लेकिन अभाव के बावजूद जिन्दगी में सुख और सुकून था लेकिन महानगरों में उसके भाग दौड़ भरे जीवन से सब सुख-चैन और सुकून छिन जाता है इसलिए दुष्यंत कुमार लिखते हैं कि-

“ये रोशनी का दर्द, ये सिहरन, ये आरजू,

ये चीज जिन्दगी में नहीं थी तो लीजिए।”³

महानगरों में चकाचौंध की प्रवृत्ति इतनी विकसित हो गई है कि एक-दूसरे से अधिक आधुनिक दिखने के लिए लोग कुछ भी करने के लिए तैयार रहते हैं। भारतीय लोगों ने पाश्चात्य या महानगरों की संस्कृति से

¹ सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 282

² सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 285

³ सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 274

अच्छे गुणों की तुलना में बुरे गुणों को अधिक ग्रहण किया है। या यूँ कहें कि लोगों ने उनकी ऊपरी संस्कृति को ही ग्रहण किया है, उनके अंदरूनी अच्छाईयों को ग्रहण नहीं किया है। उनके जीवन के कठिन परिश्रम और कार्य करने की लगन आदि प्रवृत्ति को देखते नहीं हैं, केवल उनके खान-पान, वेशभूषा को अपनाते हैं। वेशभूषा के नाम पर इंसानों ने अंग प्रदर्शन शुरू कर दिया है। मैं यहाँ लड़का-लड़की दोनों के संदर्भ में यह कह रहा हूँ। दुष्यंत कुमार लिखते हैं कि-

“जिस्म पहरावों में छिप जाते थे, पहरावों में-

जिस्म नंगे नजर आने लगे, ये तो हद है।”¹

5.5.6 साम्प्रदायिकता

आजादी के बाद संविधान निर्माताओं ने भारत को एक धर्मनिरपेक्ष देश बनाया है क्योंकि वे जानते थे कि भारत में विभिन्न धर्मों के मानने वाले लोग रहते हैं। देश का अपना कोई विशेष धर्म नहीं होगा। उसकी नज़र में सभी धर्म समान होंगे लेकिन आजादी के बाद सत्ता के लोलुप नेताओं ने धर्म के नाम पर जनता को बाँटना शुरू कर दिया। धर्म के आधार पर लोगों के बंटवारे ने साम्प्रदायिक समस्या को जन्म दिया है। धर्म की खाई लोगों के दिलों में इतनी बैठ गई है कि लोग एक-दूसरे को संदेह की नजर से देखते हैं। अब तो चुनावी माहौल बनाने के लिए भी नेता साम्प्रदायिक घटनाओं का सहारा लेते हैं। जब भी कोई चुनाव होता है तो कोई न कोई सांप्रदायिक घटना जरूर घटती है। यह सब नेताओं के इशारे पर होता है। दुष्यंत कुमार कहते हैं कि अब तो सड़कों पर टहलने, निकलने के लिए डर लगता है क्योंकि आसमानों से पत्थरबाजी का डर लगा रहता है। पत्थरबाजी से शुरुआत होती है और फिर साम्प्रदायिक घटना पूरे क्षेत्र को अपने आगोष में ले लेती है। आग की लपटें दुकानों और घरों को निगल लेती हैं। असामाजिक तत्व लोगों की सम्पत्ति को जलाने के साथ-साथ लूटते भी हैं। माँ-बेटियों का भी बलात्कार होता है। साम्प्रदायिक समस्या आम जनता के लिए वर्तमान समय की बहुत बड़ी समस्या है। दुष्यंत कुमार इसकी तरफ इशारा करते हुए लिखते हैं कि-

“सैर के वास्ते सड़कों पे निकल आते थे,

अब तो आकाश से पथराव का डर होता है।”²

¹ सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 287

² सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 282

“खिड़कियाँ, नाचीज गलियों से मुखातिब हैं,

अब लपट शायद मकानों तक पहुँचती है।”¹

“लपट आने लगी है अब हवाओं में,

ओसारे और छप्पर फेंक दो तुम भी।”²

5.5.7 प्रेम का चित्रण

ग़ज़ल का मुख्य विषय ‘प्रेम’ की अभिव्यक्ति रहा है लेकिन हिंदी ग़ज़ल में स्वतंत्रता के बाद यह गौण होता दिखता है। आज़ादी के बाद ग़ज़लकारों ने अपने समय का यथार्थ-चित्रण ग़ज़लों में करना शुरू किया था क्योंकि आज़ादी के बाद की विषम परिस्थितियों में आम जनता पीड़ा से कराह रही थी। इस कराह से विचलित होकर ग़ज़लकारों ने आम आदमी के प्रश्नों, मुद्दों और समस्या आदि को ग़ज़ल के माध्यम से व्यक्त करना शुरू किया था। इसी के कारण ‘प्रेम’ की बातें ग़ज़लकार कुछ कम कर रहे थे लेकिन ऐसा बिलकुल नहीं है कि प्रेम-मोहब्बत की ग़ज़ल लिखी या कहीं नहीं जा रही थी। दुष्यंत कुमार ने भी कुछ प्रेम-मोहब्बत भरी ग़ज़लें लिखी हैं जिनमें प्रेम की बहुत सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। वे अपनी ग़ज़ल में नायिका के विषय में कल्पना करते हुए लिखते हैं कि-

“चाँदनी छत पे चल रही होगी, अब अकेली टहल रही होगी।

फिर मेंरा जिक्र आ गया होगा, वो बर्फ-सी पिघल रही होगी।

कल का सपना बहुत सुहाना था, वो उदासी न कल रही होगी।

सोचता हूँ कि बंद कमरे में, एक शमआ-सी जल रही होगी।

शहर की भीड़-भाड़ से बचकर, तू गली से निकल रही होगी।

तेरे गहनों-सी खनखनाती थी, बाजरे की फसल रही होगी।

जिन हवाओं ने तुझको दुलराया, उनमें मेरी ग़ज़ल रही होगी।”³

¹ सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 268

² सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 274

³ सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 270

दुष्यंत कुमार की एक और ग़ज़ल में नया-नया प्रेमी ख्वाब बुनता है। उस स्थिति का मार्मिक चित्रण दुष्यंत कुमार इस प्रकार करते हैं कि-

“अगर खुदा न करे सच ये ख्वाब हो जाए,
तेरी सहर हो मेंरा आफ़ताब हो जाए।
हुजुर आरिज़ों-रुख़सार क्या तमान बदन,
मेंरी सुनो तो मुजिस्सिम गुलाब हो जाए।
बहुत क़रीब न आओ यकीं नहीं होगा,
ये आरजू भी अगर कामयाब हो जाए।”¹

नया प्रेमी अपनी प्रेमिका को जब भी मिलता है तो उसे देखता ही रहता है लेकिन उसे देखते रहने की चाहत कभी खत्म होने का नाम ही नहीं लेती है। और उसका मन ख़रगोश की तरह अपनी प्रेमिका के लिए कुछ भी कर गुजरने की चाहत में ख्वाब बुनता रहता है। दुष्यंत कुमार ग़ज़ल में लिखते हैं कि-

“तुमको निहारता हूँ सुबह से ऋतंबरा,
अब शाम हो रही है मगर मन नहीं भरा।
ख़रगोश बन के दौड़ रहे हैं तमाम ख्वाब,
फिरता है चाँदनी में कोई सच डरा-डरा।”²

प्रेमी प्रेमिका को देखते-देखते, उसकी आँखों की गहराई में खोकर उससे कहता है, तेरी आँखों की गहराई रूपी जंगल में डूब जाता हूँ या खो जाता हूँ। जब भी तू मेरे पास से गुजरती है तो मेंरी बात करने की इच्छा होती है लेकिन मैं तुझे देखकर ऐसे कांपने लगता हूँ जैसे किसी रेल की गुजरने पर पुल कांपने लगता है। तुझे भूलने की असफल कोशिश भी करता हूँ लेकिन भूल ही नहीं पाता हूँ। दुष्यंत कुमार ग़ज़ल में लिखते हैं कि-

“एक जंगल है तेरी आँखों में, मैं जहाँ राह भूल जाता हूँ

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.सं.- 278

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.सं.- 281

तू किसी रेल-सी गुजरती है, मैं किसी पुल-सा थरथराता हूँ

मैं तुझे भूलने की कोशिश में, आज कितने करीब पाता हूँ”¹

उपरोक्त विवेचन-विश्लेषण के बाद कहा जा सकता है कि स्वातंत्र्योत्तर हिंदी ग़ज़ल ने अपने समय को यथार्थ रूप में अभिव्यक्त किया है। आज़ादी के बाद देश की परिस्थितियाँ तेज़ी से बदल रही थीं जिसका प्रभाव प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से जनता पर पड़ रहा था। इन परिस्थितियों के परिवर्तित होने में राजनीतिक गतिविधियों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। व्यवस्था में बैठे लोग योजनाओं का कार्यान्वयन ठीक से नहीं कर पाये थे। भ्रष्टाचार के कारण योजनाओं का लाभ आम आदमी को नहीं मिल पा रहा था। समाज में बेईमानी, झूठ और फरेब का बोलबाला था। भ्रष्टाचार लोगों की नसों में खून की तरह दौड़ रहा था। नगर की विकसित संस्कृति ने मानवीय मूल्यों के पतन में मुख्य भूमिका निभाई। वहाँ के लोग स्वार्थ की प्रवृत्ति से ग्रसित होने के कारण संवेदनहीन हो चुके थे। आम आदमी के जीवन में सिर्फ दुःख और पीड़ा के सिवा कुछ नहीं था। उसकी खुशी केवल नेताओं के भाषणों में बची थी। वह जिन्दगी का बोझ ढोते-ढोते टूटकर दोहरा हो रही थी। जनता का आज़ादी और व्यवस्था से मोहभंग हो चुका था। देश का लोकतंत्र जनता के लिए गाली बन गया था। नेता चुनाव जीतने के बाद जनता की सुध नहीं लेते थे। वे वातानुकूलित कमरों में बैठकर जनता की समस्याओं को हल करते थे। देश की राजनीति का मतलब भ्रष्ट और स्वार्थी नेताओं का जमघट हो गया था। नेताओं ने जनता को सत्ता पाने लिए साम्प्रदायिकता की आग में झोकने का काम किया जो आज़ादी के बाद की प्रमुख समस्या बनकर उभरी है। नेताओं ने आज़ादी के बाद देश की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए औद्योगिक गतिविधियों को बढ़ावा दिया था लेकिन उससे आम जनता का फायदा कम, शोषण अधिक हुआ था। जनता पूरे दिन श्रम करने के बाद भी सुकूनभरा जीवन पाने में असमर्थ थी। जनता के श्रम से पूंजीपतियों ने अपनी तिजोरियों को भर लिया था। देश में आर्थिक विषमता अपने चरम बिन्दु पर पहुँच रही थी। आज़ादी के बाद अमीर और अधिक अमीर, गरीब और गरीब हो गए थे। देश की व्यवस्था युवाओं को उचित अनुपात में रोजगार देने में नाकाम हो चुकी थी। परिणाम ये हुआ कि देश में महँगाई की दर लगातार बढ़ रही थी। आम आदमी अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने में नाकाम हो रहा था।

स्वतंत्रता के बाद की ग़ज़लों में प्रेम की सजीव और मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है लेकिन इस दौर की ग़ज़लों में प्रेम मुख्य विषय ने होकर गौण विषय रहा है क्योंकि स्वतंत्रता के बाद की ग़ज़लों ने मुख्य विषय

¹ सं.विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली- 2, पृ.स.- 290

के रूप में आम आदमी के प्रश्नों, मुद्दों और समस्याओं आदि को चुना है, साथ ही उसकी दयनीय स्थिति के लिए उत्तरदायी व्यक्ति और व्यवस्था को भी विषय बनाया है। ये सभी बिन्दु स्वातंत्र्योत्तर हिंदी ग़ज़ल की विशेषताएँ कही जा सकती हैं। यह स्वातंत्र्योत्तर हिंदी ग़ज़ल का मुख्य स्वर है। दुष्यंत कुमार की ग़ज़लें इसका प्रमाण हैं। वे सही मायनों में आम जनता का प्रतिनिधित्व करने वाले ग़ज़लकार हैं।

छठा अध्याय:

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिदृश्य और दुष्यंत कुमार का काव्य

पंद्रह अगस्त उन्नीस सौ सैंतालिस को लम्बे संघर्ष के बाद भारत को स्वतंत्रता मिली क्योंकि भारत के स्वतंत्रता सेनानियों ने ब्रिटिश हुकूमत की गुलामी की जंजीरों को उखाड़कर फेंक दिया था। एक तरफ़ स्वतंत्रता की खुशी थी तो दूसरी ओर भारत विभाजन का मातम छाया हुआ था। लोग अपने घरों को छोड़कर इधर-उधर, आ-जा रहे थे। और अपने ही देश में शरणार्थियों का सा जीवन जीने के लिए विवश थे। इस दौरान लाखों लोग साम्प्रदायिक हिंसाओं की भेंट चढ़ गए थे। स्वतंत्रता के लिए भारतवासियों को बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी है। इस सब के बावजूद ब्रिटिश शासन के अंत के कारण एक खुशी की लहर थी क्योंकि भारतवासी अंग्रेजों और उनके चाटुकारों के शोषण और अत्याचारों से परेशान हो चुके थे। लोग अच्छे दिनों की उम्मीद में फूले नहीं समा रहे थे। स्वतंत्रता के बाद सरकार ने जनता से बड़े-बड़े वादे किए और विश्वास दिलाया कि अब भारत एक लोकतान्त्रिक देश है। अब भारत देश का शासन-प्रशासन संविधान के आधार पर चलेगा। भारत का प्रत्येक नागरिक समान है चाहे वह किसी भी वर्ग और जाति से क्यों न हो? और सब को अपनी-अपनी प्रगति के लिए समान अवसर प्रदान किए जायेंगे। इसके बाद जनता रंग-बिरंगे सपनों को आँखों में संजोकर और चादर तानकर कुम्भकर्ण की नींद सो गयी। लेकिन जब आँखें खुली तो चारों ओर लूट-खसोट मची हुई थी और बन्दर बाँट चल रही थी। जनता को यह समझने में समय नहीं लगा कि उनके साथ विश्वासघात हुआ है। हमने जिन रहनुमाओं को देश की बागडोर अच्छे दिनों की उम्मीद में सौंपी थी। वे आम जनता के नहीं, बल्कि स्वयं के और अपने चाटुकारों तथा पूंजीपतियों के अच्छे दिनों की बात कर रहे थे। सरकारें आम जनता, किसान और मजदूर वर्ग की मूलभूत जरूरतों को पूरा करने में भी असफल हो गयी थी। जनता का रहनुमाओं और उनकी व्यवस्था से मोहभंग होना शुरू हो गया था। देश का कामगार तबका दयनीय जीवन जीने को मजबूर हो चुका था। उनकी दैनिक समस्याएँ, उन्हें धीरे-धीरे निगल रही थीं। यह युग आम आदमी के दुख-दर्द, पीड़ा, हताशा, निराशा, मोहभंग और समस्याओं आदि का युग लगता है। इसके अतिरिक्त देश में मानवीय मूल्यों का पतन हो रहा था और अमीरी-गरीबी की खाई लगातार बढ़ती जा रही थी। अमीर और अधिक अमीर, गरीब और गरीब होते जा रहे थे। यहाँ पर राष्ट्रकवि दिनकर की कुछ पंक्तियाँ याद आती हैं जिनमें वे लिखते हैं कि “चन्दन लेपूँ किसे, सुनाऊँ किसको मंगल गान। तड़प रहा है आँखों के आगे, भूखा हिन्दुस्तान। पूछ रहा है आज यहाँ पर, जन जन बना अकाज। वर्ष हुए सत्ताईस,

कहाँ पर अटका रहा स्वराज।”¹ जिसकी गूँज हमें तत्कालीन साहित्य में सुनाई देती है। तत्कालीन कवियों ने अपने साहित्य में आम जनता की समस्याओं, उनके अधिकारों की मांग और व्यवस्था का विरोध आदि विषयों को उठाना शुरू किया। इन कवियों में दुष्यंत कुमार, सुदामा पांडे धूमिल, लीलाधर जगूड़ी, कैलाश वाजपेयी, राजकमल चौधरी, चंद्रकांत देवताले, अरुण कमल और वेणुगोपाल आदि प्रमुख कवि हैं। मैं अपने शोध-विषय के अनुसार केवल दुष्यंत कुमार के काव्य का ही स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिदृश्य को ध्यान में रखते हुए विवेचन-विश्लेषण करूँगा।

दुष्यंत कुमार ने अपने काव्य में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों को विशेष रूप से अभिव्यक्ति दी है-

6.1 स्वातंत्र्योत्तर भारतीय सामाजिक परिदृश्य और दुष्यंत कुमार का काव्य

स्वतंत्रता के बाद देश की सामाजिक स्थिति में बहुत बड़े परिवर्तन देखने को मिलते हैं। जनता ने स्वप्न देखे थे कि उन्हें देश में वर्गहीन, शोषण-मुक्त समाज, जातीय भेदभाव, अत्याचारों और भ्रष्टाचार आदि से छुटकारा मिलेगा। और एक ऐसे समाज का निर्माण होगा जिसमें सभी लोग प्रत्येक स्तर पर समान जीवन व्यतीत करेंगे। सबको अपनी-अपनी प्रगति के समान अवसर प्राप्त होंगे। कोई किसी का हक़ नहीं मारेगा। सबको अपनी बात रखने का अधिकार होगा। इसी आशा और उम्मीद के साथ जनता ने आज़ाद भारत की कल्पना की थी। आज़ाद भारत की सरकारों ने भी जनता को आस्वासन दिया था जो केवल आश्वासन बनकर ही रह गया। जनता शोषण की चक्की में पिसकर रह गयी। जनता अपनी मूलभूत ज़रूरतों को पूरा करने में असमर्थ थी। उन्हें सरकारें रोजगार देने में विफल साबित हुईं। और महंगाई दिनों-दिन आसमान छूती रही जिस पर सरकार अंकुश नहीं लगा सकी। लोगों ने शिक्षा और रोजगार के कारण नगरों और महानगरों की ओर रुख किया। जहाँ लोग अपने में सिमट कर रहे गए। लोग अपनी प्रगति के चक्कर में अपनों से लगातार दूर होते रहे। महानगरीय परिवेश ने इंसान को मशीन बना दिया है। राजनीतिक दलों ने जनता को धर्म के नाम लड़ाकर बाँटने का काम किया। जिसके कारण साम्प्रदायिकता की एक और समस्या का जन्म हुआ। परिणाम स्वरूप भारतवासियों को लगने लगा कि हम जहाँ से चले थे वहीं लौटकर वापिस आ गए हैं। जनता में एक बार फिर निराशा का भाव घर करने लगा। साहित्यकारों ने अपने साहित्य में देश की इन सामाजिक स्थितियों का चित्रण यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है। देश में आम आदमी पीड़ा, शोषण, भेदभाव, गरीबी, बेरोजगारी, महंगाई, अत्याचार, भ्रष्टाचार, मानवीय मूल्यों का विघटन, महानगरीय जीवन की

¹ दिनकर, कविता कोश, 10/02/2021

विद्रूपता, आर्थिक विषमता, बढ़ता पूंजीवाद, साम्प्रदायिकता, आतंकवाद और अलगाववाद आदि समस्याओं से जूझ रहा है। समाज में नयी और पुरानी पीढ़ी के बीच दूरी बढ़ती जा रही थी। सरकारों की असफलताओं ने स्थितियों को और ज्यादा विषम बना दिया था। जिसने पूंजीवादी वर्ग को बढ़ावा देने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। जो परजीवी बनकर आम जनता के खून के प्यासे बने रहे। सत्ता और व्यवस्था के तंत्र ने मिलकर असहाय मेंहनतकश वर्ग के लोगों का शोषण करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। आम आदमी के त्रासदीपूर्ण जीवन और उसकी अस्मिता को साहित्यकारों ने अपने सरोकार मानकर अपने साहित्य में उठाना शुरू किया। तत्कालीन साहित्यकारों ने सामाजिक यथार्थ को गहराई के साथ पहचाना है। इस युगीन परिवेश को ध्यान में रखकर दुष्यंत कुमार और अन्य साहित्यकारों ने सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण मुखर रूप से किया है।

स्वतंत्रता के बाद के साहित्यकारों में दुष्यंत कुमार एक महत्वपूर्ण नाम है जिसने अपने समय की परिस्थितियों को अपने काव्य का विषय बनाया है। उन्होंने जीवन के अनुभवों, अंतर्विरोधों, विसंगतियों और विडम्बनाओं आदि का अपने काव्य में चित्रण किया है। उन्होंने इसे करीब से देखा ही नहीं है बल्कि भोगा भी है इसलिए इनके काव्य में समसामयिक परिस्थितियों का वर्णन यथार्थ रूप में प्रस्तुत हुआ है। इनके काव्य में निराश जनता की पीड़ा, दुख-दर्द, अभाव, कुंठा, रूढ़ियों तथा अन्य समस्याओं आदि को उठाया गया है। दुष्यंत कुमार व्यक्तिगत और सामाजिक समस्याओं को अभिव्यक्त करने के लिए बेचैन नजर आते हैं। वे अपने मित्र से अपनी पीड़ा और बेचैनी को बयाँ करने के लिए सलाह मांगते हैं। जिसके विषय में दुष्यंत कुमार अपनी ‘अभिव्यक्ति का प्रश्न’ शीर्षक कविता में लिखते हैं कि-

“मूक! असहाय!! अभिव्यक्तिहीन!!! मैं जो कवि हूँ
 भावों-अभावों के पाटों में पड़ा हुआ/ एकाकी दाने-सा
 कब तक जीता रहूँगा?/ कब तक कमरे के बाहर पड़े हुए गर्दखोरे-सा
 जीवन का यह क्रम चलेगा?/ कब तक जिंदगी की गर्द पीता रहूँगा?
 प्रश्न अभिव्यक्ति का है मित्र!/ ऐसा करो कुछ
 जो मेरे मन में कुलबुलाता है/ बाहर आ जाए।”¹

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 1, पृ. सं.- 357

साथ ही दुष्यंत कुमार कहते हैं कि यदि सत्ता को मेरे द्वारा लिखी गयी कविताओं से कोई आपत्ति है तो मुझे उसकी कोई परवाह नहीं है। मेरे कवि होने का मतलब आम जनता के हक में बात करना है; और सत्ता को आम जनता से किए गए वादों की याद दिलाना है कि तुमने जनता के साथ छल किया है। मैं भी उसी आम जनता का हिस्सा हूँ। तुमने हमसे खुशहाल जीवन देने का वादा किया था लेकिन तुम्हारे वादे कहाँ हैं? और जनता जब तुम्हें तुम्हारे वादे याद दिलाती है तो कहते हो चुप रहो। हमारी आवाज़ को तुम चुप कर देना चाहते हो लेकिन अब हम अपने अधिकारों के लिए सड़क पर निकलेंगे। दुष्यंत कुमार बुलन्द आवाज़ में कहते हैं कि-

“तेरा निजाम है सिल दे जुबान शायर की,
ये एहतियात ज़रूरी है इस बहर के लिए।”¹
“ये जुबां हमसे सी नहीं जाती,
ज़िन्दगी है कि जी नहीं जाती।”²
“मुझमें रहते हैं करोड़ों लोग चुप कैसे रहूँ,
अब हर ग़ज़ल सल्तनत के नाम एक बयान है।”³
“हिम्मत से सच कहो तो बुरा मानते हैं लोग,
रो-रो के बात कहने की आदत नहीं रही।”⁴

दुष्यंत कुमार आम आदमी की दयनीय स्थिति को अपने काव्य में मुख्य रूप से व्यक्त करते हैं। इस विषय में दुष्यंत कुमार ‘जलते हुए वन का बसंत’ कविता संग्रह की भूमिका में लिखते हैं कि, “मैं एक साधारण आदमी हूँ और इतिहास और सामाजिक स्थितियों के संदर्भ में, साधारण आदमी की पीड़ा, उत्तेजना, दबाव, अभाव, और उसके संबंधों के उलझावों में जीता और व्यक्त करता हूँ।”⁵ आम आदमी भूल गया है कि जिन्दगी किस चिड़िया का नाम है? वह अभावों से युक्त घिसी-पिटी जिन्दगी जीने के लिए मजबूर

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ. सं.- 261

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ. सं.- 281

³ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ. सं.- 288

⁴ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ. सं.- 264

⁵ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ. सं.- 140

है। इस भाग दौड़ भरी जिन्दगी में व्यक्ति हारकर घुटनों के बल बैठ गया है। उसे अब अपने उध्दार का कोई रास्ता नहीं सूझ रहा है। उसकी जिन्दगी कब्रों और शमशानों तक सिमटकर रह गयी है। मिट्टी में मिलने को तैयार है। इस संदर्भ में दुष्यंत कुमार अपनी 'जिंदगी क्या' शीर्षक कविता में लिखते हैं कि-

“जिन्दगी दिखाई देती है/ कब्रों में या दरगाहों में
मंदिरों में या शमशानों में/ मिट्टी से दबी हुई
मिट्टी में मिली हुई/ पूजा के बोलों पर कांपती
या घुटनों के बल झुकी हुई।”¹

दुष्यंत कुमार अपनी ग़ज़ल में जनता की दयनीय स्थिति का चित्रण करते हुए लिखते हैं कि-

“कल नुमाइश में मिला वो चीथड़े पहने हुए,
मैंने पूछा नाम तो बोला कि हिन्दुस्तान।”²

दुष्यंत कुमार आम आदमी की जिन्दगी को लेकर अपनी 'एक स्थिति' शीर्षक कविता में भी लिखते हैं कि चारों तरफ की स्थिति दयनीय है। पुरुष, स्त्री, बच्चे, बूढ़े जवान, कमज़ोर, ताकतवर आदि सभी अपने प्राणों की भगवान से भीख मांग रहे हैं। वे सब अपने को भगवान के भरोसे मान बैठ गए हैं। अपने आप को जमीन के भगवान समझने वाले नेताओं ने तो उनको नरक में धकेलने का काम किया है। इनकी शासन व्यवस्था आम जनता की समझ से बाहर है। चारों तरफ का माहौल असामाजिक बना हुआ है। कवि कविता में लिखता है कि-

“हर घर में कानाफूसी औ’ षड्यंत्र,
हर महफ़िल के स्वर में विद्रोही मंत्र,
क्या नारी क्या नर/ क्या भू क्या अंबर
मांग रहे हैं जीने का वरदान,

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 1, पृ. सं.- 333

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ. सं.- 288

सब बच्चे, सब निर्बल, सब बलवान,
सब जीवन सब प्राण/ सुबह दोपहर शाम
‘अब क्या होगा राम?’¹

कवि अपनी ग़ज़ल में भूख से पीड़ित जनता का चित्रण करते हुए लिखते हैं कि-

“भूख है तो सब्र कर रोटी नहीं तो क्या हुआ,
आज कल दिल्ली में जेरे बहस है ये मुद्दा।”²

जनता अपनी परिस्थितियों से संघर्ष करते-करते थक गयी है। उन्हें अपना अस्तित्व समाप्त होता या बिखरा हुआ प्रतीत होता है। जीवन के सारे रंग-रूप धुंधले पड़ते जा रहें हैं। एक ऐसे रास्ते से जीवन गुजर रहा है जिसमें क्रदम-क्रदम पर अवरोध होता है। किसी तरह गिरते-पड़ते जीवन गुजर रहा है। जीवन ही अर्थहीन होता जा रहा है। ऐसा लगता है कि संभलकर चलने के बावजूद जीवन की विषम परिस्थितियों ने मुझे चारों तरफ से घेरा हुआ है। जनता को ऐसा लगने लगा है कि जैसे उससे ही कोई गुनाह हो गया है। जनता का जीवन दुख, पीड़ा और निराशा आदि से भरा हुआ है। उनकी वेदनापूर्ण कराहें पक्षियों के कोलाहल की तरह चारों ओर फैलने लगी हैं। परिस्थितियाँ सुधरने के बजाये और बिगड़ती जा रही हैं। लेकिन दुष्यंत कुमार अपनी ‘दिन निकलने से पहले’ शीर्षक कविता में कहते हैं कि-

“मनुष्यों जैसी/ पक्षियों की चीखें और कराहे गूँज रही हैं,
टीन के कनस्तरों की बस्ती में
हृदय की शक्ल जैसी अंगीठियों से
धुआँ निकलने लगा है,/ आटा पीसने की चक्कियाँ
जनता के सम्मिलित नारों की-सी आवाज़ में
गड़गड़ाने लगी हैं,/ सुनो प्यारे! मेरा दिल बैठ रहा है।

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 1, पृ. सं.- 336

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ. सं.- 266

अपने को संभालों मित्र! / अभी ये कराहें और तीखी;

ये धुआँ और कड़ुआ, / ये गड़गड़ाहट और तेज होगी”¹

आम जनता ने स्वतंत्रता के बाद जो सपने संजोये थे। वे सब एक-एक करके टूटने लगे थे। उससे रहनुमाओं ने जो वादे किए थे, वे सब झूठे साबित हुए। उनको आजादी के नाम पर ठगा गया था। उनकी आजादी को नेताओं की मोम रूपी दृष्टि ने निगल लिया है। आजादी के लिए जो संघर्ष किया गया था, वह सब व्यर्थ-सा लगता है। यह विश्वास था कि आजादी के बाद आम जनता की स्थितियों में परिवर्तन आयेगा लेकिन बाद के नेताओं ने आजादी को अपने तक सीमित रखकर जन की तरफ ध्यान ही नहीं दिया। वे अपनी जिम्मेदारियों से भागने लगे जिसके कारण जनता का सत्ता से मोहभंग होने लगा था। इसके विषय में दुष्यंत कुमार अपनी ‘मोम का घोड़ा’ शीर्षक कविता में लिखते हैं कि-

“मैंने यह मोम का घोड़ा, / बड़े जतन से जोड़ा,
रक्त की बूंदों में पालकर / सपनों में ढालकर / बड़ा किया,
फिर इसमें प्यास और स्पंदन / गायन और क्रन्दन
सब कुछ भर दिया, औ’ जब विश्वास हो गया पूरा
अपने सृजन पर / तब इसे लाकर / आँगन में खड़ा किया!
मुझे भरोसा था मेरा है; / मेरे काम आएगा।
बिगड़ी बनाएगा। / किंतु यह घोड़ा! / कायर था थोड़ा...
किंतु जैसे ये बड़ा / इसकी पीठ पर पड़ा आकर
लपलपाती लपटों का कोड़ा, / तब पिघल गया घोड़ा
और मोम मेरे सब सपनों पर फैल गया।”²

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 1, पृ. सं.- 347

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 1, पृ. सं.- 352

देश की आज़ादी मोम के घोड़े की तरह झूठी निकली। जो जनता के कुछ काम ना आ सकी। इस आज़ादी रूपी रौशनी के विषय में दुष्यंत कुमार लिखते हैं कि-

ये रोशनी है हकीकत में एक छल लोगों,
कि जैसे जल में झलकता हुआ महल लोगों।”¹

स्वतंत्रता सेनानियों ने अपने लहू से सींचकर, जो आजादी रूपी भव्य इमारत बनाई थी उसकी दीवारों में अब दरारें पड़ने लगी हैं क्योंकि कुर्सी के लालची नेताओं ने उसकी देखभाल नहीं की है। उन्होंने आजादी को अपने और अपने चाटुकारों तक सीमित रखा। आम जनता को राम भरोसे छोड़कर खुद देश की सम्पत्ति को लूटने में लग गए। त्रस्त जनता अभावों में जीवन व्यतीत करने लगी; और चारों ओर वेदनाओं के स्वर सुनाई देने लगे। जनता के सपने कबूतर के समान उड़ गए। इस संदर्भ में दुष्यंत कुमार अपनी ‘प्रेरणा के नाम’ शीर्षक कविता में लिखते हैं कि-

“काला हुआ है व्योम,/ किंतु मैं करू तो क्या?
मन करता है- उठूँ,/ दिल बैठ जाता/ पाँव चलते हैं
गति पास नहीं आती है,/ तपती इस धरती पर
लगता है समय बहुत विश्वासघाती है
हौसलें, मरीजों की तरह छटपटाते हैं,
सपने सफलता के/ हाथ से कबूतरों की तरह उड़ जाते हैं”²

दुष्यंत कुमार इस विषम समय पर बारीकी से नजर रखते हैं। उन्हें मालूम है कि यह समय सब्र करने का है। हवाएँ आम जनता के प्रतिकूल चल रही हैं। अभी अपनी मांगों को कुछ समय के लिए स्थगित कर दीजिए। अभी कष्ट सहने का समय है। यदि किसान की फसलें सुविधाओं के अभाव में सूख रही हैं तो सूखने दो। बच्चा भूख से रो रहा है तो रोने दो। हमें अपने दुखों को गाना पड़ेगा तभी हमारे जीवन में कुछ बदलाव आ सकता है। हमें अपने अस्तित्व की चेतना को जगाना होगा। व्यक्ति की आँखें सुनहरे सपनों की छांह में

¹सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ. सं.- 271

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 1, पृ. सं.- 368-369

खंडहर होती जा रही हैं। और हमारा जीवन कटी पतंगों सा घरों की छतों पर पड़ा है। वे सोचते हैं कि आजादी के बाद हमारी परिस्थितियों में क्या परिवर्तन हुआ है? हमारा जीवन तो आज भी अभावों से भरा हुआ है। आज भी जीवन की गलियों में सुविधाओं का सूनापन पहरा देता है। दुष्यंत कुमार अपनी ‘अनुभव दान’ शीर्षक कविता में लिखते हैं कि-

“खंडहरों-सी भावशून्य आँखें
नभ से किसी नियंता की बाट जोहती हैं।
बीमार बच्चों-से सपने उचाट हैं;/ टूटी हुई जिंदगी
आँगन में दीवार से पीठ लगाए खड़ी है;
कटी हुई पतंगों से हम सब/ छत की मुंडेरों पर पड़े हैं।”¹

देश की परिस्थितियों को देखकर दुष्यंत कुमार कहते हैं कि जिस तरफ भी देखता हूँ लोग घुट-घुट कर जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उनका जीवन संघर्ष करते-करते कराह उठा है। वे जिन्दा लाश बनकर रह गए हैं। जिन्हें रोजगार मिल गया है वे दफ्तरों के बोझ के तले दबकर रह गए हैं। एक आदमी दस-दस लोगों का कार्य बैल की तरह कर रहा है। दूसरी तरफ बेरोजगार लोग सड़कों पर चप्पल घिस रहे हैं। उनका शरीर और आत्मा दोनों घुटन में जीवन जी रहे हैं। उनकी पीड़ा को शब्दों में बयान नहीं किया जा सकता है। उनका जीवन नीरस हो गया है। सरकारें अपनी भूमिका को निभाने में विफल नजर आती हैं। दुष्यंत कुमार अपनी ‘अंततोगत्वा’ शीर्षक कविता में लिखते हैं कि-

“इसलिए मैं सच कहूँ तो/ कुछ विरत हूँ
हाँ! मुझे दुःख जिस जगह भी दिखता है
दफ्तरों में काम करते/ या कि सड़कों पर विचरते
नौकरी की खोज में अथवा/ किसी की बुझी आँखों की
अखंडित मौनता में।”²

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 1, पृ. सं.- 372

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 1, पृ. सं.- 383-384

व्यक्ति पत्थर का वह शिलालेख बनकर रह गया है जिस पर उसके जीवन का संघर्ष चिन्हित है। यह संघर्ष उसी के रक्त से चमचमाते शब्दों में लिखा गया है। लोगों ने इंसान के अस्तित्व को ही नकारना शुरू कर दिया है। यह समाज की परिस्थितियों में पिसते हुए प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के संघर्ष की गाथा है जो शिलालेख पर नहीं, बल्कि ऐसा लगता है जैसे हताश व्यक्ति के माथे पर चिन्हित हो। दुष्यंत कुमार अपनी 'शिलालेख' शीर्षक कविता में इसी गाथा को कहते हैं-

“मैं हूँ वह शिलालेख
विस्फोटातुर ज्वालामुखी पर्वत के अंतर में
बोझ की तहों के तले दबा हुआ
जिस पर इस युग की परिभाषाएँ
इच्छाएँ, आशाएँ/ कुंठाएँ, घुटन वेदनाएँ
सब अंकित हैं।”¹

स्वतंत्रता के बाद जब गाँव मुख्य धारा में शामिल नहीं हो पाये; और देश की सरकारें गाँवों को सुविधा पहुँचाने में असफल होने लगी तो गाँव के लोगों ने जीवन-यापन और मूलभूत सुविधाओं तथा रोजगार की तलाश आदि के कारण नगर या महानगरों की ओर रुख किया। वहाँ धीरे-धीरे जनसंख्या बढ़ने लगी। बढ़ती जनसंख्या के अनुपात में सरकार और व्यवस्थाएँ सुविधाएँ मुहईया कराने में असफल होती नजर आने लगी जिसके कारण आवास की समस्या सबसे पहले उभर कर सामने आई। लोग छोटी-छोटी जगहों में भेड़-बकरियों की तरह रहने के लिए मजबूर होने लगे। महानगर दिल्ली में भीड़ का चित्रण करते हुए, दुष्यंत कुमार अपनी 'आह! यह दिल्ली!' शीर्षक कविता में लिखते हैं कि-

“पाँच बजते टूट पड़ती/ एक भीड़ अपार/ अनगिन लोग-
कारें, बसे, बाइसिकलें/ राजमार्गों पर उतरती दौड़ती हैं
मुझे लगता है कि क्रोधित भनभनाती भीड़/ उन मधुमक्खियों की

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 1, पृ. सं.- 387

जिन्हें बचपन में कुतूहलबस/ अचानक एक दिन में छेड़ बैठा था।

राजमार्गों पर लपकते हुए/ अगणित बाबुओं को

काटने के लिए पीछा कर रही हैं।”¹

एक बार शहर में आने के बाद गाँव के परिवार के अन्य सदस्यों से कट गया। समाज में निरन्तर आत्मीय सम्बन्धों का पतन होने लगा। समाज में संयुक्त परिवार के स्थान पर एकल परिवार का चलन चल गया। लोग महानगरों की संस्कृति में अपने मानवीय मूल्यों की परवाह किए बगैर ही अदृश्य मंजिल की तरफ दौड़ने लगा। उसकी अधिक पाने की लालसा ने उसे मशीन में तब्दील कर दिया। दिनोंदिन आदमी समाज ही नहीं बल्कि अपनी नजरों में भी गिरता ही चला गया। और जब आदमी गिरता है तो अंदाजा नहीं लगाया जा सकता है कि वह कितना गिर सकता है। आदमी की जान की कीमत कौड़ी के भाव हो गयी। वह अपने तक ही सिमट कर रह गया। वह हर समय भीड़ से घिरा होने के बावजूद अपने आपको अकेला पाता है। जिसके कारण उसका अस्तित्व जेब में रखे रुमाल-सा हो गया। दुष्यंत कुमार अपनी ‘मैं कौन हूँ’ शीर्षक कविता में लिखते हैं कि-

“चप्पलों-सी जिंदगी को/ सड़क पर घिसता हुआ

किसी छत-सा गाँव की/ चूता हुआ, रिसता हुआ

ऊंगलियों में पिस रहे/ रुमाल-सा मैं कौन हूँ?”²

महानगरों की संस्कृति में कोई किसी के साथ सहयोग की भावना नहीं रखता है। सब एक-दूसरे से स्वार्थपूर्ण व्यवहार करते हैं। इस प्रवृत्ति के कारण मानवीय मूल्यों का पतन होता गया। इस संदर्भ में दुष्यंत कुमार की ‘भविष्य की वंदना’ शीर्षक कविता देख सकते हैं-

“सुनो, आहत राम ने लक्ष्मण को पुकारा/ हरी गई सीता!

अब किसी बियाबान वन में जटायु टकराएगा

नहीं, वायुयान पर बिठाकर ले जाएगा

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 1, पृ. सं.- 416-417

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 1, पृ. सं.- 423

अव्वल तो जटायु नहीं आज
और हो भी तो कब तक लड़ पाएगा?
राम युद्ध ठानेंगे सामने मशीनों के?
वानरों की सेना से! / जो कि स्वयं भूखी है आज!
अपने नगरों के घरों में/ मुंडेरों पर बैठकर
रोटी ले भागने की फिक्र में रहती है।”¹

समाज की स्थिति लगातार खराब होती जा रही है। मानवता, सहयोग की भावना, निस्वार्थ-भावना, सत्य, अहिंसा, सहानुभूति और संवेदना आदि मानवीय मूल्यों के पतन के कारण एक व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति के सामने स्वार्थों की दीवारें खड़ी कर दी हैं। लोगों के बीच में अविश्वासों की खाई दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। व्यक्ति शहर में रहकर पहले से ज्यादा स्वार्थी, संकुचित और अव्यवहारिक हो गया है। यह मानवता के लिए अंधेरी रात है, जो लगातार गहराती जा रही है। दुष्यंत कुमार अपनी ‘असमर्थता’ शीर्षक कविता में लिखते हैं कि-

“पथ के बीचों-बीच खड़ी दीवार/ और मैं देख रहा हूँ!
बढ़ती आती रात/ चील-सी पर फैलाए/ और सिमटते जाते हैं
विश्वासों के साए।”²

लोगों ने कुत्तों और चूहों की तरह लड़ना शुरू कर दिया है। ऐसे लोग इंसान कहलाने के भी लायक नहीं होते हैं लेकिन कुछ महानुभाव थूक गटक-गटककर निवेदन करते हुए, उन्हें पसन्द कर-कर के देवता बना देते हैं। इंसान ने अपनी प्राकृतिक प्रवृत्ति को बदलकर जानवरों की प्रवृत्तियों को ग्रहण करना शुरू कर दिया है। वह सफलता की थोड़ी सीढ़ी चढ़ते ही अपने लोगों को ही अपने से कम समझने लगता है। यदि कोई ऐसे लोगों को कुछ कहना चाहता भी है तो वह खुद एक दिन चापलूसी करके व्यवस्था का अंग बन जाता है। इस संदर्भ में दुष्यंत कुमार अपनी ‘कई बार’ शीर्षक कविता में लिखते हैं कि-

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 1, पृ. सं.- 453

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 1, पृ. सं.- 461

“ऊँची नौकरी या अफसरी की/ सीढियाँ चढ़ते हुए
तय करना पड़ता है/ कि आदमी बिना बात गर्दन
टेढ़ी करके चलता है, अकड़ता है
नाक पर घूँसे खाना पसंद करता है
छोटे से नफरत करता है/ बड़े से डरता है।”¹

अब नगरों और महानगरों के साथ-साथ गाँवों में भी मानवीय मूल्यों का पतन होता जा रहा है। शहरी संस्कृति की लहर ग्रामीण संस्कृति पर लगातार हमला कर रही है। लोगों में आपसी भाईचारा धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा है। लोग अपने घरों में अन्दर घुसे रहते हैं लेकिन किसी से बात नहीं कर सकते। पहले पारिवारिक या सामूहिक कार्यक्रमों में लोग बढ़-चढ़कर शामिल होते थे लेकिन आज लोग किसी भी प्रकार के कार्यक्रमों में जाना पसंद नहीं करते हैं। आज बुलाने वाले से ज्यादा आने वाले का अहसान माना जाता है। पहले यदि कोई व्यक्ति किसी परिचित के गाँव के पास से भी निकलता था, तो उससे मिलते हुए, अपने घर जाता था लेकिन आज लोग पड़ोसी के घर में भी जाना पसन्द नहीं करते हैं। मानवीय मूल्यों के पतन को रेखांकित करते हुए, दुष्यंत कुमार अपनी ‘यात्रानुभूति’ शीर्षक कविता में लिखते हैं कि-

“कितना कठिन हो गया है/ किसी एक गाँव से गुजरकर आगे जाना!
ओसरों में बैठे हुए बूढ़े बरतते हैं,/ लोटे में जल भरकर महरियाँ-
नहीं आती/ स्वागत नहीं करते बच्चे- राहगीरों पर/ कुत्ते लहकाते हैं।
इस ठहरी और सड़ी गरमी में/ कहीं भी पड़ाव नहीं मिलते
अँधेरे में दिखते नहीं दूर तक चिराग!/
थके हुए पाँवों के ज़ख्म
जलती हुई रेत में सुस्ताते हैं।/ यक-ब-यक तेजी से बदल गए हैं
गाँवों के पनघट और सुंदरियों की तरह/ सारे रिवाज

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ. सं.- 126

यात्रा से आज/ अर्थ भले हो, लेकिन मज़ा नहीं।”¹

उपरोक्त कविता की तरह दुष्यंत कुमार ने अपनी एक और ‘कहाँ से शुरू करें यात्रा’ शीर्षक कविता में लिखते हैं कि इस युग में पावों की जमीन ही नहीं बल्कि जीवन मूल्य और तत्व आदि तक सब बदल गए हैं। वे कविता में लिखते हैं कि-

“किंतु आज/ साक्षी है युग जिसमें
सिर्फ पाँवों तले की जमीन ही नहीं
बल्कि जीवन के मूल्य, तत्व, बदल गए/ बदल गए-
महाकर पर्वत, मरुस्थलों में/ समतल मैदानों में
जल के उद्दाम वेग में/ तीर्थ स्थल, मंदिर और मस्जिद, मैखानों में,
दर्द, कामनाओं में/ मूल्य, भावनाओं में
मानवीय संस्कार, सामयिक विचारों में/ आस्था, प्रतीक्षा में अवसर की
बदल गई सारी परिभाषाएँ ईश्वर की!”²

स्वतंत्रता के बाद रहनुमाओं ने देश की जनता से अच्छे दिनों का वादा किया था। लेकिन स्थिति पहले से और खराब हो गयी। देश रूपी मूर्ति को सुधारने का वादा करके, रहनुमाओं ने मूर्ति को पहले से अधिक बदसूरत बना दिया है। समाज में जनता की स्थिति में कोई बदलाव देखने को नहीं मिलता है। जनता अपने जीवन-यापन के लिए पहले से ज्यादा संघर्ष करने के लिए मजबूर है। समाज में गरीबी और अमीरी की खाई पहले से अधिक बढ़ गयी है। जनता का शोषण पहले से ज्यादा होने लगा है। और देश में जातीय-धर्म की खाई लगातार बढ़ रही है। परिणाम स्वरूप समाज में घुटन पहले से अधिक बढ़ गयी है। देश की स्थितियाँ लगातार नाजुक होती जा रही हैं। इस सन्दर्भ में दुष्यंत कुमार की गज़लों के दो शेर देख सकते हैं-

“पहले भी इस फिजाँ में कोई कम घुटन न थी,

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ. सं.- 144

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ. सं.- 181

मौसम बहुत खराब हुआ चाहता है अब।”¹

“मूरत सँवारने में बिगड़ती चली गई,

पहले से हो गया है जहाँ और भी खराब।”²

भारतीय समाज में आजादी से पहले या बाद में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में बदलाव देखने को नहीं मिलता है। वह आज भी हाशिये का जीवन जीने के लिए मजबूर है। उनकी स्थिति को सुधारने के लिए कुछ कानून बनाये गए हैं। कानून बनने से स्त्री अपने अधिकारों के प्रति पहले से अधिक जागरूक तो हुई है लेकिन उसका जीवन अधिक संघर्षमय हो गया है। वह अपने शोषण के खिलाफ आवाज उठाती है तो उसे पुरुष वर्ग बगावत मानता है। आज भी स्त्रियों को अपने विवाह जैसे महत्वपूर्ण निर्णय लेने का अधिकार नहीं है। यदि कोई लड़की या महिला समाज या परिवार के विरुद्ध जाकर विवाह का निर्णय लेती भी है तो उसे उनके समस्याओं का सामना करना पड़ता है। कभी-कभी तो प्रेमी-युगल ‘ऑनर किलिंग’ का शिकार हो जाते हैं। इस पुरुषवादी समाज से, उसे दुख के सिवा कभी कुछ नहीं मिला है। उसे चारदीवारी में कैद करके अबला, अभागन और दुखियारी आदि की संज्ञा दी है। उसे उसकी मंजिल की तरफ जाने वाली राहों से भटका दिया है। पुरुषवादी समाज द्वारा उसे कुँएँ का मेंढक बनाने के लिए षडयंत्र रचा गया है। इस संदर्भ में दुष्यंत कुमार अपनी ‘उस समाज को’ शीर्षक कविता में नारी की दयनीय स्थिति पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं कि जिस समाज में स्त्री का सम्मान नहीं होता है उस समाज का पतन होने से कोई नहीं बचा सकता है। वे कविता में लिखते हैं कि-

“उस समाज को कौन रसातल में जाने से रोक सकेगा

जिस समाज में नारि जाति को अबला का उपनाम दिया है

जिस समाज में नारि जाति का जी भरकर अपमान किया है

अपने घर की प्राचीरों तक उसका सीमित क्षेत्र बनाकर

जिस समाज में उसको अपनी राहों से अनजान किया है

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ. सं.- 251

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ. सं.- 282

उस समाज को कौन अरे ठोकर खाने से रोक सकता है...

जिस समाज में विधवाओं पर अत्याचार किए जाते हैं...

जिस समाज में दो हृदयों को मिलने का अधिकार नहीं है...

उस समाज के कौन थूक मुँह पर जाने से रोक सकेगा।¹”

जनता की दयनीय स्थिति का चित्रण करते हुए दुष्यंत कुमार लिखते हैं कि देश की जनता ऐसी स्थिति में रहने के लिए मजबूर है। उनके कनस्तरों के घर ऐसी बस्तियों में है जहाँ की गलियाँ बहुत छोटी-छोटी हैं। पानी की निकासी के लिए कोई व्यवस्था नहीं है, जिसके कारण गली क्या घर के आंगनों में भी बदबू उठती रहती है। पानी के कारण दीवारों पर सीलन आ गयी है जो दीवारों की ही नहीं बल्कि आदमी के खून की गर्मी को भी सोख लेती है। आदमी चलती-फिरती लाश बन गए हैं। उनका जीवन निराशा और उदासीनता से भर गया है। उनके माथों पर सिकन की लकीरें पड़ गयी हैं। उनकी आँखों में किसी तरह का उत्साह दिखाई नहीं देता है। उन पर भूख इस तरह हावी है जैसे अपने शिकार पर चीलें मंडराती हैं। उन्होंने आजादी के बाद जो सपने संजोए थे वे गैस के गुब्बारों की तरह, उनकी आँखों से उड़ गए हैं। समाज में निराश मन से टहलते हुए आदमी ऐसे लगते हैं जैसे कोई जिन्दा लाश घूम रही हो। युवाओं की उम्र रोजगार की तलाश करते-करते मोमबत्ती के मोम की तरह पिघल गयी है। वे अपने जीवन से इस तरह निराश हैं कि उन्हें किसी प्रकार का दर्द, पीड़ा, क्रोध और विद्रोह आदि का भाव अब झकझोरता नहीं है। उन्हें अपने जीवन में अंधकार छाया लगता है। आजकल उनके हृदय की उमंगों, आशाओं, इच्छाओं और महत्वकांक्षाओं पर बुझदिली का पहरा है। उन्होंने सहना और चुप रहना, को अपने जीवन का ध्येय मान लिया है। उनके जीने की इच्छाएँ हाथों से मछलियों-सी फिसल जाती हैं। और इन परिस्थितियों के लिए हमारे रहुनुमा उत्तरदायी हैं। दुष्यंत कुमार अपनी ‘कवि-धर्म’ शीर्षक कविता में लिखते हैं कि-

“मेरा रथ मोड़ों पहले/ टीन के कनस्तरों की बस्ती में

बदबू से भरी हुई उन सँकरी गलियों में/ आँगन की सीलन जहाँ

खून की हरारत/ और गर्मी सोख लेती है/ दीवारों की छाँह जहाँ

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 1, पृ. सं.- 134

माथे के तनावों/ और आँखों के चिरागों पर राख पोत देती है
भूख जहाँ आदमी पर/ चीलों-सी घिरती है
संगीनें लिए इक अदृश्य फ़ौज फिरती है/ गैस के गुब्बारों-से
जिंदगी के ख्वाब जहाँ उड़ते हैं/ हवाओं के बच्चे जिन्हें
छूकर फोड़ देते हैं/ लाश घर-घर में/ जीती है, चलती है
मोमबत्तियों-सी जहाँ/ युवा उम्र जलती है।”¹

उपरोक्त कविता में दुष्यंत कुमार ने निराशा और अभावों से युक्त जीवन जीने वाली जनता की मनस्थिति को दर्शाया है। जो विषम परिस्थितियों का सामना करते-करते टूट गयी है। वहीं दुष्यंत कुमार ऐसे निराश व्यक्तियों से अपनी ‘राह खोजेंगे’ शीर्षक कविता के माध्यम से कहते हैं कि निराश होने की आवश्यकता नहीं है। हम यहाँ से अपने उद्धार के लिए रास्ता निकालेंगे। और साथ ही कवि ने उन नेताओं पर व्यंग्य किया है, जिन्होंने जनता को ‘घरों में कैद करके कहा, हम तुम्हें आजाद करते हैं। कवि कविता में लिखते हैं कि-

“ये कराहें बंद कर दो/ बालकों को चुप कराओं
सब अँधेरे में सिमट आओं यहाँ नतशीश/ हम यहाँ से राह खोजेंगे।
हम पराजित हैं मगर लज्जित नहीं हैं/ हमें खुद पर नहीं
उन पर हँसी आती है/ हम निहत्थों को जिन्होंने हराया
अँधेरे व्यक्तित्व को अंधी गुफाओं में/ रोशनी का आसरा देकर
बड़ी आयोजना के साथ पहुँचाया/ और अपने ही घरों में कैद करके कहा:
‘लो तुम्हें आजाद करते हैं’/ आह!/ वातावरण में बेहद घुटन है
सब अँधेरे में सिमट आओं/ और सट जाओं

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ. सं.- 147-148

और जितने आ सको उतने निकट आओं/ हम यहाँ से राह खोजेंगे।”¹

नेताओं पर व्यंग्य करते हुए दुष्यंत कुमार लिखते हैं कि पता नहीं जीवन में क्या पाप किया था? जो इन कापुरुषों रूपी नेताओं का संरक्षण हमें मिला है। इनके कारण हमारे सगे-सम्बन्धी सब घर से बेघर हो गए; और अपने ही देश में शरणार्थियों-सा जीवन जी रहे हैं। दुष्यंत कुमार अपने ‘एक कंठ विषपायी’ गीति नाटक में लिखते हैं कि-

“आह न जाने/ कैसे कापुरुषों का संरक्षण पाया है?

मेरे उत्तरवासी/ सब संबंधी बेघर हो गए, सब शरणार्थी

पूर्वजन्म में जाने कितने पाप किए थे

जो इन कापुरुषों का संरक्षण पाया है।”²

देश की सत्ताओं ने जनता को समस्याओं के सिवा कुछ नहीं दिया है इसलिए दुष्यंत कुमार जनता से इन नेताओं के विषय में कहते हैं कि-

तू परेशान बहुत है, तू परेशान न हो,

इन खुदाओं की खुदाई नहीं जाने वाली।”³

दुष्यंत कुमार आज़ादी के बाद समाज में, जो चारों ओर आम आदमी की पीड़ा-दुख, शोषण, बेरोजगारी, महँगाई, भ्रष्टाचार, बेईमानी, अत्याचार, मानवीय मूल्यों का विघटन, साम्प्रदायिकता, जातीय और वर्ग भेदभाव, आर्थिक विषमता आदि समस्याओं से विषम माहौल बना था, से जनता को छुटकारा दिलाना चाहते हैं। दुष्यंत कुमार आम आदमी की दयनीय स्थिति से व्याकुल होकर कहते हैं कि-

“हो गयी है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए

इस हिमालय से कोई गंगा निकली चाहिए

आज ये दीवार परदों की तरह हिलने लगी

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 1, पृ. सं.- 454

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ. सं.- 101

³ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ. सं.- 264

शर्त लेकिन थी ये बुनियाद हिलनी चाहिए
सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं,
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए
मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही,
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए”¹

6.2 स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजनीतिक परिदृश्य और दुष्यंत कुमार का काव्य

स्वतंत्रता के बाद भारतवासियों ने, जो सुनहरे सपने देखे थे। उन पर भारत की राजनीतिक गतिविधियों ने पानी फेर दिया था। जनता की सेवा करने के बहाने राजनेताओं ने खुद मेंवा खाने का काम किया। देश में जनता पीड़ा, दर्द, अन्याय, शोषण, संघर्ष, गरीबी, मंहगाई, बेरोजगारी और भ्रष्टाचार आदि समस्याओं से जूझ रही थी। वह अपनी मूलभूत आवश्यकताओं के लिए संघर्ष कर रही थी। उसकी झोपड़ी में गरीबी और अभावों का अँधेरा फैला हुआ था। इस अँधेरे को सत्ता उजाले में परिवर्तित करने में नाकाम रही थी। देश में आर्थिक विषमता लगातार बढ़ती जा रही थी। नेताओं ने अपनी कुर्सी के चक्कर में धर्म, वर्ग और जाति में लोगों को बाँटने का काम किया। लोगों में असंतोष की भावना घर करने लगी थी। जनता निराश और हताश होकर अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इधर-उधर भटक रही थी। उधर हमारे नेता भाई-भतीजावाद को लगातार बढ़ावा दे रहे थे। इन राजनीतिक गतिविधियों के कारण सारा सामाजिक जीवन अस्त-व्यस्त हो गया था। जनता की सेवा के नाम पर कुछ वर्षों में ही बरसाती मेंढकों के समान सैकड़ों राजनीतिक पार्टियाँ अस्तित्व में आ गयी थीं। परिणाम स्वरूप राजनीति में सौ-सौ कोस के लुच्चे-लफंगे लगातार बढ़ने लगे थे। सभी का पहला उद्देश्य सत्ता पाना था। राजनीति में नेता अपने स्वार्थों को सिद्ध करने के लिए ही प्रवेश कर रहे थे। सब जनता की सेवा के नाम पर मेंवा खा रहे थे। देश की जनता वादों को पूरा होने के इंतजार में सूखी जा रही थी। व्यवस्था में बैठे भ्रष्ट नेता, अधिकारी, पूंजीपति और दलाल आदि सभी जनता के नाम पर आने वाली योजनाओं को हजम कर रहे थे। भ्रष्टाचार की प्रवृत्ति समाज के लिए नासूर बन गयी थी। ये भ्रष्टाचार को अपना शिष्टाचार समझकर बढ़ावा दे रहे थे। सामाजिक व्यवस्था पूरी तरह भ्रष्ट हो चुकी थी। जनता जीवन के प्रत्येक स्तर पर बिखर कर रह गयी और कोई उसके दुख, पीड़ा

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ. सं.- 272

और तकलीफ़ को दूर करने वाला सिद्ध नहीं हुआ। दुष्यंत कुमार की कविताओं में राजनीतिक चेतना के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं। देश की हालत पर दुष्यंत कुमार लिखते हैं कि-

“कल नुमाइश में मिला वो चीथड़े पहने हुए,

मैंने पूछा नाम तो बोला कि हिन्दुस्तान।”¹

देश की राजनीति और उसके नेताओं से समाज का मजदूर वर्ग सबसे ज्यादा परेशान था। जो देश की राजनीति में चुनाव के समय आने वाली भीड़ बनकर रह गया था। जनतंत्र में जनता भीड़तंत्र बनकर रह गयी थी अर्थात् लोकतंत्र की प्रतिष्ठा लगातार धूमिल हो रही थी। नेता चुनाव के समय जनता से बड़े-बड़े वादे करते हैं और आश्वासन देते हैं लेकिन जीतने के बाद, उनके वादे और आश्वासन हवा में उड़ जाते हैं। इसके बाद फिर जनता के घरों, बस्तियों और गाँवों को अँधेरा निगल लेता है। जनता को लगने लगा था कि आज़ादी कुछ लोगों तक ही सिमट कर रह गयी है, उन तक आज़ादी की सुख-सुविधाओं का प्रकाश नहीं पहुंचा था। उन्हें केवल वादे और आश्वासन मिले थे जो कभी पूरे नहीं हुए थे। इस निराश और हताश जनता के विषय में दुष्यंत कुमार अपनी ‘आश्वासनों का सूर्य’ शीर्षक कविता में लिखते हैं कि-

“डूब जाएगा पुनः आश्वासनों का सूर्य/ भाषणों की धूप में तपते हुए चेहरे

विदा लेंगे/ फिर अँधेरा घेर लेगा घरों को/ चुपचाप, हारे हुए अपने आपसे

सब लोग/ अपने हाथ और हथेलियाँ सहलाएँगे।

जो सभाओं में तालियों का शोर करने/ ज़ोर से नारे लगाने को उठाए गए थे

उत्साहवश या विवश करके/ वहाँ लाए गए थे/ वो लोग थककर बैठ जाएँगे

फिर किसी मनहूस दल के चिन्ह-सी जीवन-पताका

झुकेगी या थरथराकर टूट जाएगी।”²

जनता को लगता है कि हमें नेताओं ने झुनझुने से ज्यादा कुछ नहीं समझा है-

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ. सं.- 288

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ. सं.- 120

“जिस तरह से चाहो बजाओ इस सभा में

हम नहीं हैं आदमी, हम झुनझुने हैं।”¹

दुष्यंत कुमार अपनी ‘तुलना’ शीर्षक कविता में नेताओं की तुलना गड़रिये से करते हुए कहते हैं कि नेता और गड़रिये दोनों में समानता है। गड़रिये भेड़ों को हांकते हैं और नेता भेड़ रूपी जनता को। लेकिन दोनों में अन्तर भी है कि वे नेताओं की तरह भेड़ों से किसी तरह का वादा नहीं करते हैं। जबकि नेताओं के सारे दल भेड़ियों की तरह जनता पर टूट पड़ते हैं। जनता से ऐसे वादे करते हैं कि अब से पहली वाली सरकार ने कुछ नहीं किया है और हम आपसे वादा करते हैं कि हमारी सरकार आने के बाद सब ठीक कर देंगे। चुनाव जीतने के लिए पानी की तरह रुपया-पैसा खर्च करते हैं। बड़ी-बड़ी सभाएँ और रैलियाँ करते हैं। जनता को अपनी जय-जयकार करवाने और तालियाँ बजवाने के लिए पैसे देकर बुलाया जाता है। और उन्हें आश्वासनों का लालच देकर गड़रियों के समान जिधर चाहते हैं उधर हांककर ले जाते हैं। कविता में कवि ने नेताओं की अविश्वासपरकता का व्यंग्य किया है। देश में चुनाव के समय का यथार्थपूर्ण चित्रण किया है। कवि कविता में लिखता है कि-

“गड़रिये कितने सुखी हैं/ न वे ऊँचे दावे करते हैं

न उसको लेकर/ एक-दूसरे को कोसते या लड़ते-मरते हैं।

जबकि/ जनता की सेवा करने के भूखे/ सारे दल भेड़ियों-से टूटते हैं।

ऐसी-ऐसी बातें/ और ऐसे-ऐसे शब्द सामने रखते हैं

जैसे कुछ नहीं हुआ है। और सब कुछ हो जाएगा।”²

दुष्यंत कुमार ‘साये में धूप’ ग़ज़ल संग्रह की पहली ही ग़ज़ल में रहनुमाओं के वादों और आश्वासनों पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं कि-

“कहाँ तो तय था चिरागां हरेक घर के लिए,

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ. सं.- 280

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 173

कहाँ चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए।”¹

लेकिन नेता आम जनता से चुनाव से पहले किए गए सारे वादों को भूल जाते हैं। वे चुनाव के समय होने वाले खर्च की वसूली जनता का खून चूसकर करते हैं। जनता के नाम पर योजना बनाकर खुद उनका फायदा उठाते हैं। वे जनता का उद्धार करने से पहले अपना उद्धार करते हैं। लोकतंत्र में जनता सर्वेसर्वा होने के बावजूद भी भूखी है। उसके पास तन ढकने के लिए कपड़ा भी नहीं है। कवि जनता की दयनीय स्थिति को देखकर दुखी होते हैं। वे कहते हैं कि मेरी चेतना जड़ हो गयी है। यह सोचते-सोचते कि मेरा कसूर क्या है? हम जीवन भर रैलियों और सभाओं में ताली बजाते रहें हैं लेकिन हमने अपनी भूख की शिकायत नहीं की कभी, हम इस उम्मीद में रहे कि, हमारा कभी न कभी उद्धार होगा। हमें केवल नेताओं ने लुभावने वादे दिए हैं। भाषणों में योजनाओं के बड़े-बड़े वादे करते हैं। ये योजना जमीन पर कभी नहीं उतरती हैं। जनता तक आने से पहले ही योजना दम तोड़ देती है। नेताओं पर व्यंग्य करते हुए, दुष्यंत कुमार अपनी ‘गाते-गाते’ शीर्षक कविता में लिखते हैं कि-

“नेताओ! मुझे माफ़ करना/ ज़रूर कुछ सुनहले स्वप्न होंगे-

जिन्हें मैंने नहीं देखा।/ मैंने तो देखा/ जो मशालें उठाकर चले थे

वे तिमिरजयी, / अँधेरे की कहानियाँ सुनाने में खो गए।

सहारा टटोलते हुए दोनों दशक/ ठोकरें खा-खाकर लंगड़े हो गए।

अपंग और अपाहिज बच्चों की तरह/ नंगे बदन

ठंड में काँपता हुआ एक-एक वर्ष/ ऐन मेरी पलकों के नीचे से गुजरा है।

तुम्हारा आभारी हूँ रहनुमाओ! / तुम्हारी बदौलत मेरा देश

यातनाओं से नहीं, फूलमालाओं से दबकर मरा है।”²

इन नेताओं की कथनी-करनी के विषय में दुष्यंत कुमार लिखते हैं कि-

“रहनुमाओं की अदाओं पे फ़िदा है दुनिया

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 261

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 183

इस बहकती हुई दुनिया को संभालों यारों।”¹

चुनाव से पहले जो नेता जनता के सामने दंडवत प्रणाम कर रहे थे वो चुनाव होते ही उसी जनता को पहचानने से भी इनकार कर देते हैं। जनता क्या वे अपने वादों को ही भूल जाते हैं। जनता रोटी-रोटी के लिए भी मोहताज हो जाती है। नेता अधिकारों की कुर्सी पर बैठकर जनता को कीड़े-मकोड़ों से ज्यादा कुछ नहीं समझते हैं। नेता लोग किसानों के वोट पाने के लिए, उन्हें तरह-तरह की योजनाओं द्वारा ललचाते हैं। और बाद में कुर्सी के नशे में उन योजनाओं को ही हजम कर जाते हैं। किसानों की पीठ पर कर्जदारों के कोड़े पड़ते हैं। जब वह सोचने लगता है कि उसे आजादी के बाद भी दुखों के सिवा कुछ नहीं मिला है। यही वह रामराज्य है जिसके सपने रहनुमाओं ने दिखाए थे। या यह वही आजादी है जिसके लिए वर्षों खून बहाया, प्राणों की आहुति दी और संघर्ष किया था। जनता त्रासदीपूर्ण जीवन जी रही है, वहीं नेता गद्दों की कुर्सी पर बैठकर मजे उड़ा रहे हैं। जनता कड़ी धूप में श्रम कर रही है और फिर भी पेटभर खाना मोहताज नहीं है। दुष्यंत कुमार अपनी ‘अधिकारों की कुर्सी पाकर’ शीर्षक कविता में लिखते हैं कि-

“अधिकारों की कुर्सी पाकर हुए महामतवाले हैं
भूल गए वे अपनेपन को याद नहीं पिछली बातें
जिन कृषकों को ललचाया था करते हैं उन पर घातों का
क्या ये भी साम्राज्यवादिता का है नंगा नाच नहीं
आज कृषक अपनी पीठों चिर-परिचित कोड़े खाते
पीड़ित हृदयों की आहों का कैसे बोझ समहाले हैं
यही राम का राज्य कि जिसको अपना लक्ष्य बनाया था
क्या ये वही स्वराज्य कि जिस पर अपना खून चढ़ाया था।”²

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ. सं.- 283

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 166

दुष्यंत कुमार ने अपने 'एक कंठ विषपायी' नाटक में दिखाया है कि जनता रोटी के लिए भी मोहताज है। कवि नाटक में 'इंद्र के यह कहने पर कि अच्छा तुम जाओ, थके हुए लगते हो, तो 'सर्वहत्' से कहलवाते' हैं कि-

“थका हुआ नहीं हूँ/ बुभुक्षित हूँ/ सुनो!

क्या तुम्हारे पास/ एक रोटी होगी?...

दो रोटी पाने की आशा में

इतना रक्तस्राव सहकर भी

यहाँ चला आया।/ बोलो

तुम मुझको रोटी दे सकते हो।”¹

और वहीं नेता झूठ फैला देते हैं कि आजादी के बाद अब कोई दुखी नहीं है। अब दुख भरे दिन बीत गए हैं। सभी भूखों को भरपेट भोजन मिलता है या मिल रहा है। यदि कोई दुखी या भूखे रहने की बात करता है तो वह अफवाह है। इस पर व्यंग्य करते हुए दुष्यंत कुमार अपनी 'चल भई गंगाराम भजन कर' शीर्षक कविता में लिखते हैं कि-

“हर भूखे को मिले निवाले/ बीत गए वे दुर्दिन काले

इन अफवाहों को अपना ले/ उन अफवाहों का खंडन कर

चल भई गंगाराम भजन कर।”²

दुष्यंत कुमार अपनी एक अन्य 'सवाल ये है' शीर्षक कविता में नेताओं के झूठ के बारे में लिखते हैं कि ये अपनी झूठी बातों को जनता के कानों तक भोंपू लगाकर पहुंचाते हैं। वे जानते हैं कि झूठ को इतनी जोर से और इतनी बार बोलो कि जनता सच मानने लग जाये। उन्हें ये भी मालूम है कि किसी सवाल का जबाब देने से बेहतर है अपने झूठ का प्रचार। सत्य से ज्यादा असत्य की मार होती है। जनता कुछ पूछती है तो वे

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 59

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 234

कहते हैं कि हमारे पास प्रश्नों के जबाब हैं हम उत्तर देंगे। और अपने झूठ का लगातार प्रचार करते रहते हैं।
कवि इस संदर्भ में लिखते हैं कि-

वैसे सरकार कहती है-/ विदेशों में हमारी कीर्ति फैली है
देश प्रगति कर रहा है/ आदमी अब भूखा नहीं है
कीमतेँ गिर रही हैं/ ये जो सूखा पड़ा है/ ये जो कुछ मौतें हुईं
इनके पीछे देश के दुश्मनों का हाथ है/ लोग उनसे सावधान रहें
हम चाहते हैं/ दुश्मन की साजिश अब कामयाब न हो।”¹

देश के भ्रष्ट एवं स्वार्थी नेताओं का चित्रण करते हुए दुष्यंत कुमार अपने ‘एक कंठ विषपायी’ गीति नाटक में शिव कुबेर से कहते हैं कि तुम्हारा धन प्राप्त करने के अतिरिक्त भी कोई कार्य है। यही कार्य वर्तमान में नेता करते हैं। ये सामाजिक सम्पत्ति को लूट-लूटकर अपनी तिजोरियों में भर लेते हैं। इनकी यह प्रवृत्ति, इन्हें भाव-शून्य बना देती है। ये अपने कर्तव्यों से पूरी तरह विमुख हो जाते हैं। ये अपना आचरण ऐसे बदलते हैं, जैसे गिरगिट रंग बदलता है। ये बस जनता से दिखावे की सहानुभूति रखते हैं। दुष्यंत कुमार नाटक में लिखते हैं कि-

“कर्तव्य तुम्हारा/ धन-संचय से इतर/ और भी है कोई?
यदि है तो, हे धनपति कुबेर!/ यह है कुयोग/ मैं तो समझा था
धन की दृष्टि नहीं होती/ भावना शून्य हो जाते हैं/ धनवान लोग।
आत्मस्थ बना देती है सत्ता मित्रों को
आचरण बदलते जाते हैं उनके क्षण-क्षण
अपनत्व खत्म हो जाता है,/ बचा रहता है थोड़ा-सा शिष्टाचार
और औपचारिकता,/ प्रभुता का ऐसा ही होता आकर्षण।”²

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 212

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 80-81

आजादी के बाद देश में जब सत्ता जनता की मूलभूत आवश्यकता को पूरा करने में असफल रही, तो जनता में आक्रोश और विद्रोह की भावना उभरने लगी। जनता ने अपने अधिकारों के मुद्दों, प्रश्नों और समस्याओं को उठाना शुरू किया, तो सत्ता और उसके चाटुकार भक्तों को आवाज़ उठाने वाले लोग देशद्रोही लगने लगे। और सार्वजनिक मंचों से मूलभूत मुद्दों को भटकाने के लिए युद्ध और देश-प्रेम की बातें करने लग गए। कवि कहता है कि मुझे ये बातें जनता की समस्याओं के सामने बकवास लगती हैं। लोग घंटों देश और राष्ट्र के नाम पर मगरमच्छ के आँसू बहाते हैं। और मेरी आँख में एक बूंद पानी भी नहीं आता, आँसू तो दूर की बात है। मुझे लगता है जैसे इन लोगों के बीच में, मैं ही देशद्रोही, कायर और मूर्ख हूँ। मुझे ही दिखाई नहीं देता है देश-प्रेम। जिसे मीडिया और पत्र-पत्रिकाओं में मुख्य खबर बनाकर मिर्च-मशाले के साथ पेश किया जाता है। दुष्यंत की यह कविता आज भी प्रासंगिक लगती है। वे अपनी 'देश-प्रेम' शीर्षक कविता में लिखते हैं कि-

“कोई नहीं देता साथ/ सभी लोग युद्ध और देश-प्रेम की बातें करते हैं।

बड़े-बड़े नारे लगाते हैं/ मुझे बोलना भी नहीं आता।

जब लोग घंटों राष्ट्र के नाम पर आँसू बहाते हैं

मेरी आँख में एक बूंद पानी नहीं आता।...

लगता है कि मैं ही हूँ एक मूर्ख/ कायर-गद्दार

मुझे ही सुनाई नहीं पड़ता है/ देश-प्रेम/ जो संकट आते ही

समाचारों-पत्रों में डोंडी पिटवाकर/ कहलाया जाता है- बार-बार।”¹

दुष्यंत कुमार अपने काव्य के माध्यम से सत्ता को चुनौती देते हैं; साथ ही जनता से कहते हैं कि ऐसे चाटुकारों से डरने की आवश्यकता नहीं है। हम साथ मिलकर इन दमनकारी सत्ता को उखाड़कर फेंक देंगे। कवि अपनी 'दोस्त मेरे!' शीर्षक कविता में लिखता है कि-

“दोस्त मेरे/ आज तू ही नहीं/ हम भी

इसी सत्ता की चुनौती के तले हैं/ हमारे सपने निपट

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 167

बंधन नियत होने चले हैं। पर नहीं/ तूने कि जैसे सिर उठाया
और सहसा चुनौती के सामने आया/ लेखनी अपनी पराई तो नहीं
हम चुनौती की दिशा में मोड़ देंगे/ उस तरह हम भी
खनकती हुई जंजीर/ दमन की तोड़ देंगे' दुखी मत हो।”¹

दुष्यंत कुमार का ‘एक कंठ विषपायी’ गीति नाट्य भारत की राजनीति पर प्रकाश डालता है। नाटक में सामाजिक विषमता, अन्यायपूर्ण शासन व्यवस्था, भारत की वर्तमान राजनीति, शासकों का अनैतिक व्यवहार और उनकी स्वार्थी वृत्ति से पीड़ित एवं त्रस्त जनता का मार्मिक चित्रण आदि किया गया है। यह नाटक भारतीय तत्कालीन राजनीति के साथ-साथ वर्तमान राजनीति को भी चित्रित करता है। नाटक में दिखाया गया है कि किस प्रकार राजा, शासक और नेताओं ने प्राचीन काल से लेकर आज तक आम जनता पर अत्याचार और शोषण किया है। इस संदर्भ में नाटक के ‘विष्णु-सर्वहत्त’ पात्रों के एक संवाद को देख सकते हैं। युद्ध के बाद का दृश्य है, विष्णु कहता है कि जब तुम इसमें कुछ नहीं हो तो पीड़ा और दर्द क्यों भोग रहे हो। तो ‘सर्वहत्त’ कहता है कि-

“क्योंकि यह/ विधाता के नियमों की विडंबना है।
चाहे न चाहे/ किंतु/ शासक की भूलों का उत्तरदायित्व
प्रजा को वहन करना पड़ता है,
उसे गलित मूल्यों का दंड भरना पड़ता है।
और मैं मनुष्य ही नहीं हूँ/ मैं प्रजा भी हूँ।”²

जब देश आज़ाद हुआ तब देश को चलाने के लिए बुद्धिजीवियों ने एक ऐसे संविधान का निर्माण किया, जिसमें सर्वेसर्वा जनता को रखा गया। संविधान लागू होने के बाद भारत एक लोकतांत्रिक देश बन गया। जहाँ देश का प्रत्येक व्यक्ति समान है। उसके साथ किसी भी प्रकार का भेदभाव क़ानूनी अपराध घोषित किया गया। देश का मेहनतकश वर्ग सबसे ज्यादा खुश था क्योंकि वह सोच रहा था कि अब उसे शताब्दियों

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 406

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 58

की गुलामी से मुक्ति मिलेगी। उसका यह भ्रम कुछ वर्षों में ही टूट गया। आजादी के बाद भी उसके साथ भेदभाव और शोषण होता रहा है। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि संविधान के अनुसार तो मैं ही राज्य हूँ, मैं ही राजा हूँ, मैं ही प्रतिनिधि हूँ और मैं ही प्रजा हूँ, तो मुझे वर्षों की गुलामी से मुक्ति क्यों नहीं मिली है? मैं इस स्थिति में सोचने पर मजबूर हो गया हूँ आखिर मैं कौन हूँ? जनता धीरे-धीरे सब समझ रही थी कि कहने के लिए देश में लोकतंत्र है लेकिन अभी भी शोषकों के लिए राजतंत्र है। उसे बस झूठी आजादी मिली थी। इस लोकतंत्र ने आम आदमी के साथ जो मजाक किया है उसे दुष्यंत कुमार ने अपने ‘एक कंठ विषपायी’ गीति नाटक में सत्ता पर व्यंग्य करते हुए लिखा है कि-

“मैं कौन हूँ/ इस स्थिति में/ मुझको यह सोचना पड़ेगा।

शायद मैं राजा हूँ/ शायद मैं शासन का प्रतिनिधि हूँ

या मैं इस राज्य की प्रजा हूँ/ या शायद मैं कुछ भी नहीं हूँ

और सब कुछ हूँ”¹

जब ब्रह्मा सर्वहत्त से पूछते हैं कि तुम कौन हो, वह कहता है मुझे मालूम ही नहीं है कि मैं कौन हूँ? यहीं प्रश्न हमें ‘उत्तरदाता’ शीर्षक कविता में फिर दिखता है जब सत्ता के ठेकेदार पूछते हैं कि तुम कौन हो? सर्वहत्त की तरह ही जबाब देते हुए कवि लिखता है कि मुझे तुम कुछ भी कह सकते हो। मैं नागरिक, आदमी और जनता सभी हूँ। और तुम यह भी समझ लो, कि मैं ही देश हूँ, और मेरी गिनती उन पूँजीपतियों और नेताओं में मत करो जो जाति-धर्म को बैसाखी बनाकर चलते हैं और अपनी असफलताओं का दोष दूसरों पर मढ़ते हैं। कवि प्रश्न करने वाले लोगों को उत्तर देते हुए कहता है कि-

“तुम पूछते हो/ जब देश जल रहा था,/ जब लोग भूखे मर रहे थे

तब मैं क्या कर रहा था?/ तो सुनो,/ तुम शायद समझ सको,

मैं ही वह देश हूँ/ जो जल रहा था और जल रहा है,/ मैं ही वह लोग हूँ

जो भूखें मर रहे थे और मर रहे हैं/ जलने वालों से/ भूखों मरने वालों से,

मुझे अलग न करो/ मुझे मेरे देश से अलग न करो/ मैं स्वयं ही वह प्रश्न हूँ

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 56

जो तुमसे पूछता है/ कि तुम क्या कर रहे थे/ क्या कर रहे हो?

मैं जानता हूँ/ तुम मेरा उत्तर न दोगे,/ देना भी नहीं चाहोगे,

दे भी नहीं सकोगे,/ प्रश्न पूछकर तुम देश से जुड़ने का/ बहाना करते हो।”¹

लोकतंत्र में सभी नागरिकों को अपनी बात रखने और अपने अधिकारों की मांग करने का अधिकार है लेकिन शासन-तंत्र जनता को उसके अधिकारों से वंचित रखता है। यदि वह अपनी बात किसी से कहना भी चाहे तो उसकी आवाज़ को दबाने का प्रयास किया जाता है। उसकी बातों और दलीलों को आधारहीन बताया जाता है। इस संदर्भ में दुष्यंत कुमार के ‘एक कंठ विषपायी’ गीति नाटक का वह संवाद देख सकते हैं जब सर्वहत्त अपने साथ हुए भेदभाव के लिए इंद्र से कहता है तो इंद्र उसकी बातों को आधारहीन बता देते हैं। सर्वहत्त कहता है कि-

“मैं तो प्रजा हूँ/ मुझे क्या हक है?

क्या हक है जो मैं प्रलाप करूँ?

आपका अमूल्य समय नष्ट करूँ

क्षमा करें प्रभु!/ मुझको क्षमा करें।”²

आम जनता के पास केवल कहने के लिए बहुत कुछ है लेकिन वह अपनी पीड़ा को होठों से बयान नहीं कर सकती है क्योंकि उसकी सुनने वाला कोई नहीं है। उसे मालूम है। इस लोकतंत्र में आम आदमी को न्याय नहीं मिलता है। जनता विषम परिस्थितियों को देखकर समझ चुकी है कि इस लोकतंत्र में क्रिया और कारक कोई और है। जनता तो केवल लोकतंत्र वोट देने और अपना शोषण करवाने का अधिकार रखती है। हमें कोई अधिकार नहीं है कि हमारे नाम से झूठ की फसल उगाने वाले नेताओं के प्रति विद्रोह कर सकें। दुष्यंत कुमार लोकतंत्र में आम आदमी की औकात कितनी है, यह बताते हुए अपनी एक अधूरी ‘जलता सच’ शीर्षक कविता में लिखते हैं कि-

“हमारे पास क्या है/ होठों में जलता हुआ सच है

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 134

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 107

और भीतर दहकते हुए न्याय की दुहाई
हमारे हाथ क्या है केवल कलम है
हम जानते हैं कि इस तंत्र में/ क्रिया और कारक कोई है
जिसके मुँह से निकलती बात/ नोट करने के लिए
कलमें अपने आप चलने लगती हैं/ हमें यह भी पता है
कि कागज़ की तरह हम केवल/ अंकित होते जाने को अभिशप्त हैं
हमें यह हक नहीं है/ कि अपने सीने पर
उगे हुए और उगते हुए झूठ को काट दें/ या फिर स्याही के लिए
सिरदर्द हो जाएँ/ लेकिन मेंज़ पर बिखरी हुई फाईल की तरह
हमारा व्यक्तित्व होता तो हमें इस बेचैनी।”¹

6.3 स्वातंत्र्योत्तर भारतीय आर्थिक परिदृश्य और दुष्यंत कुमार का काव्य

भारत को ‘सोने की चिड़िया’ कहा जाता था। अंग्रेजों ने अपनी सत्ता स्थापित करने के बाद सोने की चिड़िया को लूटना शुरू कर दिया था। भारत को आर्थिक रूप से कमजोर बनाने में अंग्रेजों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। उन्होंने यहाँ की धन-सम्पदा को लूटकर अपने देश भेज दिया। भारत को आर्थिक रूप से खोखला कर दिया, परिणाम स्वरूप एक अच्छा खासा देश निर्धनता, बेकारी और महँगाई जैसी समस्याओं की चपेट में आ गया था। जनता आर्थिक रूप से इतनी कमजोर थी कि वह अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाती थी। वह भोजन, दवाईयों और कपड़ों आदि के अभाव में मृत्यु को प्राप्त होती थी। इसलिए स्वतंत्रता के बाद भारत की सरकारों का प्रमुख उद्देश्य देश की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करना था, और भारत को एक आत्मनिर्भर देश बनाना था जिसके लिए सरकारों ने पंचवर्षीय योजनाओं को लागू करने का निर्णय लिया था। वह अपनी योजनाओं की रूपरेखा बनाती थी और उन्हें अगले पांच वर्षों में पूरा करने का लक्ष्य रखती थी लेकिन विडम्बना यह रही कि इन योजनाओं पर सरकार करोड़ों रुपये खर्च करने के बाद भी लक्ष्यों को पूरा नहीं कर पाती थी। उसके लक्ष्यों का पूरा न होने में शरणार्थियों के आगमन, प्राकृतिक

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 135

आपदाओं और युद्धों ने महत्वपूर्ण रोल अदा किया। परिणाम यह हुआ कि भारत की आर्थिक परिस्थितियों में आमूल-चूल परिवर्तन देखने को नहीं मिले। सरकार ने पूंजीपतियों के साथ मिलकर अपने निजी स्वार्थों को साधना शुरू कर दिया था। नेताओं की परिवर्तित प्रवृत्तियों के कारण भ्रष्टाचार और चाटुकारिता अपने चरम बिन्दु पर पहुँच रही थी। उन्होंने आम जनता से, जो वादे और आश्वासन किए, उन्हें भूल गए थे। आर्थिक रूप से कमजोर होते देश में आर्थिक असमानता बढ़ने लगी थी। देश में एक तरफ पूंजीवादी वर्ग मौज से रह रहा था, वहीं दूसरी ओर जनता अभावों में कीड़े-मकोड़ों की तरह जीवन व्यतीत कर रही थी। जब मजदूर, किसान और मध्यवर्ग को गरीबी, बेरोजगारी, मँहगाई से छुटकारा नहीं मिला, वे शोषण की चक्की में लगातार पिस रहे तब इनका सरकार से मोहभंग होना शुरू हो गया था। उसकी उम्मीदें निराशा में बदल गयी थीं। उसके सपने चकनाचूर हो रहे थे। देश में गरीबी, भूख, बेरोजगारी, बेकारी, मजदूरों का शोषण, आर्थिक असमानता, लूट-खासोंट, भ्रष्टाचार और आर्थिक मोहभंग आदि समस्याएँ फैल गयी थीं। इस विषम आर्थिक परिदृश्य को दुष्यंत कुमार ने अपने काव्य में सूक्ष्मता से उभारा है।

आजादी के बाद भारत की आर्थिक स्थिति को कागजों पर मजबूत दिखाया जाता था लेकिन जमीनी हकीकत बिल्कुल अलग थी। सरकारी योजनाएँ आमजनता तक पहुँचने से पहले ही गायब हो जाती थीं और यदि कुछ पहुँच जाती थीं तो उनका लाभ लेने के लिए आमजनता को सरकारी दफ्तरों के चक्कर काटने पड़ते थे और चपरासी से लेकर ऊपर तक घूस देनी पड़ती थी। योजनाओं का बड़ा हिस्सा भ्रष्टाचारियों की भेंट चढ़ जाता था। दुष्यंत कुमार अपनी गज़ल के एक शेर में सरकारी योजनाओं के विषय में लिखते हैं कि-

“यहाँ आते-आते सूख जाती हैं कई नदियाँ,

मुझे मालूम है पानी कहाँ ठहरा हुआ होगा।”¹

इन भ्रष्ट तमाशबीन नेताओं के बारे में दुष्यंत कुमार लिखते हैं कि-

दुकानदार तो मेंले में लुट गए यारों,

तमाशबीन दुकानें लगा के बैठ गए।”²

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 262

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 267

एक ओर योजनाएँ आम जनता के लिए नदियाँ साबित हुईं। उन तक पहुँचने से पहले ही, उनका पानी सूख जाता था। दूसरी ओर आमजनता श्रम करके भी अपनी आवश्यक जरूरतों को पूरा नहीं कर पा रही थी। देश में जो आज़ादी रूपी बसंत आया था। वह जनता तक पहुँचा ही नहीं। देश की आजादी उसके लिए पतझड़ बनकर रह गयी। जो बसंत आया वह आमजनता के लिए नहीं, बल्कि सत्ता और उससे जुड़े लोगों के लिए आया था। जनता तो अपनी मूलभूत जरूरतों को पूरा करते-करते ही काल के मुँह में समा रही थी। एक व्यक्ति का जीवन रसोई से बाज़ार, बाज़ार से रसोई तक सिमटकर रह गया था। सरकार बढ़ती महँगाई को काबू कर पाने में भी नाकाम रही थी। आर्थिक अभाव से ग्रस्त एक परिवार का चित्रण करते हुए दुष्यंत कुमार अपनी 'बसंत आ गया शीर्षक कविता में लिखते हैं कि-

बसंत आ गया/ और मुझे पता भी नहीं चला।
नया-नया पिता का बुढ़ापा था।/ बच्चों के भूख/ और
माँ की खाँसी से छत हिलती थी,/ यौवन हर क्षण/
सूखे पत्तों-सा झड़ता था...
मैंने बाज़ार से रसोई तक/ जरा-सी चढ़ाई पार करने में
आयु को खपा दिया।”¹

आम आदमी घुट-घुटकर जी रहा था वहीं दूसरी ओर सत्ता में बैठे, हमारे नेता जनता के प्रति अपने कर्तव्य को भूलकर सम्पत्ति को जोड़ने में लगे हुए थे। धन की भूख ने उनकी भावनाओं को शून्य कर दिया था। वे जनता के प्रति असंवेदनशील हो गए थे या हो गए हैं। उन्हें जनता के दुखों से कोई सरोकार नहीं था। जनता भूख-भूख चिल्लाते हुए मर रही थी। जनता रोटी की भूखी थी जबकि नेता और उसके जोड़ीदार अधिकार, लिप्सा, प्रतिष्ठा, आदर्श और धन के भूखे थे। 'एक कंठ विषपायी' नाटक में सर्वहत्त(आम आदमी) पात्र कहता है कि-

हम सब मर जाएँगे एक रोज़/ पेट को बजाते
और भूख-भूख चिल्लाते/ हम सब मर जाएँगे एक रोज़

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 165-166

ठूठे रह जाएँगी/ सांसों के पत्ते झर जाएँगे एक रोज़...

यों भूखा होना/ कोई बुरी बात नहीं है,

दुनिया में सब भूखे होते हैं/ सब भूखे

-कोई अधिकार और लिप्सा का/ -कोई प्रतिष्ठा का,

-कोई आदर्शों का/ और कोई धन का भूखा होता है

ऐसे लोग अहिंसक कहाते हैं/ मांस नहीं खाते/ मुद्रा खाते हैं।¹

दुष्यंत कुमार अपनी ग़ज़ल में जनता की विपन्नता, उसके दुख, पीड़ा और लाचारिता को देखते हुए लिखते हैं कि-

“रोज जब रात को बारह का गजर होता है,

यातनाओं के अँधेरे में सफर होता है।

सिर से सीने में भी, पेट से पाँवों में कभी,

एक जगह हो तो कहें दर्द इधर होता है।”²

जनता की आर्थिक स्थिति इतनी कमजोर थी कि वह अपने त्यौहारों को भी नहीं मना पा रही थी। उसके सामने पेट की आग बुझाने का प्रश्न सबसे बड़ा था। उसकी जवानी जठराग्नि की लपटों में झुलसकर पिघल रही थी। उसकी ज्ञान-चेतना-बुद्धि ने सोचना बंद कर दिया था। जनता के सामने खाली पेट को भरना मुख्य उद्देश्य था। उसकी वही समस्या आज तक हल होती दिखाई नहीं दे रही है। इस संदर्भ में दुष्यंत कुमार अपनी ‘हे होली के त्यौहार हमें तुम माफ़ करो’ शीर्षक कविता में लाचार जनता का चित्रण करते हुए लिखते हैं कि-

हे होली के त्यौहार हमें तुम माफ़ करो...

हे आज पेट में समाधिस्थ भीषण ज्वाला

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 70-71

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ. सं.- 282

जिसकी लपटों में जलकर पिघल गया...

हम गा न सकेंगे गीत तुम्हारे स्वागत के

है क्योंकि तुम्हारी पावक से

अपनी जठराग्नि कहीं प्यारी/ हमें तुम माफ़ करो।”¹

आजादी के बाद भारत में बढ़ती महँगाई ने आम जनता को ज्यादा परेशानी में डाल दिया था। सरकार न महँगाई पर काबू पा सकी, न ही बढ़ती महँगाई के अनुपात में रोजगार मुहईया करा सकी। परिणाम यह हुआ कि देश के आर्थिक विकास का रथ महँगाई के कीचड़ में धंसता चला गया। युवा बेरोजगार होकर दर-बदर भटक रहे थे। नियुक्तियों में होने वाला भ्रष्टाचार योग्य आवेदकों को अयोग्य घोषित कर रहा था। युवाओं के सपनें बेरोजगारी की वजह से टूट रहे थे। वे पारिवारिक जरूरतों को पूरा करने में सहयोगी की भूमिका न निभाने से निराश और हताश थे। वे खुद परिवार पर बोझ बन रहे थे। उनकी जिंदगी सिगरेट की तरह खत्म हो रही थी। उन्हें अपनी डिग्रियां बोझ लग रही थी। दुष्यंत कुमार एक युवा के भविष्य के विषय में अपनी ‘भविष्य’ शीर्षक रुबाइयों में लिखते हैं कि-

“भूत-पूत वाली गलियों में गुजर गिरा कुएँ में

वर्तमान फूँकता जाता है सिगरेट के धुएँ में

है भविष्य तम का कि डिग्रियाँ रखीं ताक पर शोभित

जीवन का ही दाँव लगा है जीवन के जुए में।”²

रोजगार की तलाश में सड़क पर भटकते हुए, अपने जीवन से निराश और हताश बेरोजगार युवा का यथार्थ चित्रण करते हुए, कवि अपनी ‘बेरोजगारी : एक अनुभूति’ शीर्षक कविता में लिखता है कि-

“उस दिन ऐसी कड़क धूप थी।/ पलक मुंद गई

आसमान लगा आखों के आगे घूमने

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 203

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 285

सुस्ताने के लिए एक खंबे को पकड़ा/ पीठ टिका ली
तभी एक रिक्शे वाले ने पूछा- बाबू, कहाँ चलेंगे
मैंने पहले अपनी जेब टटोली/ फिर खाली मन!
अनायास मुँह में आई मोटी-सी गाली/ अपनी किस्मत को दे डाली
उसने बोला- ‘कहाँ चलेंगे, पता नहीं
उसको अखरा होगा कुछ/ पर मुझको अखरा।’¹

युवाओं का जीवन रोजगार की चिंता और तलाश में व्यतीत हो जाता है। उन्हें अपना जीवन बोझिल लगने लगा है। उनके जीवन की संज्ञाओं का अर्थ क्षीण हो गया है। हमारे नेता युवाओं के भविष्य से खिलवाड़ करते हैं। वे युवाओं को वोट लेने के लिए चुनाव के समय नौकरियों का आश्वासन देते हैं लेकिन चुनाव के बाद नौकरियाँ केवल विज्ञापनों तक सिमट कर रह जाती हैं। कुछ नौकरियाँ आती भी हैं तो उनमें अपने लोगों की बहाली करते हैं। नियुक्तियों में होने वाले भ्रष्टाचार में प्रतिभाशाली युवा मारा जाता है। उसके हिस्से में निराशा और हताशा ही आती है। नौकरियों का विज्ञापन प्रकाशित होने से लेकर बहाली तक युवाओं को अनेक समस्याओं को झेलना पड़ता है। आवेदन फार्म ही एक या एक से अधिक बार भरना आम बात हो गयी है। किसी तरह पेपर की तारीख तय होती है, तो तकनीकी समस्या बताकर परीक्षा की तारीख बदलते रहते हैं। परीक्षा होने के बाद पेपर लीक करा दिया जाता है। जैसे-तैसे परीक्षा होती है तो परिणाम और बहाली होने में लम्बा समय लग जाता है। इस तरह शोषित युवा सोचने लगता है कि उसकी जिन्दगी रद्दी कागजों की मोटी फाईल बनकर रह गयी है। उसका बोझ उठाते-उठाते, वह टूट गया है। उसी के जैसे जीवन से हारे अनगिनत युवा अपने में सिमट कर रह गए या रह जाते हैं। उस स्थिति का चित्रण करते हुए, दुष्यंत कुमार लिखते हैं कि-

“सोचता हूँ-/ भार यह जिंदगी/ कहाँ रख दूँ
आखिर कहाँ पर फेंक दूँ?/ दृष्टि के पथ पर महाजन-सा तिमिर
हृदय में संशय निकट भय और निराशा

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 403

और कोई जगह ऐसी नहीं इसको जहाँ रख दूँ”¹

आजादी के बाद भारत की सत्ता के सामने आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग को उभारने का प्रश्न सबसे बड़ा था। उसके लिए विभिन्न योजनाओं के कार्यान्वयन की आवश्यकता थी। सरकारों ने कुछ योजनाओं को बनाकर लागू भी किया। ये योजनाएँ कागज और जमीन के बीच में ही कहीं गायब हो गयी थीं क्योंकि जनता की आर्थिक स्थिति में कोई परिवर्तन दिखाई नहीं देता है। अमीरी और गरीबी की, जिस खाई को पाटना सरकारों का प्रथम उद्देश्य था पता नहीं यह उद्देश्य कहाँ गायब हो गया। आजादी के बाद अमीरी-गरीबी की खाई कम होने के बजाए और गहरी होती गयी। सरकारों ने अपने भ्रष्टाचारी और पूँजीपतियों के साथ मिलकर आम जनता के हिस्से की पूँजी को अपनी तिजोरियों में जमा कर लिया। परिणाम यह हुआ कि देश में आर्थिक विषमता की खाई बढ़ती ही चली गयी। मजदूर, किसान और मध्यमवर्ग आदि दिन-रात मेहनत करके भी अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संघर्ष कर रहा था। वहीं दूसरी ओर पूँजीवादी वर्ग इनके श्रम के बल पर मलाई चाट रहा था। देश में व्याप्त आर्थिक विषमता के बारे में दुष्यंत कुमार अपनी ‘कुछ’ शीर्षक कविता में लिखते हैं कि-

“कुछ लोग इस जमीन में/ जहाँ खोदते हैं
चार हाथ पर पानी निकल आता है/ अंगूठे से कुरेदते हैं रेत
तो रेत पानी से भीग जाता है
लेकिन कुछ हाथ इसी जमीन में/ जिंदगी भर खुदाई करते रहे
और कुछ सूखी पपड़ियों वाले होंठ/ पानी-पानी चिल्लाते हुए
खामोश को गए?”²

दुष्यंत कुमार ने अपनी एक गज़ल में आर्थिक असमानता का चित्रण किया है। कहाँ एक वर्ग आराम की जिन्दगी जी रहा है वहीं दूसरा वर्ग संघर्ष करते हुए गुजर-बसर कर रहा है। वे गज़ल में लिखते हैं कि-

“कहीं धूप की चादर बिछाके बैठ गए,

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 329

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 228

कहीं पर शाम सिरहाने लगा के बैठ गए।

जले जो रेत में तलुवे तो हमने ये देखा,

बहुत लोग वहीं छटपटा के बैठ गए।”¹

दुष्यंत कुमार अपनी ‘तुमने देखा’ शीर्षक कविता में महँगाई और आम आदमी की स्थिति का चित्रण करते हुए लिखते हैं कि-

“रोशनी तो क्या/ घास भी महँगी है/ और पेट को

अन्न का दाना नहीं मिलता, कि जिस्म में हया है

और एक लँगोटी के बिना शरीर का काम नहीं चलता

कि इन्द्रियाँ भूख से जड़ हो गई हैं/ या मर गई हैं।

फूल उत्तेजित नहीं करते!/ हाथ डरते-डरते फूलों को छूता है।

उनसे भी अब रस नहीं/ मवाद अधिक चूता है।”²

6.4 स्वातंत्र्योत्तर भारतीय सांस्कृतिक परिदृश्य और दुष्यंत कुमार का काव्य

स्वातंत्र्योत्तर कविता में सांस्कृतिक चेतना की गूँज सुनाई देती है। समय समाज में मानवीय और नैतिक मूल्यों का लगातार विघटन हो रहा था क्योंकि भारत में मानवीय और नैतिक दृष्टिकोण से सत्य, अहिंसा, ईमानदारी, सहयोग, सहकारिता, सहानुभूति, संवेदना, दया, और सामूहिकता आदि शब्द अपना अर्थ निरन्तर खोते जा रहे थे। इनके स्थान पर असत्य, हिंसा, बेईमानी, भ्रष्टाचार, लूट-खसोट, स्वार्थीपन, असहयोग, असहानुभूति, संवेदनहीनता, अमानवीयता और अनैतिकता आदि शब्द समाज में पैर जमाने लगे थे। समाज में धर्म के नाम पर साम्प्रदायिक तनाव लगातार फैल रहा था जिसके कारण अविश्वास, असहयोग, असहिष्णुता और संवेदनहीनता आदि माहौल बना है। इससे देश की धर्मनिरपेक्षता, अहिंसा और अखंडता आदि की छवि का पतन हुआ है। धार्मिक कट्टरता ने समाज को बांटने का काम किया है। समाज में आज भी धार्मिक अंधविश्वास फैले हुए हैं। सांस्कृतिक मूल्यों के पतन में राजनीतिक गतिविधियों

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ. सं.- 267

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 216

ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का काम किया। भ्रष्ट राजनीति ने आम जनता के जीवन मूल्यों को भी प्रभावित किया और नगरीयकरण ने आदमी को आदमी से अलग कर दिया। नगर का आदमी स्वार्थ और असम्बेदनशीलता की भावना से ग्रसित हो गया। उसका परिवार और सामाजिक संबंधों के प्रति लगाव कम हुआ है। संबंधों में सहजता, मधुरता और आत्मीयता आदि का भाव समाप्त होता जा रहा है। दुष्यंत कुमार की कविताओं में मानवीय और नैतिक सांस्कृतिक मूल्यों के पतन को देखा जा सकता है। इसके लिए हम कवि की ‘असमर्थता’ शीर्षक कविता को देख सकते हैं-

“पथ के बीचों-बीच खड़ी दीवार/ और मैं देख रहा हूँ!

बढ़ती आती रात/ चील-सी पर फैलाए,

और सिमटते जाते/ विश्वासों के साए।

तम का अपने सूरज पर विस्तार

और मैं देख रहा हूँ!”¹

दुष्यंत कुमार ने ‘जलते हुए वन का बसंत’ कविता संग्रह की ‘कहाँ से शुरू करें यात्रा’ शीर्ष कविता में बदलते हुए सांस्कृतिक मूल्यों को दिखाया है। यह समय सांस्कृतिक मूल्यों के पतन का है। धार्मिक स्थान मैदानों में बदल रहे हैं। शराब के ठेकों, दुकानों और बारों आदि में धार्मिक स्थानों से ज्यादा भीड़ दिखती है। कोई किसी के दर्द पर सहानुभूति प्रकट नहीं करता है। मानवीय संस्कार छिन-भिन्न हो गए हैं। लोग एक-दूसरे का गला काटने के लिए आतुर हैं। कोई किसी की सहायता करने के लिए राजी नहीं है। लोगों की स्वार्थता की प्रवृत्ति ने आपसी भाई-चारे को निगल लिया है। मानवीय सामूहिकता की भावना का स्थान साम्प्रदायिक उन्मादी भीड़ ने ले लिया है। लोगों ने संस्कारों को कुसंस्कारों में परिवर्तित कर दिया है। लोगों के विचार सुनकर शांति नहीं, बल्कि अशांति उत्पन्न होती है। सांस्कृतिक शब्दों ने अपनी गरिमा खो दी है। कवि कविता में लिखते हैं कि-

“आज साक्षी है युग जिसमें/ सिर्फ पाँवों तले की ज़मीन ही नहीं

बल्कि जीवन के मूल्य, तत्व, बदल गए,/ बदल गए-

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 1, पृ. सं.- 461

महाकार पर्वत, मरुस्थलों में,/ समतल मैदानों में/ जल के उद्दाम वेग
कलों-कारखानों में,/ तीर्थ स्थल, मंदिर और मस्जिद, मैदानों में,
दर्द कामनाओं में,/ मूल्य, भावनाओं में,
मानवीय संस्कार, सामायिक विचारों में,/ आस्था, प्रतीक्षा में अवसर की,
बदल गई सारी परिभाषाएँ ईश्वर की!/ ...
लोगों को तंग लग रही हैं पोशाकें/ जो संस्कृतियाँ बाँटती हैं।”¹

उपरोक्त कविता की तरह ही कवि एक अन्य अपनी ‘प्रस्तरवत’ शीर्षक कविता में लिखते हैं कि-

“सहज सरल शब्दों की/ आत्मीयता का पानी उतर गया
मेरा व्यक्तित्व हुआ/ ड्राईंग रूम में रक्खी/ पत्थर-सी मूर्ति सदृश
परदों की सिलवटों में/ बेतकल्लुफ लहजे उलझ गए।”²

दुष्यंत कुमार सांस्कृतिक मूल्यों के विघटन को चित्रित करते हुए, अपनी ‘देश’ शीर्षक कविता में लिखते हैं कि देश अपनी सांस्कृतिक पहचान को लगातार खोता जा रहा है। बस अपनी खोखली सांस्कृतिक विरासत जगजाहिर होने से, उसे फटे हुए बुरके से ढकने का प्रयास किया जा रहा है-

“संस्कारों की अरगनी पर टंगा/ एक फटा हुआ बुरका
कितना प्यारा नाम है उसका देश/ जो मुझको गंध
और अर्थ/ और कविता का कोई भी/ शब्द नहीं देता
सिर्फ एक वहशत,/ एक आशंका/ और पागलपन के साथ,
पौरुष पर डाल दिया जाता है,

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ. सं.-181

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 1, पृ. सं.- 319

ढँकने को पेट, पीठ, छाती और माथा।”¹

दुष्यंत कुमार ने धार्मिक कुंठाओं, रूढ़ियों, कुप्रथाओं और असामाजिक परम्पराओं आदि का विरोध किया है। लोगों को धर्म और सत्य के मार्ग पर चलने की सलाह देते हैं लेकिन आज के समय में धर्म के नाम पर ही सबसे ज्यादा आडम्बर हो रहे हैं। लोग अपने संस्कारों को भूल गए हैं। धर्म के ठेकेदारों ने धार्मिक ग्रंथों और पूजा-पाठ की छवि को भी धूमिल किया है। दुष्यंत कुमार अपनी एक गज़ल में लिखते हैं कि-

“गजब है सच को सच कहते नहीं हैं वो

कुरानो-उपनिषद खोले हुए हैं।”²

“ये लोग होमो-हवन में यकीन रखते हैं,

चलों यहाँ से चलें, हाथ जल न जाए कहीं।”³

कवि कुंठाओं, रूढ़ियों, कुप्रथाओं और असामाजिक परम्पराओं आदि को छोड़ने या फेंकने की बात करता है। पुराने मूल्यों से चिपके रहने से किसी देश या समाज का विकास या भला नहीं होता है इसलिए उनको छोड़कर आगे बढ़ने में ही भलाई होती है। कचरा घर में रहने से सुगंध नहीं, बल्कि दुर्गन्ध ही फैलती है। वे अपनी गज़ल में लिखते हैं कि-

“पुराने पड़ गए डर, फेंक दो तुम भी,

ये कचरा आज बाहर फेंक दो तुम भी।”⁴

“अब तो इस तालाब का पानी बदल दो,

ये कमल के फूल कुम्लाने लगे हैं।”⁵

जब समाज की गली-सड़ी रूढ़ियाँ और जीर्ण-शीर्ण परम्पराएँ जड़ हो जाती हैं तो समाज की प्रगति के लिए नए मूल्यों की आवश्यकता होती है। जब कोई व्यक्ति पुराने मूल्यों को चुनौती देकर, उन्हें बदलने

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ. सं.- 171

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ. सं.- 265

³ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ. सं.- 269

⁴ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ. सं.- 274

⁵ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ. सं.- 261

की कोशिश करता है तो अन्य लोग नए मूल्यों को मिथ्या बताते हैं। और जब तक नए मूल्यों को समाज स्वीकार नहीं कर लेता है तब तक गली-सड़ी रूढ़ियों और जीर्ण-शीर्ण परम्पराओं से जोंक के समान चिपके रहते हैं। ऐसे लोगों के विषय में दुष्यंत कुमार अपने 'एक कंठ विषपायी' गीति-नाटक में लिखते हैं कि-

“जग में जब परम्परा का खंडन कर/ कोई नया मूल्य उठता है-

लोग उसे मिथ्या कहते हैं।/ और जहाँ तक

जब तक संभव हो पाता है/ मृत परम्परा के शव से चिपके रहते हैं।

पूजा के घड़ियाल बजाते/ भाव लहरियों में बहते हैं।”¹

पुराने मूल्यों को नए मूल्यों की मान्यताओं को स्थापित करने के लिए लम्बा संघर्ष करना पड़ता है क्योंकि इन मूल्यों की जड़ें समाज में गहरी बैठी हुई होती हैं। दुष्यंत कुमार ग़ज़ल में लिखते हैं कि-

ये दरवाज़ा खोलो तो खुलता नहीं है,

इसे तोड़ने का जतन कर रहा हूँ।”²

आधुनिक समय में व्यक्ति के जीवन का कोई मानवीय मूल्य नहीं बचा है जिसका विघटन नहीं हो रहा हो। जीवन की मान्यताएँ बदल गयी हैं। हमारे सांस्कृतिक जीवन को विसंगतियों और विद्रूपताओं ने दूषित कर दिया है। लोगों ने झूठ, फरेब और स्वार्थ आदि को अपना मित्र बना लिया है और सत्य, ईमानदारी और सदाचार आदि को शत्रु बना लिया है। चारों तरफ दिखावा परोसा जा रहा है। मनुष्य अपनी मानवता खो चुका है। दुष्यंत कुमार अपनी ग़ज़ल में लिखते हैं कि-

“अब नई तहजीब के पेशे-नजर हम,

आदमी को भूनकर खाने लगे हैं।”³

मनुष्य ने जैसे-जैसे आधुनिकता को अपनाया, वैसे-वैसे वह एक दिखावे का जीवन जीने की ओर अग्रसर हो गया। उसने अपने मानवीय मूल्यों को ताक पर रख दिया। उसने ठोस मूल्यों को छोड़कर खोखले मूल्यों

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ. सं.- 81

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ. सं.- 265

³ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ. सं.- 262

को ग्रहण किया। इससे उसका ही नहीं, बल्कि समाज का भी पतन शुरू हो गया। दुष्यंत कुमार ऐसे समाज के वातावरण यथार्थ का चित्रण करते हुए लिखते हैं कि-

“हालते जिस्म सूरते जाँ और भी खराब,
चारों तरफ खराब, यहाँ और भी खराब।
सोचा था उनके देश में महंगी है जिंदगी,
पर जिंदगी का भाव वहाँ और भी खराब।”¹

लोग अपनी संस्कृति और मूल्यों को भूलकर पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण करने लगे हैं। अनुकरण कोई बुरी प्रवृत्ति नहीं है। जो हमारे लिए हितकर नहीं है उसका अनुकरण बुरा जरूर है। लोगों ने पाश्चात्य संस्कृति की अच्छाइयों के साथ-साथ बुराईयों का भी अनुकरण किया है। दुष्यंत कुमार फैशन के नाम पर अपने बदनों की नुमाइशबाजी करते हुए लोगों के विषय में अपनी गज़ल में लिखते हैं कि-

“लफ्ज एहसास से छाने लगे, ये तो हद है,
लफ्ज माने भी छुपाने लगे, ये तो हद है।
जिस्म पहरावों में छिप जाते थे, पहरावों में-
जिस्म नंगे नज़र आने लगे, ये तो हद है।”²

इस प्रकार निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि दुष्यंत कुमार के काव्य में स्वातंत्र्योत्तर भारत के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिदृश्य को सूक्ष्मता, गहनता, व्यापकता और विविधता के साथ चित्रित किया गया है। कवि ने अपने काव्य में तत्कालीन समय के प्रश्नों, मुद्दों, समस्याओं, विसंगतियों, विडम्बनाओं और जटिलताओं आदि को यथार्थ रूप में चित्रित किया है। आजादी के आसपास का समय जनता के लिए नये आत्म-विश्वास और भविष्य की आशाओं-इच्छाओं-आकांक्षाओं का समय था। जनता की सत्ता से उम्मीदें थी कि आजादी के बाद मूलभूत वस्तुओं के लिए संघर्ष नहीं करना पड़ेगा। देश में अपना शासन होगा। किसी के साथ भेदभाव नहीं होगा, और चारों ओर सुख-समृद्धि की फसल

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 282

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ. सं.- 286-287

लहराएगी लेकिन कुछ वर्षों बाद ही जनता की उम्मीदें टूटने लगीं, उसकी आशाएँ निराशा में बदलने लगीं। दुष्यंत कुमार के काव्य में जनता के इसी मोहभंग की स्थिति का यथार्थ चित्रण हुआ है। काव्य में जनता की पीड़ा, दुःख, दर्द, निराशा, हताशा, घुटन, विवशता, लाचारिता आदि दयनीय स्थिति का चित्रण हुआ है। एक तरफ देश में आम आदमी गरीबी, बेरोजगारी, महँगाई, भ्रष्टाचार, आर्थिक विषमता और पूंजीवाद आदि के कारण दरिद्रों वाला जीवन जीने के लिए मजबूर था, दूसरी तरह सत्ता जनता के हितों को भूलकर अपने हितों को साधने में लगी हुई थी। कवि ने अपने काव्य में राजनीतिक समस्याओं का विविध पहलुओं से यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है, साथ ही जनतंत्र की विवशता, राजनीतिक विसंगति, विडम्बना, विद्रूपताएं, नेताओं के झूठे वादे, नेताओं की नीतियों, परेशान जनता, भ्रष्ट और स्वार्थी नेताओं का चित्रण आदि विषयों को उठाया है। दुष्यंत कुमार ने अपने काव्य में नेताओं के झूठे वादों-आश्वासनों, भ्रष्टाचार और उनके 'मुँह में राम, बगल में छुरी' वाले दोहरे चरित्र को नंगा किया है। दुष्यंत कुमार ने अपने काव्य में देश की आर्थिक विषमता का यथार्थ चित्रण किया है। उन्होंने अपने काव्य में गरीबी, महँगाई, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार और आर्थिक विषमता आदि प्रश्नों को उठाकर सत्ता पर प्रहार किया है साथ ही आर्थिक दृष्टि से पिछड़ी आम जनता की दयनीय स्थिति का चित्रण किया है। उन्होंने अपने काव्य में रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा और स्वास्थ्य, गरीबी, महँगाई की चक्की में पिसती जनता, रोजगार की तलाश में भटकते युवा, मजदूरों का शोषण, योजनाओं में होने वाला भ्रष्टाचार, देश में बढ़ती आर्थिक विषमता आदि विषयों को उठाया है। देश में जनता बढ़ती महँगाई से परेशान थी, वह अपनी आवश्यक वस्तुओं को पूरा करने में भी संघर्षरत थी। दुष्यंत कुमार ने मानवीय और सामाजिक मूल्यों का विघटन, टूटती मान्यताएँ, पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण आदि का चित्रण अपने काव्य में किया है, साथ ही अंधविश्वास, गली-सड़ी रुढ़ियों, कुंठाओं और जीर्ण-शीर्ण परम्पराओं का विरोध किया है। कवि ने धार्मिक विकृतियों पर भी चोट की है। दुष्यंत कुमार ने अपने काव्य के माध्यम से सांस्कृतिक मूल्यों की टूटी-बिखरी मान्यताओं पर प्रहार करते हुए, इनकी विसंगतियों को मार्मिकता के साथ अभिव्यक्त किया है। जनता को नये मूल्यों को स्वीकार करने के लिए प्रेरित किया है।

दुष्यंत कुमार ने अपने काव्य में जनता की समस्याओं के यथार्थ चित्रण के साथ-साथ जनता को आशा की उम्मीद भी बंधाने का काम किया है। वे जनता को बिना डरे संघर्षों का सामना करने का हौसला देते हैं क्योंकि स्वयं दुष्यंत कुमार 'कविता को राजनीतिक, सामाजिक और वैयक्तिक, हर स्तर पर, हर लड़ाई में

अपने लिए भरोसे का हथियार मानते हैं।¹ वे सही अर्थों में जनता से प्रतिबद्ध कवि हैं। दुष्यंत कुमार 'साये में धूप' गज़ल संग्रह की भूमिका में अपनी प्रतिबद्धता के विषय में लिखते हैं कि, "मैं प्रतिबद्ध कवि हूँ... यह प्रतिबद्धता किसी पार्टी से नहीं, आज के मनुष्य से है और मैं जिस आदमी के लिए लिखता हूँ, यह भी चाहता हूँ कि वह उसे पढ़े और समझे।"² वे जनता को पीड़ाओं और संघर्षों के बीच से जीने का रास्ता दिखाते हैं। दुष्यंत कुमार का काव्य मानवता, सामाजिक परिवेश, यथार्थबोध, प्रणयानुभूति आदि का दस्तावेज़ है।

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 140

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली, भाग- 2, पृ. सं.- 240

सातवाँ अध्याय:

दुष्यंत कुमार के काव्य का शिल्प-विधान

किसी भी साहित्यिक रचना या कृति की सफलता या जीवंतता, उसके कथ्य या भाव के साथ-साथ शिल्प पर भी निर्भर करती है। यदि कथ्य या भाव उसकी आत्मा है तो 'शिल्प' उसका शरीर है। इंसान और रचना दोनों के अस्तित्व के लिए दोनों ही तत्व आवश्यक हैं। साहित्यकार अपने भावों को पाठक तक प्रभावी रूप से संप्रेषित करने के लिए एक माध्यम चुनता है। यही माध्यम साहित्यिक भाषा में 'शिल्प' कहलाता है। यह शिल्प प्रत्येक साहित्यकार का अपना अलग होता है, जो उसे दूसरे साहित्यकारों से अलग करता है। किसी भी साहित्यकार के शिल्प निर्माण में 'भाषा' महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भाषा वह सम्पत्ति है जिसे साहित्यकार ने परिवार और समाज की प्रयोगशाला में रहकर अर्जित किया है। जो उसके शरीर में आत्मा की तरह समाई हुई है। वह सहज और सहृदयता के साथ कुछ बोलता या लिखता है तो उसकी अभिव्यक्ति में क्षेत्रीयता का प्रभाव स्पष्ट झलकता है। वह अपनी अभिव्यक्ति को प्रभावी बनाने के लिए, अपने क्षेत्र विशेष की बोली या भाषा के शब्द, बिम्ब, प्रतीक और मुहावरे-लोकोक्तियाँ आदि को ग्रहण करता है जिनके प्रयोग से साहित्यकार और पाठक के बीच तादाम्य स्थापित होता है इसलिए रचना या कृति की सफलता में 'शिल्प' का महत्वपूर्ण स्थान है। श्यामसुन्दर दास 'शिल्प' के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं कि, "कवि या लेखक की सामग्री चाहे कैसी ही उत्तम क्यों न हो और उसके भाव, विचार और कल्पनाएँ चाहे कितनी ही परिपक्व और अद्भुत क्यों न हों, जब तक उसकी कृति में रूप-सौन्दर्य नहीं आवेगा, जब तक वह अपनी सामग्री को ऐसा रूप न दे सकेगा जो अनुक्रम सौष्ठव और प्रभावोत्पादकता के सिद्धांतों के अनुकूल हो, तब तक उसकी कृति काव्य न कहला सकेगी।"¹

संस्कृत साहित्य में 'शिल्प' शब्द का प्रयोग 'साहित्य, संगीत व कला' आदि के लिए हुआ है। 'शिल्प' शब्द के लिए अंग्रेजी भाषा में आर्ट, टेकनीक, एक्सप्रेसन, क्राफ्ट आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है लेकिन 'टेकनीक' शब्द को 'शिल्प' के पर्याय के रूप में सबसे अधिक स्वीकार किया गया है। इस शब्द को लेकर आलोचकों में मतभेद भी है क्योंकि 'टेकनीक' शब्द का अर्थ है, किसी कार्य को निष्पन्न करने की विशेष विधि से संबंधित है 'टेकनीक' से शिल्प नियम या शिल्प विज्ञान का बोध होता है, जबकि

¹ श्यामसुन्दरदास, साहित्यलोचन, पृ.सं. - 313

शिल्प का अर्थ कौशलपूर्ण रचना से है। साहित्यकार के पास 'शिल्प' एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा वह अपने विषय की खोज करता है, उसका विश्वास करता है और उसका अर्थ समझाते हुए उसका मूल्यांकन करता है।

आलोचकों ने शिल्प को शैली से अधिक विस्तृत और व्यापक माना है। शिल्प के अंतर्गत भाषा, बिम्ब, प्रतीक, शब्द-चयन, मुहावरे-लोकोक्तियाँ, अलंकर और छंद आदि तत्व आते हैं जिनसे मिलकर किसी रचना का 'शिल्प' तैयार होता है। इन सभी बिन्दुओं के आधार पर हम दुष्यंत कुमार के शिल्प-विधान को समझ सकते हैं-

7.1 दुष्यंत कुमार की काव्य-भाषा

भाषा, वह शक्ति है जिसके द्वारा कवि अपने को अभिव्यक्त करता है, और अपने सामाजिक जीवन के तथ्यों से अवगत कराता है। जो भाषा कवि की अनुभूतियों को ज्यों की त्यों पाठक तक सम्प्रेषित नहीं करती वह कुछ भी हो सकती है लेकिन काव्य की भाषा नहीं हो सकती है। काव्य की भाषा में आए शब्द ऐसे होने चाहियें जो कवि के भावों का भार वहन करने के साथ अपने अर्थ को भी व्यंजित कर सकने में समक्ष हों। कविता की भाषा के विषय में रामेश्वर कम्बोज 'हिमांशु' लिखते हैं कि, “कविता किसी भी कवि के हृदय की गहन अनुभूति, विचारों का मंथन और कल्पना का अनुरंजन है। कवि का चिन्तन जितना गहन होगा, अनुभूति जितनी सान्द्र होगी, कल्पना जितनी बहुरंगी होगी, भाषा जितनी जमीन से जुड़ी होगी और बहुआयामी होगी, कविता उतनी ही प्रभविष्णु और प्रमाणिक होगी।”¹ वहीं श्याम सुन्दरदास काव्य और भाषा के सम्बन्ध में लिखते हैं कि, “भाषा ऐसे सार्थक शब्द-समूहों का नाम है जो एक विशेषक्रम से व्यवस्थित होकर हमारे मन की बात दूसरे के मन तक पहुँचाने और उसके द्वारा उसे प्रभावित करने में समर्थ होते हैं।”² इसलिए किसी भी रचना के 'शिल्पगत' अध्ययन में काव्यभाषा का महत्वपूर्ण स्थान होता है। उसकी सफलता और उत्कृष्टता भाषा पर ही निर्भर करती है।

दुष्यंत कुमार के काव्य का भाव और भाषा दोनों जमीन से जुड़ी हुई है। उनके काव्य को पढ़कर पाठक को ऐसा लगता है जैसे वह अपनी अनुभूतियों को अपनी ही भाषा में लिखकर स्वयं पढ़ रहा हो। काव्य को पढ़कर पाठक कवि की अनुभूतियों से तादात्म्य स्थापित कर लेता है। ऐसा इसलिए होता है कि दुष्यंत कुमार

¹ गद्यकोश. कॉम, 10/02/2021

² श्यामसुन्दरदास, साहित्यलोचन, पृ.सं.- 316

ने अपने और सामाजिक अनुभवों को जनसामान्य की भाषा में ही लिपिबद्ध किया है। वे अपने विचारों को बिना लाग-लपेट के सरल और सहज भाव से काव्य में प्रस्तुत करते हैं क्योंकि वे कविता में चमक-दमक के हिमायती नहीं थे। उनका उद्देश्य केवल इतना रहता था कि जिनके लिए वे कविता लिख रहे हैं, वे उसे पढ़ और समझ सकें। इसलिए वे लिखते हैं कि, “मैं कविता को चौंकाने या आतंकित करने के लिए इस्तेमाल नहीं करता, गो कि ऐसा करके लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचा जा सकता है। परंतु कविता से केवल यह अपेक्षा कितनी कम है। मैं जनता हूँ कि अहसास के अनेक स्तरों को चीरती हुई, व्यक्तित्व के भीतर देर तक उतर जाने वाली चीज़, कविता होती है। उसे इतनी छोटी भूमिका नहीं दी जा सकती। समाज और व्यक्तित्व के संदर्भ में उसका दायित्व इससे बहुत बड़ा है।”¹ वे अपने भावों और विचारों की अभिव्यक्ति को सरल, सहज और सुगम बनाने के लिए किसी भी भाषा के शब्दों का प्रयोग करने में संकोच नहीं करते हैं। उनकी भाषा बहती हुई नदी के समान है जो अपने रास्ते में आने वाले सभी प्रकार के पदार्थों को अपने अस्तित्व का अंग मानकर आगे बढ़ जाती है। उनकी भाषा का यही गुण उनके काव्य को जनमानस के लिए ग्राही बनाता है। जिस काव्य की भाषा में जनमानस के जीवन से शब्द लिए जाते हैं, वह काव्य उतना ही सशक्त होता है। उनके काव्य की भाषा संस्कृतनिष्ठ होने के बावजूद सरल, सहज, सुगम है। उनकी भाषा पर उर्दू का भी प्रभाव है। या ये कहें उनकी काव्य की भाषा एक मिश्रित भाषा है। वे अपने काव्य में उस भाषा का प्रयोग करते हैं जिसे आम आदमी बोलता है। भाषा में तरलता और तीव्रता का गुण विद्यमान है। उनकी काव्य भाषा आत्मीयता के साथ सीधे पाठक के हृदय में उतरती है। पाठक को वह अपनी भाषा लगती है। दुष्यंत कुमार अपने काव्य की भाषा के विषय में ‘जलते हुए वन का वसंत’ काव्य संग्रह की भूमिका में लिखते हैं कि, “ये कविता इसी हद तक मेरी हैं कि मैंने इन्हें लिखा और भोगा है। यदि आपको इनमें पहचाना-स्वर, आत्मीय-सी भाषा और अपनी-सी बात नजर आए तो यह मेरी सफलता है।”²

दुष्यंत कुमार अपनी भाषा के विषय में लिखते हैं कि, “एक बात इन ग़ज़लों की भाषा के बारे में मुझे और कहनी है, जिसे लेकर शुरू-शुरू में मुझे सबसे अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ा। मेरी दिक्कत यह है कि उर्दू मैं जानता नहीं और हिंदी में मुझे वह चुहल, वह मुहावरा और बोलचाल का वह बहाव नहीं मिला, जिसके सहारे ग़ज़ल कही जाती है या जो ज्यादातर लोगों की जबान पर चढ़ा है। मगर यही अज्ञानता मेरे लिए एक शक्ति बन गई, क्योंकि मुझे लगा कि आम आदमी एक मिली-जुली जबान बोलता है। वह न

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 139

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 140

तो शुद्ध उर्दू होती है, न शुद्ध हिंदी। इसलिए मैंने इस भाषा की तलाश शुरू की जो हिंदी को हिंदी और उर्दू को उर्दू दिखाई दे और आम आदमी उसे अपनी जुबान समझकर अपना सके। इस प्रक्रिया में मैंने उर्दू शब्दों के तत्सम रूपों को रद्द करके उन्हें उस तरह स्वीकार किया, जिस तरह वे हिंदी में प्रचलित हैं। यों प्रयोग के लिए मैंने कुछ गज़लें शुद्ध हिंदी और कुछ शुद्ध उर्दू में कही हैं। किन्तु मैंने देखा है कि उनमें से ज्यादातर या तो ज्यादा साहित्यिक हो गई हैं या ज्यादा कृत्रिम। और मैं सामान्य जीवन की जिस बेचैनी को उजागर करना चाहता हूँ, वह शब्दों की चमक-दमक में कहीं खो गई है। इसलिए इन गज़लों में गजलियत के साथ मेरी एक कोशिश यह भी रही है कि हिंदी और उर्दू के बीच ये एक सेतु का काम कर सकें।¹ हालांकि यह बात दुष्यंत कुमार ने अपनी गज़लों की भाषा के विषय में कही है लेकिन यह कथन उनकी कविताओं की भाषा पर भी लागू होती है। उनके काव्य की भाषा मिश्रित हिंदी भाषा है जो न पूरी तरह संस्कृतनिष्ठ हिंदी है, न पूरी तरह उर्दू है बल्कि उनके काव्य की भाषा वह है जिसे भारत का आम आदमी बोलता है और भारत का आम आदमी मिश्रित हिंदी भाषा ही बोलता है। यदि कहीं दुष्यंत कुमार ने शुद्ध हिंदी लिखने का प्रयास किया है तो वहां उनका काव्य ज्यादा साहित्यिक हो गया है या बनावटी। और उसको ग्रहण करने में आम पाठक को भी कठिनाई होती है। दुष्यंत कुमार अपने काव्य के पाठक वर्ग के विषय लिखते हैं कि, “मैं ऐसे हवाई पाठक की कल्पना नहीं करता हूँ, जिसके बौद्धिक आयाम मेरे साँचों से मेल खाता हों। मैं तो खुद पाठक के रूप में, उस कविता की खोज में हूँ जो हर व्यक्ति की कविता हो और हर कंठ से फुटे।”² दुष्यंत कुमार अपनी कविता से कुछ ज्यादा ही उम्मीद करते हैं इसलिए वे कविता को अधिक कंठों तक ग्राह्य बनाने के लिए, भाषा को अधिक सुगम, सहज, सरल, आस्वादक बनाना अपना प्रथम उद्देश्य मानते थे जिससे उनकी कविता का आस्वाद आम पाठक भी कर सके। दुष्यंत कुमार अपनी काव्य भाषा के शब्दों के विषय में लिखते हैं कि-

“देखते रहना तुम

मेरे शब्दों ने हार जाना नहीं सीखा है

क्योंकि भावना इनकी माँ है

इन्होंने बकरी का दूध नहीं पिया

¹सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 239

²सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 140

ये दिन के उस कोने में जन्मे हैं

जहाँ सिवाय दर्द के और कोई नहीं रहा।”¹

दुष्यंत कुमार के काव्य-भाषा की सरलता, सहजता और सुगमता को, उनकी ‘गति के गीत’ शीर्षक कविता में देख सकते हैं-

“करने को शीश और हाथ बहुत

चलने को पाँव और साथ बहुत

बढ़ने को राह बहुत/ मन में उत्साह बहुत

गति का यह गीत रुक न जाए

आखिर बिखराव कहाँ बाँधोगे

बढ़ते चलो निरंतर हैं राह बहुत”²

दुष्यंत कुमार की काव्य अभिव्यंजना की क्षमता, उनकी ‘देश’ शीर्षक कविता में दिखती है। कविता में कवि ने कम शब्दों में ही ‘बिहारी’ की तरह ‘गागर में सागर’ भर दिया है। वे कविता तार्किकता और तर्कशीलता के साथ तीखे विद्रोही स्वर में लिखते हैं कि-

“संस्कारों की अरगनी पर टंगा/ एक फटा हुआ बुरका

कितना प्यारा नाम है उसका देश/ जो मुझको गंध

और अर्थ/ और कविता का कोई भी/ शब्द नहीं देता

सिर्फ एक वहशत,/ एक आशंका/ और पागलपन के साथ

पौरुष पर डाल दिया जाता है,/ ढँकने को पेट, पीठ, छाती और माथा।”³

¹सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 370

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 154

³ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 171

दुष्यंतकुमार की काव्य की भाषा में वर्णनात्मक, संवादात्मक, चित्रात्मक और प्रतीकात्मक की प्रवृत्ति भी विद्यमान है। इस संदर्भ में उनकी कुछ कविताओं को उदाहरण के लिए देख सकते हैं-

वर्णनात्मक-

“मामूली बात नहीं है
कि इन अगन भट्टियों के दहानों पर बीते हुए
हम, तुमसे फूलों और बहारों की बात कर लेते हैं,
अपनी बाहें आकाश की ओर उठाकर
बच्चों की तरह चिल्ला उठते हैं कभी-कभी
टैंकों और विमानों के कोलाहलों को
जीवन का नारा लगाकर/एक नए स्वर से भर देते हैं।”¹

संवादात्मक-

“नहीं!
अभी रहने दो!
अभी यह पुकार मत उठाओ!...
अभी और सब्र करो!”²

चित्रात्मक-

“उस दिन ऐसी कड़क धूप थी/ पलक मुंद गई
आसमान आँखों के आगे लगा घूमने
सुस्ताने के लिए एक खंबे को पकड़ा/ पीठ टिका ली

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 174

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 371

तभी एक रिक्शे वाले ने पूछा- ‘बाबू, कहाँ चलेंगे?’”¹

प्रतीकात्मक-

“मैं हूँ वह शिलालेख

विस्फोटित ज्वालामुखी पर्वत के अंतर में

बोझ की तहों के तले दबा हुआ

जिस पर इस युग की परिभाषाएँ

इच्छाएँ, आशाएँ/ कुंठाएँ, घुटन, वेदनाएँ/ अब अंकित हैं।”²

काव्यभाषा में शब्द-चयन भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है जिसके विषय में श्यामसुन्दर दास लिखते हैं कि, “लेखकों और कवियों को शब्दों का चुनाव पर बहुत ध्यान देना चाहिए। उपयुक्त शब्दों का प्रयोग सबसे आवश्यक बात है, और यह गुण प्रतिपादित करने में उन्हें दत्तचित्त रहना चाहिए। इस कार्य में स्मरण-शक्ति बहुत सहायता देती है। शब्दों के आधार पर ही उत्तम काव्य-रचना हो सकती है। इस नींव पर यह सुंदर प्रासाद खड़ा किया जा सकता है। अतएव यह आवश्यक ही नहीं बल्कि अनिवार्य है कि कवि या लेखक का शब्द-भंडार बहुत प्रचुर हो।”³ दुष्यंत कुमार ने काव्य में अपनी और समाज की अनुभूतियों को सरल, सहज और सुगम ढंग से व्यक्त करने के लिए किसी भी भाषा या क्षेत्रीय बोलियों के शब्दों के प्रयोग से संकोच नहीं किया है। उनकी भाषा ऐसे शब्दों के प्रयोग से आम पाठक के लिए भी ग्राह्य बन गयी है। यही कारण है कि दुष्यंत कुमार काव्य की पहुँच जमीन से जुड़े हुए, जन-मानस तक है। कवि ने अपने लिए एक नयी भाषा गढ़ी है। उनके काव्य में भाव के साथ-साथ काव्यभाषा का भी महत्वपूर्ण योगदान है जिसके कारण दुष्यंत कुमार आज भी पाठकों के दिल पर छाए हुए हैं। दुष्यंत कुमार की ऐसी कविताएँ उदहारण स्वरूप देख सकते हैं

“जैसे बिजली का स्विच दबे

और मशीन चल निकले,

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 403

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 387

³ श्यामसुंदरदास, साहित्यलोचन, पृ.सं.- 317

वैसे ही मैं था बस/ मूक विवशा।”¹

उपरोक्त पंक्तियों में ‘स्विच’ और ‘मशीन’ दोनों अंग्रेजी भाषा के शब्द हैं।

“सब बियाबान, सुनसान अँधेरी राहों में
खंदकों, खाईयों में”²

उपरोक्त पंक्तियों में ‘बियाबान’ फ़ारसी, ‘सुनसान’ और ‘राहों’ उर्दू भाषा के शब्द हैं।

“ये दुहरी जिंदगी अब और अधिक देर नहीं
लोग हैं ये/ इनके जज़्बात न बुझ जाएँ कहीं
इन्हें ले जाओ- इन्हें चाय पिलाओ/ जाओ
वाचक से कहो चुप हो जाए, बंद कर ले वह किताब
जिसको तोते की तरह पढ़ता रहा।”³

उपरोक्त पंक्तियों में ‘जिंदगी’ और ‘जज़्बात’ फारसी, ‘चाय’ चीनी, ‘वाचक’ संस्कृत और ‘किताब’ अरबी आदि भाषा के शब्द हैं।

“सुख लो परिस्थिति से,/ घर की स्वतंत्रता से,
ड्राइंगरूम में जाकर बैठो/ सोफों पर कूदों
परदे झिंझोड़ दो।”⁴

उपरोक्त पंक्तियों में ‘ड्राइंगरूम’ अंग्रेजी, ‘सोफों’ अरबी और हिब्रू, और ‘परदे’ अरबी आदि भाषा के शब्द हैं।

“मैंने घर का नक्शा बदल दिया।

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 368

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 376

³ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 450

⁴ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 470

प्लास्टर करवाने के चक्कर में

कमरों में बिल बनवा लिए।”¹

उपरोक्त पंक्तियों में ‘नक्शा’ और ‘कमरा’ क्रमशः उर्दू भाषा और पुर्तगाली भाषा के शब्द हैं।

7.2 दुष्यंत कुमार के काव्य में बिम्ब-विधान

किसी रचना या कृति के ‘शिल्पगत’ अध्ययन में ‘बिम्ब’ का महत्वपूर्ण स्थान होता है। बिम्ब एक प्रकार का चित्र होता है। जैसे एक चित्रकार पेन्सिल और रंगों की सहायता से चित्र बनाता है, वैसे ही एक कवि या साहित्यकार शब्दों द्वारा चित्र का निर्माण करता है। काव्य में बिम्बों के प्रयोग से अभिव्यक्ति की सम्प्रेषणियता क्षमता बढ़ जाती है। “बिंब अंग्रेजी के (IMAGE) शब्द का हिंदी रूपांतरण है। इसका अर्थ है किसी पदार्थ को मूर्त रूप प्रदान करना, चित्रबद्ध करना अथवा मानसी प्रतिकृति उतारना। ‘बिंब’ एक प्रकार का भावगर्भित शब्द-चित्र है जो सिर्फ हमारी चक्षु-इन्द्रिय को ही तृप्त नहीं करता, अन्य इंद्रियों की भूख भी मिटाता है।”²

कवि केदारनाथ सिंह ‘बिम्ब’ के विषय में लिखते हैं कि, “सामान्यतः बिंब शब्द का प्रयोग मूर्तिमत्ता अथवा चित्रात्मकता के अर्थ में किया जाता है। परन्तु आज समीक्षा में उसका चित्रात्मकता वाला अर्थ गौण हो गया है और वह उन समस्त काव्यगत विशेषताओं का बोधक बन गया है जो पाठक को ऐन्द्रिय चेतना के किसी भी स्तर पर प्रभावित करती है।”³

डॉ. बच्चन सिंह ‘बिम्ब’ को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि, “किसी भाव विचार, वस्तु, घटना आदि का ऐन्द्रिय संवेद्य काल्पनिक शब्द-बद्ध संमूर्तन काव्य बिम्ब है। बिम्ब ऐन्द्रिय संवेद्य होना अनिवार्य है, क्योंकि इसके आभाव में उसका रचनात्मक होना संभव नहीं है। काव्य बिम्बों में रूप, रस, गंध, स्पर्श और स्वाद के बिम्ब समाहित हैं। बिम्बों का इतना वैविध्य साहित्य की किसी अन्य विधा अथवा कला के किसी अन्य रूप में नहीं मिलेगा।”⁴

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 164

² डॉ. अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृ.सं.- 247

³ केदारनाथ सिंह, आधुनिक कविता में बिम्बविधान, पृ.सं.- 2

⁴ डॉ. अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृ.सं.- 250

‘बिम्ब’ के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं कि, “काव्य का काम है कल्पना में बिम्ब या मूर्तभावना उपस्थित करना है, बुद्धि के सामने कोई विचार लाना नहीं।”¹

‘बिम्ब’ का सामान्य अर्थ है- शब्दचित्र। ‘बिम्ब’ साहित्य का एक ऐसा उपकरण है जो कवि मन की भावनाओं की अभिव्यक्ति को प्रभावी बनाता है। कविता में बिम्ब का प्रयोग कविता के आन्तरिक सौंदर्य को बढ़ाता है। ‘बिम्ब’ के द्वारा दुष्यंत कुमार ने सार्थक चित्र बनाये हैं। उन्होंने परिवेश से बिम्बों को उठाकर अपने काव्य में स्थान दिया है। उनके काव्य में ऐन्द्रिय संवेदनाओं से युक्त ‘बिम्ब’ अधिक मिलते हैं। उनके काव्य में ‘बिम्ब’ इस प्रकार हैं-

दृश्य या दृष्टि बिम्ब-

दृश्य बिम्ब वहाँ होता है जहाँ काव्य में कहे गए भावों, विचारों और बातों का दृश्य पाठक की नजरों के सामने घूमने लगता है। दुष्यंत कुमार के ‘एक कंठ विषपायी’ गीति नाटक में यह दृश्य बिम्ब देख सकते हैं-

“सारे नगर में ताजा/ जमा हुआ रक्त है
और सड़ी हुई लाशें हैं मुड़ी हुई हड्डियाँ हैं
क्षत-विक्षत तन हैं/ और उन पर भिन्नाते हुए चीलों
और गिधों के झुण्ड/ और मक्खियाँ हैं।”²

कवि ने अपनी ‘सूर्यास्त: एक इम्प्रेशन’ शीर्षक कविता में सूर्य के पूरे दिन की गतिशीलता को सुंदर दृश्य बिम्ब में चित्रित किया है। जिसे पढ़कर ऐसा लगता है जैसे हमारे सामने कोई फिल्म चल रही हो-

“सूरज जब/ किरणों के बीज रत्न/ धरती के प्रांगण में
बोकर/ हारा-थका/ स्वेद-युक्त/ रक्त-बदन/ सिंधु के किनारे
निज थकान मिटाने को/ नए गीत पाने को/ आया,

¹ डॉ. बच्चन सिंह, आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द, पृ.सं.- 82

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 55

तब उस निर्मम सिंधु ने डुबो दिया,
ऊपर से लहरों की अँधियाली चादर ली ढाँप
और शांत हो रहा।”¹

दुष्यंत कुमार की एक ग़ज़ल में दृश्य बिम्ब इस प्रकार से आया है-

“धूप से अठखेलियाँ हर रोज करती है,
एक छाया सीढ़ियाँ चढ़ती उतरती है।”²

श्रव्य या ध्वनि बिम्ब-

ध्वनि बिम्ब का संबंध कान से है। पाठक को काव्य पढ़कर ऐसा लगता है जैसे उसके कानों में किसी वस्तु या पदार्थ की ध्वनि, नाद या आवाज पड़ रही हो। दुष्यंत कुमार की ‘दिन निकलने से पहले’ शीर्षक कविता में ध्वनि बिम्ब इस प्रकार से उपस्थित है-

“मनुष्यों जैसी/ पक्षियों की चीखें और कराहें गूँज रही हैं,
टीन के कनस्तरों की बस्ती में/ हृदय की शक्ल जैसी अंगीठियों से
धुआँ निकलने लगा है,/ आटा पीसने की चक्कियाँ
जनताके संमिलित नारों की सी आवाज़ में/ गड़गड़ाने लगी हैं।”³

दुष्यंत कुमार ने ‘एक सफर पर’ शीर्षक कविता में ट्रेन से निकलने वाली ध्वनि का बिम्ब इस प्रकार से खींचा है-

“एक नितांत अपरिचित रास्ते से/ गुजरते हुए पी-पा पी-पा
पहियों की खड-खड की कर्कश आवाज़ें/ रेल की तेज रफ्तार

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 360

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 283

³ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 347

धक-धक धुक-धुक/ चारों ओर।”¹

गंध बिम्ब-

गंध बिम्ब का संबंध नाक से होता है। इस प्रकार के काव्य में ऐसे शब्दों का प्रयोग होता है जिसे पढ़कर पाठक को गंध का आभास होता है। इस बिम्ब के अंतर्गत सभी प्रकार के पदार्थों से आने वाली सुगंध तथा दुर्गंध संबंधी बिम्ब आते हैं। ‘एक कंठ विषपायी काव्य नाटक में भगवान शंकर सती के शव को अपने कंधों पर लेकर घूम रहे थे। उस दृश्य को देखकर वरुण कुबेर से कहते हैं कि-

“शव को चिपटाए फिरते हैं देह से!// क्या तुमको

दुर्गन्ध नहीं आई उस क्षण से!

मैं तो खड़ा नहीं रह पाया/ पासनिमिष भरा।”²

आस्वाद बिम्ब-

आस्वाद बिम्ब का सम्बन्ध ‘जीभ’ से होता है। जब इस प्रकार के बिम्ब को पाठक पढ़ता है तो उसे मुँह में, काव्य में आये, खाद्य पदार्थ के वर्णन मात्र से लार आने लगती है। दुष्यंत कुमार अपनी एक गज़ल में चावल के सूप का जिक्र इस प्रकार किया है-

“कुछ यों बिखर रहे हैं अकीदे इधर-उधर

हाथों से छूट जाए भरा चावल का सूप”³

दुष्यंत कुमार ने ‘सुबह: समाचार-पत्र के समय’ शीर्षक कविता में सुबह के समय चाय पीते हुए अखबार पढ़ते हुए व्यक्ति का आस्वाद बिम्ब खींचा है-

“सुबह-सुबह चाय पर/ जबकि हवा होती है- खुनक

लोग, समाचार-पत्रों के पन्नों में/सरसरी नजर से”⁴

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 152

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 84

³ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 118

⁴ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 158

स्पर्श-बिम्ब-

स्पर्श बिम्ब का संबंध त्वचा से होता है। स्पर्श बिम्ब वहाँ होता है, जहाँ पाठक को काव्य को पढ़कर ऐसा लगता है जैसे उसे अपने हाथों से स्पर्श किया हो।

“एक तीखी आँच ने/ इस जन्म का हर पल छुआ
हाथों से गुजरता कल छुआ
हर बीज, अँकुआ, पेड़-पौधा, फूल-पत्ती, फल छुआ,
जो मुझे छूने चली/ हर उस हवा का आँचल छुआ।”¹
“जाने कैसी उंगलियाँ हैं जाने क्या अंदाज है,
तुम पत्तों को छुआ था जड़ हिलाकर फेंक दी।”²

पौराणिक-धार्मिक बिम्ब-

पौराणिक-धार्मिक बिम्बों का संबंध पौराणिक-धार्मिक घटनाओं या पात्रों से होता है। ऐसा ही एक चित्र दुष्यंत कुमार ने अपनी ‘भविष्य की वंदना’ शीर्षक कविता में रामायण काल का खींचा है-

“सुनो, आहत राम ने लक्ष्मण को पुकारा
हरी गयी सीता!
अब किसी बियाबान वन में जटायु टकराएगा।”³

एक चित्र दुष्यंत कुमार ने अपनी ‘सत्यान्वेषी’ शीर्षक कविता में श्रीकृष्ण के जीवन की घटना से खींचा है-

“फेनिल आवर्तों के मध्य/ अजगरों से घिरा हुआ
विष-बुझी फुंकारे/ सुनता-सहता/ अगम, नीलवर्णी

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 437

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 286

³ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 453

इस जल के कलियादह में/ दहता
सुनो, कृष्ण हूँ मैं,/ भूल से साथियों ने
इधर फेंक दी थी गेंद/ उसे लेने आया हूँ।”¹

प्राकृतिक बिम्ब -

प्राकृतिक बिम्ब का संबंध प्राकृतिक वस्तु या पदार्थ से होता है। इस प्रकार के काव्य को पढ़कर पाठक अपने आप को प्रकृति की गोद में बैठा हुआ महसूस करता है

“सूरज जब /किरणों के बीज-रत्न /धरती के प्रांगण में
बोकर हारा- थका / स्वेद—/ युक्त/ रक्त-वदन
सिन्धु के किनारे निज थकान/ मिटाने को
नए गीत पाने को / आया।”²
“चाँदनी छत पर चल रही होगी
अब अकेली टहल रही होगी।”³

7.3 दुष्यंत कुमार के काव्य में प्रतीक-विधान

साहित्यकार अपनी अभिव्यक्ति को प्रभावी और संक्षिप्त रूप से कहने के लिए ‘प्रतीक’ का प्रयोग करता है। प्रतीकों का प्रयोग भारतीय साहित्य में प्राचीन काल से हो रहा है। यह कोई नयी अवधारणा नहीं है। रचना के शिल्पगत अध्ययन में प्रतीकों का महत्वपूर्ण स्थान है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कहना है कि, “प्रतीक सर्वदा अपने से इतर संकेत देता है। समुद्र चातक आदि की अर्थवत्ता स्वयं इनमें नहीं है, बल्कि इनके द्वारा संकेतित विशिष्ट अर्थ में है। प्रतीक रूपक, बिम्ब और मिथक से भिन्न है। रूपक में सादृश्य का भाव रहता है। लेकिन प्रतीक सादृश्य के आगे भावना जगाने का कार्य करता है। प्रतीक द्वारा अदृश्य सारत्वकी अभिव्यक्ति होती है। बार-बार प्रयुक्त होने पर बिम्ब प्रतीक

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 380

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 360

³ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 270

बन जाते हैं।... धर्म और विज्ञान के प्रतीकों से साहित्यिक प्रतीक इस अर्थ में भिन्न होते हैं कि पहले दोनों में उनका अर्थ सुनिश्चित होता है, पाठक और प्रयोक्ता एक ही अर्थ ग्रहण करते हैं, किंतु साहित्यिक प्रतीक के संबंध में पाठक और प्रयोक्ता के बीच मतैक्य नहीं भी हो सकता है, प्रायः नहीं होता।”¹

“‘प्रतीक’ का शाब्दिक अर्थ ‘चिन्ह’ है। यह अंग्रेजी के ‘सिम्बल’ शब्द के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है। ‘प्रतीक’ ऐसे चिह्न अथवा शब्द चिह्न को कहते हैं जिसके माध्यम से किसी अन्य वस्तु का बोध होता है। हिंदी साहित्य कोश के अनुसार ‘प्रतीक’ शब्द का प्रयोग उस दृश्य अथवा गोचर वस्तु के लिए किया जाता है जो किसी अदृश्य (अगोचर या अप्रस्तुत) विषय का प्रतिविधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है। अथवा कहा जा सकता है कि किसी अन्य स्तर की समानरूप वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु प्रतीक है। जैसे अदृश्य या अप्रस्तुत ईश्वर, देवता अथवा व्यक्ति का प्रतिनिधित्व उसकी प्रतिमा या अन्य कोई वस्तु कर सकती है।”²

दुष्यंत कुमार ने अपने काव्य में बहुलता के साथ प्रतीकों का प्रयोग किया है। कवि ने प्रतीकों का प्रयोग चमत्कार के लिए नहीं किया है, बल्कि इनके काव्य में ये प्रतीक सहजता के साथ उपस्थित हुए हैं। उनके प्रतीकों की योजना पाठक को बहुत प्रभावित करती है। उन्होंने सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण करने के लिए प्रतीकों का सहारा लिया है इन प्रतीकों के प्रयोग से उनकी अभिव्यक्ति अधिक प्रभावी हो गयी है। दुष्यंत कुमार ने अपने काव्य में प्रतीकों का प्रयोग निम्न प्रकार से किया है-

प्राकृतिक प्रतीक-

दुष्यंत कुमार के काव्य में प्राकृतिक प्रतीकों की सुन्दरता मिलती है। हम यहाँ उनके काव्य में आये नदी, समुद्र और पर्वत प्रतीकों को अलग-अलग उदाहरणों के माध्यम से देख सकते हैं। कवि ने अपनी ‘एक पत्र का अंश’ शीर्षक कविता में ‘नदी’ प्रतीक का प्रयोग देश के विकास के नाम पर सत्ता जो भ्रष्टाचार करती है इस संदर्भ में किया है-

“मुझे लिखना/ वह नदी जो वही थी इस ओर!

छिन करती चेतना की राख के स्तूप,

¹ डॉ. बच्चन सिंह, आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द, पृ.सं.- 72

² डॉ. अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृ.सं.- 228

क्या अब भी वहीं है?/ बह रही है?

या गई है सूख वह/ पाकर समय की धुप?”¹

एक ग़ज़ल में भी दुष्यंत कुमार ने ‘नदी’ प्रतीक का प्रयोग उपरोक्त संदर्भ में ही किया है-

यहाँ तक आते-आते सूख जाती हैं कई नदियाँ,

मुझे मालूम है पानी कहाँ ठहरा हुआ होगा।”²

दुष्यंत कुमार की अपनी ‘अभिव्यक्ति का प्रश्न’ शीर्षक कविता में ‘समुद्र’ प्रतीक का प्रयोग ‘गहराई में छुपी रहस्यमयकता’ के संदर्भ में हुआ है-

“मैं जो समुद्र-सा

सैकड़ों सीपियों-को छिपाए बैठा हूँ,

सैकड़ों लाल मोती खपाए बैठा हूँ,

कितना विवश हूँ!”³

दुष्यंत कुमार ने अपनी ग़ज़ल में अपनी या जनता की वेदना, पीड़ा, दुख, निराशा और हताशा को प्रकट करने के लिए ‘पर्वत’ प्रतीक का प्रयोग किया है। कवि ने यहाँ ‘पर्वत’ प्रतीक का प्रयोग विशालता, ऊँचाई और विस्तृतता आदि के अर्थ में किया है। प्रस्तुत शेर में ही ‘गंगा’ प्रतीक का प्रयोग ‘शीतलता प्रदान करने’ के अर्थ में किया है-

“हो गई है पीर पर्वत-सी, पिघलनी चाहिए,

इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।”⁴

सांस्कृतिक प्रतीक-

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 350

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 262

³ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 356

⁴ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 272

दुष्यंत कुमार के काव्य में ‘सांस्कृतिक’ प्रतीक बहुत आये हैं। इन प्रतीकों का संबंध धर्म, धार्मिक कथाओं और संस्कृति आदि से होता है। कवि ने अपनी ‘ओ मेरे मन’ शीर्षक कविता में भगवान ‘शंकर’ के प्रतीक का प्रयोग विष पीने के अर्थ में किया है। अमृत मंथन के समय भगवान शंकर ने विष पी लिया था। जब से शंकर भगवान विष पीने का प्रतीक बन गए हैं-

“जैसे अब तक जिए/ व्यथा का यह क्षण भी जी लो

ओ मेरे मन/ कड़वी दवा समझकर विष पी लो

तुम ही तो शंकर हो मुझमें”¹

दुष्यंत कुमार ने अपनी ‘कुंठा’ शीर्षक कविता में महाभारत की कथा से ‘कुंती’ को ‘सांस्कृतिक’ प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है। कवि कहना चाहता है कि मेरी कुंठा ‘कुंती’ की तरह हो गयी है। ‘कुंती’ कुंवारी गर्भवती होने के बाद जो समाज की लोक-मर्यादा के कारण घुटन भरा जीवन जिया था। इस अर्थ में कवि ने ‘कुंती’ प्रतीक का प्रयोग किया है-

“गर्भवती है/ मेरी- क्वारी कुंती!

बाहर आने दूँ/ तो लोक-लाज मर्यादा

भीतर रहने दूँ/ तो घुटन, सहन से ज्यादा,

मेरा यह व्यक्तित्व सिमटने पर अमादा”²

ऐतिहासिक प्रतीक-

दुष्यंत कुमार ने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को लेकर बहुत सारी कविताएँ लिखी हैं लेकिन ‘ऐतिहासिक’ प्रतीक न के बराबर प्रयोग किए हैं। इन प्रतीकों का संबंध ऐतिहासिक संदर्भों से होता है। कवि ने अपनी ‘एक चुनाव-परिणाम’ शीर्षक कविता में ‘लौह-पुरुष’ प्रतीक का प्रयोग किया है। ‘लौह-पुरुष’ ‘सरदार वल्लभभाई पटेल जी को कहा जाता है। इस प्रतीक का प्रयोग कवि ने ‘लोकतंत्र को अहिमयत देने’ के संदर्भ में किया है-

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 323

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 335

“लौह-पुरुष बनकर पुजने वाला पुतला

मोम का निकला।

एक फूँक से बुझ गया

सूरज समझा जाने वाला चिराग।¹

जीवन व्यापर संबंधी प्रतीक-

दुष्यंत कुमार के काव्य में ‘जीवन व्यापर संबंधी’ प्रतीकों का प्रयोग अधिक देखने को मिलता है। इन प्रतीकों का संबंध दैनिक जीवन से जुड़ी घटनाओं और क्रिया-कलापों से होता है। कवि ने अपनी ‘जीवित-अजीवित प्रश्न’ शीर्षक कविता में ‘गेहूँ के दानों के बिखरने’ का प्रतीक का प्रयोग आजादी के मोहभंग से व्यक्ति के, जो सपने और प्रश्न बिखर गए थे, इस अर्थ में किया है-

गेहूँ के दानों-से धरती पर बिखर गए

जीवित-अजीवित प्रश्न

नहीं उगेंगे/ अभी नहीं उगेंगे।”²

दुष्यंत कुमार ने अपनी ‘दूसरा प्रारूप’ शीर्षक कविता में ‘मोटी फाइल’ को ‘व्यक्ति जीवन के दुखों’ और ‘सिगरेट’ को ‘दुखों के सहारे’ आदि के अर्थ में, काव्य में प्रयोग किया है-

“कागजों की एक मोटी बड़ी फाइल-सी

जिंदगी अब पढ़ी जाती नहीं प्यारे

अब नहीं खुलते पुराने अर्थ

जब अखबार-सा पढ़ लिया करता उसे आद्यंत

सिगरेट की सहारे!”³

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 180

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 313

³ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 329

दुष्यंत कुमार ने अपनी 'मैं और मेरा दुःख' शीर्षक कविता में दुःख और सुख के लिए क्रमशः 'चिड़िया का अभी जन्मे बच्चे' और 'तमंचे की गोली' प्रतीकों का प्रयोग किया है-

दुःख/ किसी चिड़िया के अभी जन्मे बच्चे-सा;

किंतु सुख :/ तमंचे की गोली जैसा/ मुझको लगा है।”¹

राजनीतिक प्रतीक -

दुष्यंत कुमार के काव्य में राजनीतिक चेतना सशक्त रूप से चित्रित हुई है जिसके कारण कवि ने 'राजनीतिक' प्रतीकों का खूब प्रयोग किया है। इन प्रतीकों का संबंध राजनीति से होता है। कवि ने अपनी 'उत्तरदाता' शीर्षक कविता में नेताओं और पूँजीपतियों की शोषणकारी छवियों को प्रतीक रूप में प्रयोग किया है। कविता में आम आदमी अपने आप को पूँजीपति और नेता कहलाने के बजाए बुद्धिजीवी, कवि अथवा कलाकार कहलाना पसंद करता है-

“बुद्धिजीवी, कवि अथवा कलाकार

मुझे तुम कुछ भी कहो...

उन पूँजी-जीवियों और नेताओं में

मेरी गिनती करना फिजूल है

जो कोम को बैसाखी बनाकर चलते हैं

और अपनी नाकामियों का दोष दूसरों पर मढ़ते हैं।”²

दुष्यंत कुमार इस शेर में आम आदमी के लिए 'झुनझुने' प्रतीक का प्रयोग किया है। लोकतंत्र में आम आदमी 'झुनझुना' बनकर रह गया है, जिसे कोई भी आकर बजा जाता है। आम आदमी कोई भी वादों और आश्वासनों के नाम पर मूर्ख बना जाता है-

“जिस तरह चाहो बजाओ इस सभा में,

हम नहीं हैं आदमी, हम झुनझुने हैं।”³

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 342

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 133-134

³ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 280

7.4 दुष्यंत कुमार के काव्य में अलंकार

कवि भाषा और भावों के सौंदर्य में वृद्धि करना चाहता है। इसके लिए वह जिन साधनों को अपनाता है, उसे 'अलंकार' कहते हैं। अलंकार का शाब्दिक अर्थ है- 'आभूषण'। आभूषण का मूल कार्य सौंदर्य बढ़ाना होता है, चाहे उसे साहित्य, व्यक्ति कोई भी धारण करे। साहित्यकार और व्यक्ति दोनों मनुष्य ही हैं और मनुष्य अपनी प्रत्येक वस्तु को सबसे सुंदर देखना चाहता है इसलिए साहित्यकार अपने काव्य को सुंदर बनाने के लिए अलंकारों का प्रयोग करता है। अलंकार को संस्कृत साहित्य में काव्य की 'आत्मा' कहा गया है। कवि अपनी रचना या कृति के शिल्प को प्रभावी और आकर्षक बनाने के लिए अलंकारों का प्रयोग करता है। काव्य में अलंकारों का प्रयोग सहज होना चाहिए यदि चमत्कार के लिए अलंकार का प्रयोग होता है तो वे काव्य पर भार बन जाते हैं। दुष्यंत कुमार के काव्य में जहाँ भी अलंकार आए हैं, बिल्कुल सहज रूप से आए हैं वहाँ उनके प्रयोग से कवि की काव्य-भाषा में चार चाँद लग गए हैं। दुष्यंत कुमार के काव्य में आये अलंकार इस प्रकार हैं-

अनुप्रास अलंकार-

जहाँ स्वर की समानता के बिना भी वर्णों (व्यंजनों) की आवृत्ति दो या दो से अधिक बार हो वहाँ 'अनुप्रास अलंकार' होता है। दुष्यंत कुमार के काव्य में 'अनुप्रास' अलंकार के उदाहरण इस प्रकार हैं-

“नजर-नवाज नजारा बदल न जाए कहीं,

जरा सी बात है मुँह से निकल न जाए कहीं।”¹

उपरोक्त शेर में 'वर्ण' की आवृत्ति अनेक बार हुई है इसलिए यहाँ अनुप्रास अलंकार है।

श्लेष अलंकार-

जहाँ वाक्य में एक शब्द, एकही बार आये और शब्द के दो या दो से अधिक अर्थ निकले वहाँ 'श्लेष' अलंकार होता है -

“चाँदनी छत पे चल रही होगी,

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 268

अब अकेली टहल रही होगी।”¹

दुष्यंत कुमार के उपरोक्त शेर में ‘चाँदनी’ शब्द का प्रयोग हुआ है लेकिन अर्थ दो हैं। एक ‘चाँदनी’ का अर्थ ‘चाँद की रोशनी’ है, दूसरा ‘चाँदनी’ का अर्थ ‘स्त्री’ का नाम है।

उपमा अलंकार-

जहाँ किसी वस्तु या प्राणी की तुलना अत्यंत समानता के कारण किसी अन्य प्रसिद्ध वस्तु या प्राणी से की जाए, वहाँ ‘उपमा’ अलंकार होता है-

“दुख किसी चिड़ियाँ के अभी जन्में बच्चे-सा।”²

“हो गई है पीर पर्वत सी पिघलनी चाहिए”

इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।”³

“दूध के कटोरे सा चाँद उग आया,

बालकों सरीखा यह मन ललचाया।”⁴

“खंडहरों सी भाव शून्य आँखे

नभ से किसी नियंता की बात जोहती है।

बीमार बच्चों से सपने उचाट है;/ टूटी हुई जिंदगी

आँगन में दीवार से पीठ लगाए खड़ी है।

कटी हुई पतंगों से हम सब/ छत की मुंडेरों पर पड़े हैं।”⁵

उपरोक्त उदाहरणों में ‘उपमा’ अलंकार है क्योंकि ‘दुःख की तुलना चिड़िया के अभी जन्मे बच्चे से’, ‘पीर (दुःख) की तुलना पर्वत से’, ‘दूध के कटोरे की तुलना चाँद से’, ‘भाव शून्य आँखों की तुलना

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 270

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 342

³ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 272

⁴ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 366

⁵ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 372

खंडहरों से’ और टूटी हुई या निराश जिंदगी या जीवन की तुलना छत की मुंडेर पर पड़ी हुई कटी पतंग से’ की गयी है।

रूपक अलंकार-

जब किसी गुण या विशेषता की अत्यंत समानता के कारण उपमेय को ही उपमानबता दिया जाता है। वहाँ ‘रूपक’ अलंकार होता है।

“कि क्या ये जलाशय
मेरे हृदय की वेदना का नहीं है प्रतिरूप
मेरे ही विकल व्यक्तित्व की सुविधाँ नहीं
तट पर खड़ी तरू-पाँति।”¹

उपरोक्त कविता में ‘जलाशय’ की तुलना ‘हृदय की वेदना’ से विशालता के आधार पर की गयी है।

उत्प्रेक्षा अलंकार-

जहाँ किसी समानता के कारण उपमेय में उपमान की कल्पना या संभावना व्यक्त किया जाए, वहाँ ‘उत्प्रेक्षा’ अलंकार होता है। साहित्यकार कल्पना या संभावना व्यक्त करने के लिए- मनु, जनु, जनहु, जानों, मानों, मानहु, ईव और ज्यों आदि शब्दों का प्रयोग करता है।

“ये रोशनी है हकीकत में छल लोगों
कि जैसे जल में झलकता हुआ महल लोगों।”²

भ्रान्तिमान अलंकार-

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 476

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 271

जब किसी वस्तु में अन्य वस्तु के होने का भ्रम हो जाए। और ऐसा लगने लगे कि अन्य वस्तु ही मूल वस्तु है जबकि वह मूल वस्तु नहीं है। जहाँ ऐसी स्थिति का चित्रण होता है वहाँ ‘भ्रान्तिमान’ अलंकार होता है।

“ये सारा जिस्म झुककर बोझ के दुहरा हुआ होगा,

मैं सजदे में नहीं था, आपको धोका हुआ होगा।”¹

“बोझ इतना आ पड़ा सहसा

कि निकले प्राण

लोग समझे मुझे

प्रतिमा का मिला वरदान।”²

उपरोक्त शेर और कविता की पंक्तियों में ‘भ्रान्तिमान’ अलंकार है क्योंकि आम आदमी जीवन बोझ उठाते झुक गया है लेकिन अन्य लोग उसे सजदे(नमाज़ पढ़ते वक्त की एक स्थिति) में समझ रहे हैं। दूसरे उदहारण में भी आम आदमी जीवन का बोझ उठाते-उठाते मर कर निर्जीव बन गया है लेकिन लोग उसके मरने को मूर्ति बनने का वरदान समझ रहे हैं।

वक्रोक्तिअलंकार-

वक्रोक्ति एक काव्यालंकार है जिसमें काकु या श्लेष के द्वारा पंक्तियों से अर्थ ग्रहण किया जाता है। जहाँ जान बूझकर श्रोता वक्ता द्वारा कही गयी उक्ति का गलत बताता है। वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है।

“महादेव शंकर का पूजन अब युद्धस्थल में ही होगा।”³

इसमें पूजन शब्द का अर्थ पूजा या श्रद्धा के अर्थ में न होकर हिंसा, प्रतिघात या मरण के रूप में हुआ है।

विरोधाभास अलंकार-

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 262

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 384

³ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 91

जहाँ काव्य की पंक्तियों में विरोध का आभास प्रकट होता है लेकिन विरोध होता नहीं है, वहाँ ‘विरोधाभास’ अलंकार होता है।

“जो आदमी मर चुके थे, मौजूद हैं इस सभा में,
हर एक सच कल्पना से आगे निकलने लगा है।”¹

“यहाँ दरख्तों के साये में धूप लगती है,
चलों यहाँ से चले और उम्र भर के लिए।”²

उपरोक्त दोनों शेरों में ‘विरोधाभास’ अलंकार है क्योंकि एक शेर में आदमी मरकर भी सभा में है। दूसरे शेर में दरख्तों के साये में भी आदमियों को धूप लग रही है। दोनों स्थितियों में विरोध है।

पुनरुक्ति अलंकार-

जब किसी वाक्य में कोई वर्ण या शब्द या पद की बार-बार आवृत्ति होती है। आवृत्ति तो समान रूप से होती है लेकिन अर्थ में कोई भिन्नता नहीं होती है, ऐसी स्थिति में ‘पुनरुक्ति’ अलंकार होता है।

“हर सड़क पर, हर गली में, हर नगर, हर गाँव में,
हाथ लहराते हुए लाश चलनी चाहिए।”³

“गुलमोहर, इस साल खिल पाए नहीं तो क्या!
सत्य, यदि तुम मुझे मिल पाए नहीं तो क्या!”⁴

“हर एक अक्षर शेषवाचक प्रश्न-सा
हर एक कविता मुक्ति की प्रार्थना-सी
हर एक लय बेचैन ममता-सी।”⁵

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 267

² सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 261

³ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 2, पृ.सं.- 272

⁴ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 361

⁵ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 407

“तुमको अचरज है-मैं जीवित हूँ!

उनको अचरज है-मैं जीवित हूँ!

मुझको अचरज है-मैं जीवित हूँ!”¹

उपरोक्त उदाहरणों में पुनरुक्ति अलंकार है। पहले उदाहरण में ‘हर’, दूसरे उदाहरण की दोनों पंक्तियों में ‘पाए नहीं तो क्या’, ‘तीसरे उदाहरण में ‘हर एक’ और ‘अचरज है-मैं जीवित हूँ!’ आदि में पदों की आवृत्ति बार-बार हुई है इसलिए यहाँ ‘पुनरुक्ति’ अलंकार है।

निष्कर्ष रूप से दुष्यंत कुमार के काव्य के शिल्प-विन्यास के बारे में कहा जा सकता है कि दुष्यंत कुमार के काव्य का चिंतन-पक्ष जितना महत्वपूर्ण है, उतना ही उनके काव्य का शिल्प-पक्ष भी महत्वपूर्ण है। कवि के काव्य का शिल्पपक्ष सराहनीय है। इनके काव्य की भाषा सुंदर और स्वाभाविक है। जो आम आदमी की भाषा के बहुत करीब है। उन्होंने अपने काव्य में युगीन परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण आम बोलचाल की भाषा में अभिव्यक्त किया है। यह उनके काव्य की सबसे बड़ी ताकत बन गयी है। कवि की काव्यभाषा में विभिन्न भाषाओं के लोकप्रचलित शब्दों का प्रयोग हुआ है, जिसके कारण वह सरल, सहज और सुगम बन गयी है इसलिए आम पाठक भी उनके काव्य के साथ तादात्म्य स्थापित कर पाता है। कवि ने अपने काव्य के शिल्प के लिए अपनी बौद्धिकता का दिखावा नहीं किया है क्योंकि वे अपने काव्य का आस्वाद आम पाठक को कराना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि आम जनता को मालूम चले उनके जीवन से जुड़े प्रश्न, मुद्दों और समस्याओं को कोई उठा रहा है। वैसे भी दुष्यंत कुमार अपने काव्य के लिए किसी हवा-हवाई पाठक की कल्पना नहीं करते हैं। उन्होंने अपने भावों को आम भाषा में बिम्बों, प्रतीकों और अलंकार आदि के साथ आम पाठक तक पहुँचाने का सफल प्रयास किया है। कवि ने ये बिम्ब और प्रतीक जमीन से उठाएँ हैं, ये पाठक को अपनेपन का आभास कराते हैं। कवि ने चमत्कार उत्पन्न करने के लिए बिम्ब, प्रतीक और अलंकारों आदि का प्रयोग नहीं किया है लेकिन जहाँ प्रयोग सहज और स्वाभाविक रूप से हुआ है वहाँ उन्हें सफलता मिली है। वे कविता के विषय में लिखते हैं कि

“सोचता हूँ मैं अगर कुछ छंद

जिनमें शुद्ध यति-गति ही जुटा लूँ

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 339

अलंकार को पुरानी/ किसी पुस्तक से उठा लूँ
और उनको जोड़कर रख दूँ/ किसी के सामने तो
क्या उसे कविता कहेंगे?”¹

¹ सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार की रचनावली, भाग- 1, पृ.सं.- 383

उपसंहार

दुष्यंत कुमार के काव्य में चिंतन के विविध आयाम व्यक्त हैं। उनका काव्य आम आदमी के जीवन की व्याख्या बनकर सार्थकता की कसौटी पर खरा उतरता है। यहाँ आम आदमी के दुःख की तीव्र अनुभूति दिखती है। इनके काव्य में आम आदमी की पीड़ा सम्पूर्ण समाज की पीड़ा बनकर उभरी है।

कवि ने आम आदमी के दुख-दर्द, पीड़ा, वेदना, निराशा, असंतोष आदि का चित्रण करने के साथ ही उसे आशावादी बनाने का भी महत्वपूर्ण कार्य किया है। कवि आम आदमी को विषम परिस्थितियों में संघर्षशील रहने की सलाह देता है। उन्होंने अपने काव्य के द्वारा आशा की ज्योति को जलाए रखा है। दुष्यंत कुमार विद्रोही प्रवृत्ति के होने के बावजूद आशावादी कवि हैं। काव्य में चित्रित आम आदमी का संघर्ष, कवि का अपना आत्म-संघर्ष बन गया है। उनकी और उनके काव्य की प्रतिबद्धता आम आदमी से जुड़ी है। कवि उन्हें कर्मशील और संघर्षशील रहने की प्रेरणा देता है। कवि मानता है कि बिना संघर्ष के परिस्थितियों में परिवर्तन नहीं आ सकता है। दुष्यंत कुमार ने अपने काव्य में देश की तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण किया है। यहाँ आम आदमी की दयनीय स्थिति के साथ-साथ सत्ता के धूर्त-दोहरे चरित्र का भी यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है।

स्वतंत्रता के बाद उत्पन्न हुई मोहभंग की स्थिति के कारण व्यवस्था के प्रति विद्रोह, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक मूल्यों का पतन, भ्रष्टाचार, झूठ, बेईमानी और लूट-खसोट आदि की बढ़ती घटनाओं ने संवेदनहीनता की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया था। समाज का विकास सफल राजनीतिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है लेकिन तत्कालीन समय में राजनीतिक गतिविधियाँ बहुत डावाँडोल थी। देश के राजनेता अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को साधने के चक्कर में देश की आम जनता को भूल गए थे, जिसका यथार्थ चित्रण कवि के काव्य में देखने को मिलता है। कवि ने देश के रहनुमाओं की पोल खोलकर, आम आदमी को सजग और जागरूक करने का भरसक प्रयास किया है। उनके काव्य में भारतीय राजनीतिक विद्रूपताएँ, भ्रष्ट और स्वार्थी नेताओं का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

दुष्यंत कुमार ने अपने काव्य के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया है कि देश की स्वतंत्रता दो दशकों के बाद भी आम आदमी तक नहीं पहुँची है। उसकी स्थिति में कोई आमूल-चूल परिवर्तन नहीं आया है। जनता स्वतंत्र देश में भी शोषितों वाला जीवन जीने के लिए मजबूर है। कवि अपने काव्य में आम आदमी की दयनीय स्थिति और संघर्षशील जीवन के साथ-साथ उसे उम्मीद और आशा की राह भी दिखाता है। उनका काव्य आम आदमी को त्रासदीपूर्ण जीवन से बाहर निकलने की प्रेरणा देता है।

‘स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिदृश्य और दुष्यंत कुमार का काव्य’ शोध प्रबंध के अंतर्गत मैंने दुष्यंत कुमार के काव्य को युगीन परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयास किया है।

किसी भी साहित्य पर अपने तत्कालीन परिवेश की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। हिंदी साहित्य पर भी स्वतंत्रता के बाद के परिवेश का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। यही प्रभाव दुष्यंत कुमार के काव्य की आधार भूमि है।

सैकड़ों वर्षों की गुलामी के बाद भारतवासियों ने स्वतंत्र भारत में साँस ली थी। वे अच्छे दिनों की चाहत में देश की कमान नेताओं को सौंपकर उस दिन का इंतजार करने लगे। सरकारें आती-जाती रहीं और योजनाओं के बिल भोली-भाली जनता के नाम पर फटते रहे लेकिन यह खेल ज्यादा दिनों तक नहीं चल सका। जनता समझ चुकी थी कि सत्ता गोरे अंग्रेजों के जाने के बाद भूरे अंग्रेजों ने हथिया ली है। जनता के सपने ताश के घरों की तरह ढह गए; और परिणाम स्वरूप जनता में निराशा का भाव फैलने लगा था। पंचवर्षीय योजनाओं का कार्यकाल एक-एक करके पूरा हो रहा था लेकिन जनता के पास दुखों और धूमिल आशाओं के सिवा कुछ नहीं था। इस दौरान समय-समय पर पड़ने वाले विभिन्न अकालों और दो युद्धों ने परिस्थितियों को और कठिन बना दिया था। हालत इतने नाजुक हो चुके थे कि कृषि प्रधान कहे जाने वाले देश को अनाज तक विदेशों से आयात करना पड़ा। भारत मँहगाई और आर्थिक संकट के दौर से गुजर रहा था। इंदिरा गाँधी द्वारा दिया गया ‘गरीबी हटाओ’ का नारा भी मिथ्या सिद्ध हुआ क्योंकि जनता रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा और स्वास्थ्य आदि मूलभूत जरूरतों के लिए भी संघर्षरत थी। गरीब और अमीरों के बीच की खाई दिनोंदिन बढ़ती ही गयी। भारत की सरकारें युवाओं को रोजगार उपलब्ध कराने में भी नाकाम रहीं, जिसके कारण देश में बेरोजगारी एक बड़ी समस्या के रूप में उभरकर सामने आती है। बेरोजगार जनता रोजगार की तलाश में नगरों की तरफ रुख करने लगी। लोगों को नगरों के घुटन भरे वातावरण और समस्याओं का सामना करना पड़ता था। लोगों का जीवन असंतोष, निराशा और कुंठा से ग्रसित हो गया। व्यक्ति केवल अपने बारे में सोचने के लिए विवश हो गया जिसके कारण सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों का हास देखने को मिलने लगता है। संयुक्त परिवार की जगह एकल परिवार ने ले ली। आत्मीय सम्बन्धों ने स्वार्थ का भाव ग्रहण कर लिया। दूसरी ओर गाँवों में जाति व्यवस्था, जमींदारी और महाजनी व्यवस्था आदि समाज को खोखला करने में लगी हुई थी। गाँवों के नाम पर आने वाली सरकारी योजनाओं का लाभ भी सत्ता में बैठे भ्रष्ट लोगों के कारण गाँववासियों को नहीं मिल पाता था। गाँवों में रहने वाले किसान-मजदूरों का जीवन दयनीय बन गया था। भारत का अन्नदाता, ऋणदाता बनकर रह गया था। किसान के समान ही समाज में महिलाओं की स्थिति में स्वतंत्रता के बाद भी कोई खास परिवर्तन देखने को नहीं मिलता। स्वतंत्रता के बाद धर्मनिरपेक्ष भारतीय समाज में धर्म के नाम पर साम्प्रदायिक हिंसा आम बात हो गयी। जनता में

अंधविश्वास, भ्रष्टाचार और दुराचार की प्रवृत्तियाँ बदस्तूर जारी रही। भारतवासियों ने स्वतंत्रता के बाद जो सपने संजोये थे वे सरकार, न्यायव्यवस्था और प्रशासन के उदासीन रवैये के कारण एक-एक करके सब टूटते चले गये जिसके परिणामस्वरूप भारतीय समाज में अनास्था, विरोध और मोहभंग का वातावरण निर्मित हो गया; और स्वातंत्र्योत्तर भारत की इसी पृष्ठभूमि पर दुष्यंत कुमार ने अपने काव्य रूपी भव्य इमारत का निर्माण किया है। उनके काव्य में, इन्हीं युगीन परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण हुआ है। उनके काव्य में झूठी स्वतंत्रता, लोकतंत्र और लोकतांत्रिक व्यवस्था से मोहभंग तथा आम आदमी की पीड़ा के साथ विद्रोह और संघर्ष की अभिव्यक्ति अधिक हुई है। वे पीड़ित-शोषित व्यक्ति के प्रति सहानुभूति और शोषकों का विरोध कड़े स्वर में करते हैं।

स्वतन्त्रता के बाद भारत की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के साथ-साथ साहित्य के क्षेत्र में भी परिवर्तन दिखाई देने लगे। इन्हीं परिवर्तनों की जमीन से नयी कविता का जन्म हुआ। नयी कविता अपने युग विशेष की आवश्यकता है। नयी कविता में स्वतन्त्रता के बाद के प्रथम दशक की परिस्थितियों का संवेदनात्मक और यथार्थ रूप से चित्रण किया गया है। उन्होंने अपनी साहित्यिक यात्रा प्रयोगवाद और नयी कविता के संक्रमण काल के समय शुरू की थी। वे नयी कविता के प्रमुख कवियों में ना गिने जाने के बावजूद उनके काव्य में नयी कविता के सभी लक्षण देखने को मिलते हैं। इसका जिक्र मैंने 'नयी कविता और दुष्यंत का काव्य' अध्याय के अंतर्गत किया है। इस अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि दुष्यंत कुमार नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर हैं, लेकिन उनके पास अन्य कवियों की तरह कविताओं के मुखौटे नहीं हैं, पांडित्यता का प्रदर्शन नहीं है, दिखावापन नहीं है, अंतर्राष्ट्रीय मुद्राएँ नहीं हैं और अजनबी शब्दों का लिबास नहीं है। जो वे समाज से ग्रहण करते हैं उसे कविता के माध्यम से समाज को यथार्थ रूप में लौटा देते हैं। उन्होंने आम आदमी की पीड़ा को व्यक्त ही नहीं किया है बल्कि भोगा भी है। उन्होंने विषम परिस्थितियों से दबे-कुचले आम आदमी का यथार्थ चित्रण करके उसके प्रति अपनी संवेदना व्यक्त की है। दुष्यंत कुमार ने समाज में फैली शोषण, वैषम्य, भ्रष्टाचार, विघटन, संदेह, भ्रम, आक्रोश आदि को अपने काव्य का विषय बनाया है। विषय, शैली और विचार के जिस नयेपन के साथ नयी कविता का आगमन हुआ, दुष्यंत कुमार उस परम्परा के प्रतिनिधि कवियों में से हैं। उनकी कविताओं में नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ मौजूद हैं। उन्होंने नयी कविता की वैचारिकता को गहराई दी, उनकी शैली ने कविता को आम जन से जोड़ा। नयी कविता जिस तरह से व्यक्ति और समाज दोनों को साथ ले कर चलती है, दुष्यंत की कविता भी इन दोनों को साथ लेकर चली है। दुष्यंत की कविताओं की शक्ति यह भी है कि तात्कालिक समस्याओं पर केन्द्रित उनकी कविताएँ आज भी प्रासंगिक हैं। कोई कवि ऐसी रचना अंतर्मन से जनता से

जुड़े बिना कर ही नहीं सकता। कह सकते हैं कि दुष्यंत कुमार को पढ़ना नयी कविता को समझने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

भारत की स्वतंत्रता के बाद आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में जो परिवर्तन देखने को मिलता है उसका प्रभाव हिंदी साहित्य पर भी पढ़ना स्वाभाविक था और पड़ा भी। नयी कविता का जन्म इन्हीं परिस्थितियों की उपज थी। लेकिन सन साठ तक आते-आते परिस्थितियाँ और ज्यादा गंभीर हो गईं जिनका भार नयी कविता सहन कर पाने में असमर्थ दिखती है क्योंकि समाज में अनास्था, दुःख, पीड़ा और घुटन आदि का वातावरण बनने लगा था। इस वातावरण की मुखर अभिव्यक्ति साठोत्तरी कविता में देखने को मिलती है। साठोत्तरी कविता विभिन्न आंदोलनों से मिलकर बना एक बड़ा आंदोलन है जो अपने अंदर अपने समय के विषम वातावरण को समाहित किए हुए है। दुष्यंत कुमार साठोत्तरी कविता के तत्कालीन प्रश्नों, मुद्दों और समस्याओं को अपने काव्य में प्रमुखता के साथ उठाते हैं।

उन्नीसवीं शती के आठवें दशक तक आते-आते परिस्थितियाँ और विषम हो गयी थीं। इस दशक की दो प्रमुख घटनाएँ हैं, एक बांग्लादेश की मुक्ति के लिए पाकिस्तान से युद्ध और दूसरी प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी द्वारा आपातकाल लगाना। आपातकाल में जनता की स्थिति अत्यंत दयनीय हो गयी थी। उसकी आवाज़ को दबाने के लिए तानाशाही रवैया अपनाया गया था। जनता के तंत्र में जनता की ही सबसे दयनीय स्थिति हो गयी थी। इस दयनीय स्थिति और इसके लिए जिम्मेदार तत्वों के खिलाफ साठोत्तरी कवियों ने आम जनता की पक्षधरता के साथ लिखना शुरू किया। जिसमें आम जनता, किसान-मजदूर वर्ग आदि के दुःख-दर्द, समस्याओं, भेदभाव, और अत्याचारों को मुखरता से उठाया है। साथ ही इस कविता में सत्ता, सरकार, सामन्ती व्यवस्था और पूंजीवाद आदि का तीव्र और कड़े स्वर में विरोध किया गया है। इस प्रकार जनता के दुःख-दर्द, पीड़ा और समस्याओं को केंद्र में रखकर यथार्थ रूप से लिखा गया साहित्य ही जनवादी साहित्य की संज्ञा पाने लगा। इन्हीं परिस्थितियों से जनवादी आंदोलन और जनवादी कविता का जन्म होता है।

दुष्यंत कुमार को जनवादी कविता के सबसे महत्वपूर्ण कवियों में गिना जा सकता है। दुष्यंत ने अपने काव्य के केंद्र में जन और उसके प्रश्न और समस्याओं को रखा है; साथ ही कवि विषम परिस्थितियों में संघर्ष करने, जिम्मेदार ताकतों के खिलाफ लड़ने और आशा का दामन पकड़ें रहने की प्रेरणा देते हैं। वे जनता को विश्वास दिलाते हैं कि जनशक्ति में बहुत ताकत होती है। वे समाज में फैली सामाजिक विद्रूपताओं और विकृतियों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करते हैं। और ऐसे समय में मानवीय मूल्यों को स्थापित करने को प्राथमिकता देते हैं। वे राजनीतिक व्यवस्था के साथ-साथ सामन्ती व्यवस्था और मूल्यों का कड़ा विरोध

अपने काव्य में करते हैं। वे लोकतंत्र या जनतंत्र के खोखलेपन से जनता को परिचित कराते हैं। बस कहने के लिए लोकतंत्र जनता का है लेकिन सच्चाई यह है कि लोकतंत्र पूंजीपतियों और सामन्ती ताकतों का है। दुष्यंत कुमार जनता के मुद्दों को उठाने के लिए जनभाषा का प्रयोग करते हैं। दुष्यंत कुमार सच्चे जन प्रतिनिधि और जन प्रतिबद्ध कवि हैं जिन्होंने अपने काव्य के द्वारा पूरी ईमानदारी से जनता की आवाज़ को उठाया है।

हिंदी काव्य में नयी कविता, साठोत्तरी कविता और जनवादी कविता ने अपने समय को मुखरता से अभिव्यक्त किया था लेकिन हिंदी ग़ज़ल में दुष्यंत कुमार के पदार्पण से पहले मुखर रूप से युगीन परिस्थितियों को ज्यादा अभिव्यक्ति नहीं मिलती थी। उसमें प्यार-मोहब्बत को प्रमुखता से और अन्य समसामयिक विषयों को गौण रूप से अभिव्यक्त किया जाता था। दुष्यंत कुमार हिंदी के पहले ग़ज़लकार हैं जिन्होंने अपनी ग़ज़लों में समसामयिक विषयों को प्राथमिकता प्रदान की और प्यार-मोहब्बत के भाव को व्यक्त करते ग़ज़लों को दूसरे स्थान पर रखा था। वैसे उनकी इन प्रेम संबंधी ग़ज़लों की भी निराली छटा है, जो कटार के समान हृदय में उतरती चली जाती है। इन ग़ज़लों में प्रेम की सजीव और मार्मिक अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। लेकिन ऐसी ग़ज़लों की संख्या कम ही है। दुष्यंत कुमार ने हिंदी ग़ज़ल को पहली बार समसामयिक विषयों से परिचित कराया। हिंदी के अन्य ग़ज़लकार दुष्यंत कुमार की देखा-देखी में समसामयिक विषयों पर ग़ज़ल लिखने लगे थे।

स्वतंत्रता के बाद देश की परिस्थितियों में तेजी से परिवर्तन हो रहा था जिसका प्रभाव हिन्दी ग़ज़ल पर भी पड़ा। यहाँ से हिन्दी ग़ज़ल में नया अध्याय जुड़ता है और इस अध्याय की शुरुआत दुष्यंत कुमार से होती है। इसकी शुरुआत आम जनता के मोहभंग से होती है। क्योंकि नेताओं ने जनता से जो वादे किए थे उन्हें पूरा करने में वे असफल हो चुके थे। जनता में निराशा, हताशा, विवशता, क्षोभ और कुंठा आदि का भाव घर करने लगा था। आपातकाल ने स्थितियों को और नाजुक बना दिया था। इस विषम समय को दुष्यंत कुमार ने अपनी ग़ज़लों में यथार्थ अभिव्यक्ति दी है। वे दयनीय परिस्थितियों और समस्याओं के स्वयं भी भोक्ता रहे हैं। उन्होंने सत्ता को अपनी ग़ज़लों के माध्यम से ललकारा और जनता के अधिकारों के लिए आवाज उठानी शुरू की। इस तरह हिन्दी ग़ज़ल अपनी पुरानी धुरी और भूमिका को छोड़कर ज़माने के जलसे में शामिल होती है और जनमानस का अभिन्न अंग बन जाती है। अब ग़ज़ल जनमानस की तकलीफों, समस्याओं और जद्दोजेहद भरी जिन्दगी के समूचे फलसफे, वाक्यात और हक़ीक़तों को अभिव्यक्त करने लगी थी। अब ग़ज़ल पूरी तरह चौराहों पर आकर खड़ी हो गई। उसने राजनीतिक स्वार्थपरता, संकीर्णता, मूल्यहीनता, अराजकता और आतंकवाद आदि बड़े विषयों को भी व्यक्त करना शुरू कर दिया था।

दुष्यंत कुमार ने अपनी गजलों में अपने समय के यथार्थ परिवेश को अभिव्यक्त किया है। देश में आम आदमी की पीड़ा, मानवीय मूल्यों का विघटन, मोहभंग, अत्याचार, भ्रष्टाचार, गरीबी, बेरोजगारी, महंगाई, आर्थिक विषमता, साम्प्रदायिकता और अलगाववाद आदि समस्याएँ फैल रही थी। इन सभी समस्याओं को दुष्यंत कुमार ने अपनी गजलों का मुख्य विषय बनाया है।

दुष्यंत कुमार के काव्य में स्वातंत्र्योत्तर भारत के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिदृश्य को सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया गया है। कवि ने अपने काव्य में तत्कालीन समय के प्रश्नों, मुद्दों, समस्याओं, विसंगतियों, विडम्बनाओं और जटिलताओं को यथार्थ रूप में चित्रित किया है। आजादी के आसपास का समय जनता के लिए नये आत्म-विश्वास और भविष्य की आशाओं-इच्छाओं-आकांक्षाओं का समय था। जनता की सत्ता से उम्मीदें थी कि आजादी के बाद मूलभूत वस्तुओं के लिए संघर्ष नहीं करना पड़ेगा। देश में अपना शासन होगा। किसी के साथ भेदभाव नहीं होगा, लेकिन कुछ वर्षों बाद ही जनता की उम्मीदें टूटने लगीं, उसकी आशाएँ निराशा में बदलने लगीं। दुष्यंत कुमार के काव्य में जनता के इसी मोहभंग की स्थिति का यथार्थ चित्रण हुआ है। काव्य में जनता की पीड़ा, दुःख-दर्द, निराशा, घुटन, विवशता आदि स्थितियों का चित्रण हुआ है। एक तरफ देश में आम आदमी गरीबी, बेरोजगारी, महंगाई, भ्रष्टाचार, आर्थिक विषमता और पूंजीवाद के कारण दरिद्रों वाला जीवन जीने के लिए मजबूर था, तो दूसरी तरफ सत्ता जनता के हितों को भूलकर अपने हितों को साधने में लगी हुई थी। कवि ने अपने काव्य में राजनीतिक समस्याओं के विविध पहलुओं का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। साथ ही जनतंत्र की विवशता, राजनीतिक विसंगति, विडम्बना, विद्रूपता, नेताओं के झूठे वादे, जनविरोधी नीतियाँ, परेशान जनता, भ्रष्ट और स्वार्थी नेताओं का चित्रण आदि विषयों को उठाया है। दुष्यंत कुमार ने अपने काव्य के माध्यम से नेताओं के झूठे वादों, आश्वासनों, भ्रष्टाचार और उनके 'मुँह में राम, बगल में छुरी' वाले दोहरे चरित्र को मजबूती से उजागर किया है। दुष्यंत कुमार ने अपने काव्य में देश की आर्थिक विषमता का यथार्थ चित्रण किया है। उन्होंने अपने काव्य में गरीबी, महंगाई, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार और आर्थिक विषमता जैसे प्रश्नों को उठाकर सत्ता पर प्रहार किया है। साथ ही आर्थिक दृष्टि से पिछड़ी आम जनता की दयनीय स्थिति का चित्रण किया है। उन्होंने अपने काव्य में रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा, स्वास्थ्य, गरीबी, महंगाई की चक्की में पिसती जनता, रोजगार की तलाश में भटकते युवा, मजदूरों के शोषण, योजनाओं में होने वाले भ्रष्टाचार, देश में बढ़ती आर्थिक विषमता आदि विषयों को उठाया है। देश में जनता बढ़ती महंगाई से परेशान थी, वह अपनी आवश्यक वस्तुओं को पूरा करने में भी संघर्षरत थी। दुष्यंत कुमार ने मानवीय और सामाजिक मूल्यों के विघटन, टूटती मान्यताएँ, पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण आदि का चित्रण अपने काव्य में किया है, साथ ही अंधविश्वास, गली-सड़ी रुढ़ियों, कुंठाओं और जीर्ण-शीर्ण परम्पराओं का विरोध किया है। कवि ने धार्मिक विकृतियों पर भी

चोट की है। दुष्यंत कुमार ने अपने काव्य के माध्यम से सांस्कृतिक मूल्यों की टूटी-बिखरी मान्यताओं पर प्रहार करते हुए, इनकी विसंगतियों को मार्मिकता के साथ अभिव्यक्त किया है। उन्होंने जनता को नये मूल्यों को स्वीकार करने के लिए प्रेरित किया है।

उन्होंने अपनी कविता में भावों को प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त करने के लिए लोकजीवन की भाषा का प्रयोग किया है और लोक जीवन से ही बिम्ब, प्रतीक और उपमाओं को उठाया है। उन्होंने अन्य भाषा के शब्दों से परहेज़ नहीं किया है। दुष्यंत कुमार ने उस मिली-जुली भाषा का प्रयोग किया है जिसे उत्तर भारत के आम लोग बोलते और समझते हैं। जिसके कारण उनकी कविता की पहुँच जनमानस में बहुत दूर तक है।

कहना न होगा कि जब तक दुनिया में सत्ता के सताए हुए लोग हैं, तब तक दुष्यंत की कविता प्रासंगिक बनी रहेगी।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

आधार ग्रंथ

1. दुष्यंत कुमार, 'दुष्यंत कुमार: रचनावली' (चार खंड), विजय बहादुर सिंह (सम्पादक) किताबघर प्रकाशन, पेपरबैक संस्करण, 2014

सहायक ग्रंथ

2. डॉ. अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन (2016) चौथा संस्करण, दिल्ली
3. सं. अनिरुद्ध 'विमल' और राहुल शिवाय, कविता के नवरत्न, उत्कर्ष प्रकाशन (2017) प्रथम संस्करण, मेरठ
4. सं. ओमप्रकाश शर्मा, गज़लें सरहद पार से, परिचित बुक्स (2010), प्रथम संस्करण, दिल्ली
5. डॉ. अरुणा लोखंडे, समकालीन हिंदी कथा साहित्य में जनचेतना, विकास प्रकाशन (1989), प्रथम संस्करण, कानपुर
6. डॉ. उषा कुमारी, नयी कविता की चिंतन भूमि, वाणी प्रकाशन (2008), प्रथम संस्करण, दिल्ली
7. डॉ. देवराज, नयी कविता, वाणी प्रकाशन, संस्करण: 2002, दिल्ली
8. सं. कमलेश्वर, दुष्यंत के जाने के बाद दोस्तों की यादें, किताबघर प्रकाशन (2013), प्रथम संस्करण, दिल्ली
9. कुलदीप सलिल, बेस्ट ऑफ़ मीर, राजपाल एंड संस (2019), नवीन संस्करण, दिल्ली
10. कुँवर बेचैन, ग़ज़ल का व्याकरण, अयन प्रकाशन (2012), तृतीय संस्करण, महारौली, नई दिल्ली,
11. केदारनाथ सिंह, आधुनिक कविता में बिम्बविधान, राधाकृष्ण प्रकाशन (2016), दिल्ली
12. गजानन माधव मुक्तिबोध, नयी कविता का आत्मसंघर्ष, राजकमल प्रकाशन (2009), तीसरी आवृत्ति, दिल्ली
13. गजानन माधव मुक्तिबोध, चाँद का मुँह टेढ़ा, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन (1979), षष्ठ संस्करण, दिल्ली
14. सं. डॉ. चन्द्र त्रिखा, आधुनिक काव्य प्रवृत्तियाँ, हरियाणा साहित्य आकदमी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पंचकुला

15. चुनिंदा अशआर बशीर बद्र, वाणी प्रकाशन (2012) प्रथम संस्करण, दिल्ली
16. डॉ. जगदीश गुप्त, नयी कविता स्वरूप और समस्याएँ, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन (1969), प्रथम संस्करण, दिल्ली
17. सं. जानकी प्रसाद शर्मा, उर्दू शायरी के बाबा आदम- वली दकनी, वाणी प्रकाशन (2007), प्रथम संस्करण, दिल्ली
18. जयशंकर प्रसाद, चन्द्रगुप्त, भारती-भण्डार प्रकाशन, द्वितीय संस्करण, इलाहाबाद
19. जयशंकर प्रसाद, स्कंदगुप्त, भारती भण्डार प्रकाशन, द्वितीय संस्करण, इलाहाबाद
20. सं. डॉ. जिजाबराव पाटिल, दुष्यंत कुमार के साहित्य का पुनर्मूल्यांकन, विकास प्रकाशन (2017) प्रथम संस्करण, कानपुर
21. ज्ञानप्रकाश विवेक, हिन्दी गज़ल दुष्यंत के बाद, अयन प्रकाशन, संस्करण: 2014, नई दिल्ली,
22. ज्ञानप्रकाश विवेक, हिन्दी गज़ल की विकास यात्रा, हरियाणा ग्रंथ अकादमी (2012), द्वितीय संस्करण, पंचकुला
23. डॉ.धर्मवीर, 'महान आजीवक, कबीर, रैदास और गोसल', वाणी प्रकाशन (2017), प्रथम संस्करण, दिल्ली
24. डॉ.धर्मपाल पीहल, साठोत्तरी हिंदी कविता समाजशास्त्रीय अनुशीलन, मिलिंद प्रकाशन (2002), प्रथम संस्करण, हैदराबाद
25. सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, सूरसागर-सार, साहित्य भवन प्रा.लि, प्रकाशन, इलाहाबाद, 1998 संस्करण
26. सं. धीरेन्द्र वर्मा और अन्य, हिन्दी साहित्य कोश, ज्ञानमंडल लिमिटेड (2013), वाराणसी
27. सुदामा पाण्डेय धूमिल, संसद से सड़क तक, राजकमल प्रकाशन (2018), चौथा संस्करण, दिल्ली
28. नामवर सिंह, कविता के नये प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन (2012), दसवाँ संस्करण, दिल्ली
29. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स प्रकाशन (2012) 42 वाँ संस्करण, नौएडा
30. डॉ. नरेन्द्र सिंह, साठोत्तरी हिंदी कविता में जनवादी चेतना, वाणी प्रकाशन (1990), प्रथम संस्करण, दिल्ली
31. सं. नरेश शांडिल्य, जान-ए-गज़ल, अयन प्रकाशन (2015), प्रथम संस्करण, महरौली (दिल्ली)

32. नरेशचन्द्र चतुर्वेदी, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', साहित्य अकादेमी (1990), दिल्ली
33. सं. नंदकिशोर नवल, निराला रचनावली, भाग- 2, राजकमल प्रकाशन (1983), दिल्ली
34. श्रीप्रकाश शुक्ल, साठोत्तरी कविता में लोक सौन्दर्य, लोकभारती प्रकाशन (2001), प्रथम संस्करण, इलाहाबाद
35. प्रेमचन्द, साहित्य का उद्देश्य, हंस प्रकाशन (फरवरी 2001), नवीन संस्करण, इलाहाबाद
36. बच्चन सिंह, आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द, वाणी प्रकाशन (2010), संशोधित संस्करण, दिल्ली
37. बालस्वरूप राही, राही को समझाए कौन, किताबघर प्रकाशन, संस्करण: 2009, दिल्ली
38. बेकल उत्साही, लफ्जों की घटाएँ, डायमंड पॉकेट बुक्स, संस्करण: 2005, दिल्ली
39. भारत यायावर, विरासत, प्रेणा पब्लिकेशन (ई- प्रकाशन), भोपाल
40. सं. डॉ.भवदेव पाण्डेय, बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन संचयिता, शिल्पायन प्रकाशन (2012), प्रथम संस्करण, दिल्ली
41. डॉ. वसिष्ठ अनूप, हिंदी की जनवादी चेतना, राधा पब्लिकेशन (1994), प्रथम संस्करण, दिल्ली
42. मालिक राम, मिर्जा ग़ालिब, नेशनल बुक ट्रस्ट (1990), इंडिया,
43. डॉ. महावीर वत्स, साठोत्तरी कविता में सांस्कृतिक चेतना, संजय प्रकाशन (1996), प्रथम संस्करण, दिल्ली
44. डॉ.मधु खराटे, हिंदी गजल के नवरत्न, विकास प्रकाशन (2014), प्रथम संस्करण, कानपुर
45. डॉ.मधु खराटे, हिंदी गजल के प्रमुख हस्ताक्षर, विद्या प्रकाशन (1994), प्रथम संस्करण, कानपुर
46. डॉ.मधु खराटे, हिंदी गजल और गजलकार, विकास प्रकाशन, प्रथम संस्करण, कानपुर
47. डॉ.मधु खराटे, साठोत्तरी हिंदी गजल, विकास प्रकाशन (2011), प्रथम संस्करण, कानपुर
48. डॉ. मस्के संतोष विष्णु, साठोत्तरी हिंदी गजल में समसामयिकता, विकास प्रकाशन (2016), प्रथम संस्करण, कानपुर
49. मैथलीशरण गुप्त, यशोधरा, साहित्य-सदन प्रकाशन (वि. 2033), चिरगाँव (झाँसी),
50. मुकुन्ददेव शर्मा, हरिऔध और उनका साहित्य, हिंदी साहित्य कुटीर (संवत् 2013) बनारस

51. मैथलीशरण गुप्त, भारत भारती, साहित्य सदन (1984), चिरगाँव (झाँसी)
52. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, कमल प्रकाशन, नवीनतम संस्करण, दिल्ली
53. रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन (2013), 22 संस्करण, इलाहाबाद
54. रामचंद्र गुहा, भारत गाँधी के बाद, पेंगुइन बुक्स हाउस (2013) प्रथम संस्करण, गुड़गाँव, हरियाणा
55. रामचंद्र गुहा, भारत नेहरू के बाद, पेंगुइन बुक्स हाउस (2012), प्रथम संस्करण, गुड़गाँव, हरियाणा
56. रविदास, पावन अमृतबानी श्री गुरु रविदास जी, श्री गुरु रविदास जन्म अस्थान पब्लिक चैरीटेबल ट्रस्ट (रजि.) जालन्धर, पंजाब (2008), तृतीय संस्करण
57. रविदास, श्री गुरु रविदास दीप ग्रंथ, श्री गुरु रविदास दीप ग्रंथ प्रकाशन सभा, अम्बाला छावनी (हरियाणा)
58. डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, हिंदी ग़ज़ल उद्भव और विकास, स्पेस पब्लिसिंग हाउस (2018), प्रथम संस्करण, दिल्ली
59. सं. रमेशचन्द्र द्विवेदी, हजार शेर फ़िराक के, वाणी प्रकाशन (2010), प्रथम संस्करण, दिल्ली
60. राहत इंदौरी, नाराज़, मंजुल पब्लिशिंग हाउस (2016), प्रथम संस्करण, दिल्ली
61. डॉ. ललिता अरोड़ा, नयी कविता का अनुशीलन, भारतीय ग्रंथ निकेतन (1993), प्रथम संस्करण, दिल्ली
62. ललित शुक्ल, नया काव्य नये मूल्य, स्टैंडर्ड पब्लिर्स (1999), प्रथम संस्करण, नयी दिल्ली
63. डॉ. विजय द्विवेदी, नयी कविता: स्रोत और सिद्धांत, प्रगति प्रकाशन(1978), प्रथम संस्करण, आगरा
64. विश्वनाथ त्रिपाठी, हिंदी साहित्य का सरल इतिहास, ओरियंट ब्लैकस्वान प्रकाशन (2015), दिल्ली,
65. प्रो. विपिन चंद्र, आधुनिक भारत का इतिहास, ओरियंट ब्लैकस्वान (2017), हैदराबाद
66. प्रो. विपिन चंद्र, आज़ादी के बाद का भारत, हिंदी माध्यम कार्यन्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय (2015), दि.
67. शेरजंग गर्ग, चंद ताज़ा गुलाब तेरे नाम, सीमान्त प्रकाशन (1968), प्रथम संस्करण, मसूरी

68. श्यामसुंदरदास, साहित्यलोचन, प्रकाशकरामचंद्र वर्मा, साहित्य-रत्न-माला कार्यालय (सं.1988) काशी
69. शैलेश मटियानी, लेखक और संवेदना, विभा प्रकाशन (1983), प्रथम संस्करण, इलाहाबाद
70. डॉ. सरदार मुजावर, दुष्यंत कुमार की गजलों का समीक्षात्मक अध्ययन, वाणी प्रकाशन 2003
71. डॉ. सरदार मुजावर, हिंदी गजल: दशा और दिशा, वाणी प्रकाशन (2014), दिल्ली
72. डॉ. सरदार मुजावर, हिंदी गजल गजलकारों की नजर में, वाणी प्रकाशन (2001), प्रथम संस्करण, दिल्ली
73. डॉ.सरदार मुजावर, हिंदी गजल का वर्तमान दशक, वाणी प्रकाशन (2014), प्रथम संस्करण, दिल्ली
74. सुमित सरकार, आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन (2016), इक्कीसवाँ संस्करण, दिल्ली
75. डॉ. सुरेश सालुंके, दुष्यंत कुमार और उनका काव्य, अमन प्रकाशन (2008) प्रथम संस्करण, कानपुर
76. डॉ. सुमन सिंह, हिंदी गजल और साये में धूप, पराग प्रकाशन (2017), प्रथम संस्करण, कानपुर
77. सं. सुधाकर पाण्डेय, तुलसी कृत कवितावली, लोकभारती प्रकाशन (1973), प्रथम संस्करण, इलाहाबाद,
78. सुमित्रानन्दन पन्त, ग्राम्या, भारती भंडार प्रकाशन (सं. 2003), प्रयाग
79. सरदार मुजवर, हिंदी गजल के विविध आयाम, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण (2014), दिल्ली
80. सं. सुरेश सलिल, इकबाल की ज़िन्दगी और शायरी, वाणी प्रकाशन (2009), प्रथम संस्करण, दिल्ली
81. सूर्यप्रकाश शर्मा, गजल: एक यात्रा, विश्वभारती प्रकाशन (1988) प्रथम संस्करण, नागपुर,
82. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, राजकमल प्रकाशन (2016), दिल्ली
83. हरिचरण शर्मा 'चिंतक', दुष्यंत कुमार और उनका साहित्य, प्रमोद प्रकाशन (1982), नई दिल्ली,
84. टीकाकार हनुमानप्रसाद पोद्दार, श्रीरामचरितमानस, गीताप्रेस (सं. 2073), एक सौ ग्यारहवाँ मुनर्मुद्रण, गोरखपुर
85. सं. हेमन्त शर्मा, भारतेन्दु समग्र(भारतेन्दु ग्रंथावली), प्रचारक ग्रन्थावली परियोजना (1987), हिंदी प्रचारक संस्थान, वाराणसी
86. सं. श्रीकांत जोशी, माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली, भाग- 6, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

शब्द-कोश

1. डॉ. हरदेव बिहारी, राजपाल हिंदी शब्दकोश, राजपाल पब्लिशिंग प्रकाशन (2013), दिल्ली
2. संकलनकर्ता मुहम्मद मुस्तफ़ा खां 'मदाह', उर्दू-हिंदी शब्दकोश (1977), तृतीय संस्करण, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ
3. संपादक मंडल दाते और अन्य, महाराष्ट्र शब्दकोश- विभाग तिसरा (1988), एशियन एजुकेशनल सर्विस, नागपुर
4. सं. धीरेन्द्र वर्मा और अन्य, हिन्दी साहित्य कोश, भाग- 1, ज्ञानमंडल लिमिटेड प्रकाशन, पुर्नमुद्रण जुलाई, 2013, वाराणसी

पत्र-पत्रिकाएँ

1. सं. कमलेश्वर, 'सारिका' पत्रिका, दुष्यंत कुमार स्मृति, अंक- मई, 1976
2. सं. सव्यसाची, 'उत्तरार्ध' पत्रिका, जनवादी साहित्य विशेषांक, अंक- 9
3. सं. रामकुमार कृषक, समकालीन हिंदी ग़ज़ल(आ. के. विशेषांक), 'अलाव' पत्रिका, मई-अगस्त, 2015

इंटरनेट साईट

1. ब्लॉग नाम- 'साहित्य शिल्पी', आलेख- 'ग़ज़ल का इतिहास और ग़ज़ल की भाषा' (ग़ज़ल शिल्प और संरचना- स्थायी स्तंभ) सतपाल ख्याल, 10/02/2021
Link- https://www.sahityashilpi.com/2009/03/blog-post_09.html
2. मनोज भारती, 'बूंद-बूंद इतिहास' ब्लॉग पेज
Link- http://hindikaitihaas.blogspot.com/2012/08/blog-post_21.html
3. कविता कोश
link- <http://kavitakosh.org/kk/index.php>
4. रेख्ता: उर्दू शायरी

Link- <https://www.rekhta.org/?lang=hi>

यूजीसी केयर लिस्ट में शामिल
जनवरी-मार्च 2021
वर्ष 11, अंक-21

मूल्य-100/-
ISSN NO. 2320-5733

समसामयिक सृजन

समकालीन साहित्य, शिक्षा एवं संस्कृति का संगम



समसामयिक सृजन

साहित्य, शिक्षा और संस्कृति का संगम

संरक्षक

डॉ. प्रभात कुमार

प्रधान संपादक एवं परामर्श

डॉ. रमा

संपादक

डॉ. महेन्द्र प्रजापति

संपादन सहयोग

रीमा प्रजापति

आवरण चित्र

अंकीता चौहान

ले-आउट

हर्ष कंप्पूटर्स

संपादकीय कार्यालय

मकान नं. 189, ब्लॉक-एच

विकासपुरी, नई दिल्ली-110018

पत्राचार

एफ-114, तृतीय तल, SLF, वेद विहार

नियर : शंकर विहार ऑटो स्टैंड, लोनी

गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश-201102

सदस्यता

आजीवन : 5000/- रुपए

संपर्क : 9871907081

वेबसाइट : www.samsamyiksrijan.com

Email : samsamyik.srijan@gmail.com

प्रकाशन एवं मुद्रण

हरिन्द्र तिवारी

हंस प्रकाशन, दिल्ली

मो. : 7217610640, 9868561340

ईमेल : hansprakashan88@gmail.com

वेबसाइट : www.hansprakashan.com

पृ.सं.

- 'अग्नि-ऋचा' कलाम की जीवन यात्रा... : प्रो. रमा 3
- 'कभी न छोड़े खेत' / प्रो. इंदु वीरेंद्रा 6
- हिंदी में अनुसंधान : स्थिति... / प्रो. सत्यकेतु सांकृत 9
- भक्तिकालीन कविता के... / प्रो. कैलाश नारायण तिवारी 12
- रंगमंच की अंतरयात्रा / प्रो. चंदन कुमार 15
- नवगीत काव्य-धारा का उद्भव... / डॉ. प्रकाश चंद्र गिरि 17
- कविता : मिथक और पारिस्थितिकी / प्रो. गजेंद्र पाठक 20
- साठोत्तरी हिंदी कविता : परिवेश... / प्रो. रसाल सिंह 24
- संत रविदास : व्यक्तित्व एवं विचार / डॉ. राजेश पासवान 27
- 'आत्मजयी' और 'वाजश्रवा के ... / अभिनव प्रकाश 30
- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की ... / डॉ. अमित सिन्हा 33
- भाषायी अवरोधों को तोड़ता ... / डॉ. कविता भाटिया 36
- निर्मल वर्मा की रचनाओं में सामाजिक ... / डॉ. अमृता 39
- स्वावलंबन और गांधीजी / डॉ. सुभाष चंद्र डबास 'चौधरी' 42
- नारी समस्या और कृष्णा सोबती ... / अनिता देवी 44
- आदिवासी हिंदी उपन्यासों का उद्भव ... / अंजली कुमारी 47
- राकेश रेणु की कविताई : स्त्री मन ... / अंकिता चौहान 50
- जयशंकर प्रसाद की प्रकृति विषयक ... / डॉ. अर्चना त्रिपाठी 53
- अल्पसंख्यक विमर्श का स्वरूप और ... / डॉ. आसिफ उमर 55
- समकालीन हिंदी स्त्री कविता में पितृसत्ता ... / भव्या कुमारी 58
- कोरोना के भयावह दौर में पलायन ... / भावना 61
- समकालीन हिंदी कविता में अभिव्यक्त ... / चंद्रकांत सिंह 64
- द्रविड़ भक्ति-काव्य : उद्भव, स्वरूप ... / डी.ए.पी. शर्मा 67
- विभाजन और विस्थापन की ... / डॉ. दीपिका विजयवर्गीय 71
- बाणभट्ट की आत्मकथा में ... / डॉ. पल्लवी 73
- अशोक एक बौद्ध के रूप में / दुर्गेश पाण्डेय 75
- 'पीली आँधी' सामाजिक विसंगतियों ... / हुलासी राम मीना 78
- 'गालिब गैर नहीं हैं, अपनों से अपने हैं' / मोहम्मद जावेद 81
- नारी मनोविज्ञान और जैनेंद्र कुमार ... / जयश्री काकति 85
- गांधी और राष्ट्रभाषा हिंदी / डॉ. कमलेश कुमारी 88
- आधुनिक परिप्रेक्ष्य में नारी और संतराम बी.ए. / कविता देवी 91
- स्त्री विमर्श की अवधारणा और ... / डॉ. महजबी 94
- केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में ... / डॉ. मणिबेन पटेल 97
- श्री हरिपद्यनाभ शास्त्री ... / प्रो. मञ्जुनाथ एन. अविग 99
- काशीनाथ सिंह के उपन्यासों में ... / डॉ. मंजुल शर्मा 102
- कोरोना महामारी के ... / ज्योति भोला-नम्रता सोनी 105
- कश्मीरी स्त्री : अनसुनी पीड़ा ... / नेहा चतुर्वेदी 108

स्वामी, प्रकाशक, सम्पादक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी : डॉ. महेन्द्र प्रजापति द्वारा एच.-ब्लॉक, मकान नं. 189, विकासपुरी, नई दिल्ली-110018 से प्रकाशित।

• ब्रज लोक गीतों में ... / डॉ. नृत्य गोपाल	111	• क्या भूलूँ क्या याद ... / नूतन सतपथी	224
• जकिया जुबैरी की ... / निर्मल रानी	114	• छायावादी कवियों ... / डॉ. जी. पद्मावती	227
• समाज का ध्वनिग्राहक कवि / निशा नाग	116	• इक्कीसवीं सदी की ... / डॉ. पठान रहीम खान	230
• भारतीय सिनेमा और ... / पल्लवी	119	• स्त्री मुक्ति का 'हंस' / प्रिया कौशिक	234
• कुबेरनाथ राय के ... / प्रदीप कुमार तिवारी	122	• पारसी रंगमंच के नाटक ... / डॉ. राखी उपाध्याय	237
• सिक्किम में हिंदी का ... / डॉ. प्रदीप त्रिपाठी	124	• बौद्ध पारिस्थितिकी की ... / डॉ. रणजीत कुमार	240
• मॉरीशस ... / प्रो. सच्चिदानंद चतु.-प्रियंका कु.	127	• रेणु के कथा ... / रश्मि शर्मा	243
• सामाजिक-सांस्कृतिक ... / प्रियंका राय	130	• जयप्रकाश कर्दम के ... / डॉ. जी.वी. रत्नाकर	246
• संत कवि गुरु नानक ... / डॉ. राजेश कुमार शर्मा	133	• स्त्री के स्तर को सुधारने ... / रीना कुमारी	248
• नवजागरण और भारत-दुर्दशा / राजकुमार शर्मा	136	• धूमिल के काव्य का ... / शेख हीना अनवर	251
• जाम्भोजी महाराज ... / डॉ. राजमोहिनी सागर	139	• जनजातियों के भिन्न ... / स्मृतिरेखा नायक	254
• छायावादी काव्य में ... / डॉ. रीतामणि वैश्य	142	• रहीम के नीतिकाव्य ... / डॉ. सुधीर कुमार शर्मा	257
• आदिवासी केंद्रित ... / डॉ. रूपेश कुमार	145	• भास कृत उदयनकथाश्रित ... / सुमन कुमारी	260
• भारतीय साहित्य में ... / साधना वर्मा	149	• आधुनिक समाज एवं ... / डॉ. उदय कुमार	263
• भिखारी ठाकुर के ... / डॉ. संगीता राय	152	• उत्तर प्रदेश के जनपद ... / उमेश कुमार तिवारी	265
• पिंजर उपन्यास में ... / शरिफुज जामान	154	• सुशीला टाकभौरे की ... / उषा यादव	270
• हिंदी साहित्य में व्यंग्य ... / शिलाची कुमारी	157	• निराला की काव्य-भाषा : ... / डॉ. वर्षा गुप्ता	273
• जीवन से ... / डॉ. सुनील कुमार सुधांशु	159	• राम कथा में वाल्मीकि ... / मीना कुमारी	276
• स्त्री शोषण का ... / सुनील कुमार यादव	162	• रसोपासना की पवित्रता / डॉ. पवन सचदेवा	279
• किसानों के संस्कारों ... / सूर्यनाथ सिंह	165	• हिंदी फिल्मी ... / डॉ. प्रीति प्रकाश प्रजापति	282
• नई सदी की प्रमुख ... / डॉ. तारु एस. पवार	169	• पूर्वोत्तर भारत केंद्रित ... / संजीव मण्डल	285
• आदिवासी जीवन ... / डॉ. प्रेमी मोनिका तोपनो	172	• कुमाउनी काव्य के ... / मुरली मनोहर भट्ट	289
• आत्मकथाओं में लैंगिक ... / उमा मीना	176	• नई सदी की हिंदी ... / वीरेश बिसनल्लि	294
• दलित कथाकार ... / वीरेन्द्र	179	• लोहिया के समाजवादी ... / डॉ. मृदुला शर्मा	296
• हिंदी दलित कहानियाँ ... / विजय कुमार	182	• सरदार पटेल के ... / डॉ. दीपक कुमार अवस्थी	299
• विवाह-विच्छेद एवं ... / विकास कुमार सिंह	185	• प्रतिलोम सत्ताओं का ... / हेमंत कुमार	303
• हिंदी नवजागरण ... / डॉ. विनय कुमार गुप्ता	187	• महादेव टोप्पो के ... / डॉ. रवि कुमार गोंड	307
• अंबेडकर का ... / डॉ. वीरेंद्र सिंह कश्यप	189	• साठोत्तरी कविता ... / डॉ. महावीर सिंह वत्स	311
• युग प्रवर्तक के ... / अखिलेश यादव	192	• रचना और आलोचना ... / डॉ. बीना जैन	312
• माध्यमिक स्तर ... / अमित कुमार दूबे	194	• औरत : मीडिया ... / डॉ. अजय सिंह चौहान	315
• जनतांत्रिक मूल्य : ... / डॉ. अश्विनी कुमार	197	• हबीब ... / अशोक बैरागी-डॉ. दीपिका श्रीवास्तव	318
• दुष्यंत कुमार का ... / आजाद	200	• वर्तमान में मानसिक ... / डॉ. अमिता जैन	321
• चीन में हिंदी ... / धारवाडकर	203	• राष्ट्रीय शिक्षा ... / प्रो. बनवारी लाल जैन	324
• 21वीं सदी के नाटकों ... / ज्ञानेश पांडेय	206	• ज्ञान प्रकाश विवेक के ... / इंदु रानी	329
• हिंदी उपन्यासों ... / जैनेंद्र चौहान	209	• आदर्शनारी के रूप में ... / अनीता उपाध्याय	332
• रमेशचंद्रशाह की ... / कृपा शंकर	212	• बालकों की ... / डॉ. गिरीश कुमार द्विवेदी	334
• जैनदर्शन में कर्मवाद / छाया	214	• भारतीय सिनेमा में स्त्री... / डॉ. मंजू रानी	337
• समकालीन संदर्भ ... / नमित कुमार सिंह	218	• उत्तर आधुनिक ... / डॉ. रिम्पी खिल्लन सिंह	339
• दिल्ली की शहरीकरण ... / डॉ. गगन दीप	221	• शमशेर बहादुर सिंह ... / डॉ. सत्येंद्र कुमार	342

दुष्यंत कुमार का काव्य : आधुनिकता का दस्तावेज

आजाद

दुष्यंत कुमार ने हिंदी साहित्य की गजल, गीत, कविता, काव्य-नाटक, उपन्यास, कहानी, एकांकी, संस्मरण, पत्र और टिप्पणी-लेख आदि सभी विधाओं में रचना की है लेकिन दुष्यंत कुमार हिंदी साहित्य जगत में हिंदी के प्रमुख गजलकार के रूप में प्रसिद्ध हैं ठीक वैसे जैसे हिंदी के उपन्यासकार और नाटककार के रूप में प्रेमचंद और जयशंकर प्रसाद। आज भी दुष्यंत कुमार को हिंदी या हिंदीतर वर्ग के ज्यादातर पाठक गजलकार के रूप में ही जानते हैं लेकिन दुष्यंत कुमार का अन्य साहित्य भी उतना ही महत्वपूर्ण है। उनकी कविताओं, उपन्यासों, और कहानियों आदि में तत्कालीन प्रश्नों को मुखरता के साथ उठाया गया है। उन्होंने धर्मवीर भारती के 'अंधा युग' नाटक की सफलता के बाद 'एक कंठ विषपायी' काव्य-नाटक लिखा जो किसी भी स्तर पर 'अंधायुग' नाटक से कमतर नहीं है। स्वयं दुष्यंत कुमार ने धर्मवीर भारती को अपने एक पत्र में लिखा भी है कि आपका काव्य नाटक बहुत सुंदर रचना है लेकिन संभल जाइए मैं भी एक नाटक लिख रहा हूँ।

कवि ने 'एक कंठ विषपायी' काव्य-नाटक में 'सती-दाह' की पौराणिक कथा के माध्यम से तत्कालीन आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, और सांस्कृतिक आदि समस्याओं को उठाया है। मैं इस शोध-प्रपत्र में 'आधुनिकता के प्रश्न' के संदर्भ में 'एक कंठ विषपायी' काव्य नाटक का विवेचन-विश्लेषण करूँगा। 'एक कंठ विषपायी' पर बात करने से पहले मध्यकालीनता और आधुनिकता की अवधारणा को स्पष्ट कर लेना आवश्यक है क्योंकि मध्य कालीनता के बिना आधुनिकता को नहीं समझा जा सकता है।

दुष्यंत कुमार द्वारा लिखित एक मात्र काव्य-नाटक 'एक कंठ विषपायी' है। इसमें शिवपुराण की 'सती-दह' की पौराणिक कथा को आधार बनाया है। इस प्राचीन कथानक के धरातल पर आधुनिक भाव बोध को प्रस्तुत किया गया है। संपूर्ण नाटक चार अंकों में विभाजित है।

इस नाटक में दुष्यंत कुमार ने पुरानी परंपराओं, मूल्यों, रूढ़ियों से चिपके रहना और उनके टूटने की प्रक्रिया को भी बड़े सहज ढंग से चित्रित किया है। साथ ही इस नाटक में युद्ध की बनी स्थिति से कैसे पार पाई जा सकती है। उसे भी दिखाया गया है। लोकतंत्र की छाती पर बैठे हुए सामंत और पूँजीपतियों को भी चित्रित किया है। नाटककार ने इस पौराणिक कथा के माध्यम से 20वीं सदी के बदलते सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक मूल्यों को रेखांकित किया है। जिसके विषय में दुष्यंत कुमार ने नाटक की भूमिका में लिखते हैं—“एक कंठ विषपायी” काव्य नाटक है। इसकी कथाके सूत्र एक दिन यों ही बातचीत के दौरान अनंत मराल ने मेरे हाथों में थमा दिए। उसी दिन मुझे लगा कि जर्जर रूढ़ियों और परंपराओं के शेष से चिपके हुए लोगों के संदर्भ में प्रतीकात्मक रूप से आधुनिक पृष्ठभूमि और नए मूल्यों को संकेतित करने के लिए इस कथा में पर्याप्त सामर्थ्य है।”¹ नाटक के सभी पात्र किसी न किसी तरह मध्यकालीनता और आधुनिकता बोध लिए हुए हैं।

काव्य नाटक की शुरुआत प्रजापति दक्ष और पत्नी वीरिणी के साथ अत्यंत गंभीर प्रश्न पर विचार-विमर्श से होती है। गंभीर प्रश्न है भगवान शंकर का सती से विवाह। जिसे दक्ष परंपरा का टूटना समझ रहे हैं। सती के इस कार्य से, उन्हें लगता है कि सती

और शंकर ने उनके घर की परंपरा और उनके यश पर कालिख पोती है। यही समस्या राजा जयचंद के साथ थी। इन्हें परंपरा के टूटने की परवाह नहीं है, परवाह है, अपने यश की। इस अपमान का बदला लेने के लिए दक्ष एक यज्ञ का आयोजन करता है। सती और शंकर को निमंत्रण नहीं दिया जाता है उसे लगता है कि इससे उसके अपमान का बदला पूरा हो जाएगा। दुष्यंत कुमार दक्ष के हवाले से लिखते हैं—“शंकर! शंकर!! / वह, / जिसने घर की परंपरा तोड़ी, / वह, जिसने मेरे यश पर कालिख पोती है / जिसके कारण / मेरा माथा नीचा है सारे समाज में, / मेरे घर में ही अतिथि-रूप में आए? / यह तुम क्या कहती हों?”² वीरिणी इसका विरोध करती है। वह भी परंपरावादी है क्योंकि वह शंकर और सती को लौकिक मर्यादा का पालन करने के लिए बुलाना चाहती है। वह दक्ष से अचानक कहती है—मेरी दाई आँख फड़क रही है। जिसे अपशुगुन माना जाता है। इस तरह के अंधविश्वास से भी ग्रसित है।

पूरे नाटक में 'सती' नाम का कोई पात्र मौजूद नहीं है। 'सती' नाटक के पहले और तीसरे अंक में प्रतीकात्मक रूप से मौजूद रहती है। नाटक में मर्यादा बहुत टूटी है। सती पति शंकर को निमंत्रण न मिलना मर्यादा का टूटना मानती है। दूसरी तरफ सती का यज्ञस्थल पर पहुँचकर सामग्री और व्यवस्था को अस्त-व्यस्त करने को दक्ष मर्यादा का टूटना मानता है। दुष्यंत कुमार लिखते हैं—“और प्रभु!, / क्षमा करें / सती, यज्ञ-मंडप में क्रुद्ध / महादेव पति की अवज्ञा पर क्रुद्ध / धर्म और शासन की, मर्यादा कर भंग / अतिथि, और अतिथेय / सबको अपशब्द कह रही है”³ वीरिणी पुत्री मोह के कारण

कहती है आपकी पुत्री ऐसा नहीं कर सकती। अगर ऐसा किया भी होगा तो आपके स्नेह के कारण किया होगा। दूसरी तरफ सती को अपनी मर्यादा की चिंता नहीं है उसे अपने पति शंकर की मर्यादा की चिंता है। कहती है—“मेरा घर है, मेरा क्या, / मैं तो प्रजा में खड़ी होकर भी / दर्शक की तरह भी यज्ञ देखूँ तो / मेरी मर्यादा नहीं घटती। / पर मेरे महादेव शंकर का स्थान, वहाँ / सर्वोपरि आसन के निकट रहें।”⁴

अनुचर से यह बात सुनकर दक्ष क्रोधित हो जाता है और कहता है कि उससे बोल दो कि मेरा यह दृढ़ निश्चय है। मेरे आयोजन में शंकर का कोई स्थान नहीं होगा। यही नहीं युग-युग तक किसी यज्ञ अथवा आयोजन में उसको निर्मंत्रण तक न जाएगा। वीरिणी विरोध करती है। वह शंकर के क्रोध से परिचित है इसलिए कहती है—“नाथ!, तनिकठरो तो। सोचो तो- / मेरा नहीं, अपना / और अपने इन बच्चों का भाग्य / और राज्य का भविष्य”⁵

आगे कहती है—“आ, मैं समझ गई / दुर्दिन जब आते हैं / तो पहले / व्यक्ति का स्वतंत्र बोध / चिंतन / और प्रज्ञा कर लेते हैं / अनायास / मन की वैचारिक स्थितियाँ / प्रतिबंधित कर देते हैं।”⁶

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि अभी तक मर्यादा और परंपरा के पहलू से बंधी हुई वीरिणी अचानक तर्कसंगत बात करने लगती है। जहाँ उसका आधुनिकता भाव बोध को जगृत हो जाता है। इसी बीच सती यज्ञ-कुण्ड में कूदकर जान देती है पहला अंक समाप्त हो जाता है।

दूसरे अंक की शुरुआत ‘सर्वहत्’ पात्र के वाक्य से होती है जो आमआदमी का प्रतिनिधित्व कर रहा है। वह युद्ध के बाद रोटी-रोटी के लिए मोहताज है क्योंकि सती की मृत्यु के बाद शंकर की सेना ने पूरे यज्ञ को खंडित कर दिया था। हर तरफ खून ही खून है जनता भूख से व्याकुल है। भूख के कारण रक्त पान कर रहे हैं। वह कहता है—हमारा क्या है। हम तो राजा, महाराजा, नेता, राजनेता और निर्देशक के आदेश पर अभिनय कर रहे हैं। हमारे लिए कुछ नहीं है। रोटी भी नहीं। पूरा परिवेश युद्ध के बाद परिवर्तित हो गया है। जिसका वर्णन दुष्यंत कुमार इस प्रकार करते हैं—“जन संकुल

राजमार्ग : नीरव / जन-हीननगर, / चिड़ियों के नुचे हुए पंखों से / सारे घर / सारा क्रम छिन्न-भिन्न / पूरा परिवेश / और ध्वस्त इन सारी स्थितियों पर / तनी हुई / वह आकृति : क्रोध मगन”⁷

इसके बाद विष्णु, ब्रह्मा, इंद्र, वरुण और कुबेर आदि युद्ध के बाद समीक्षा कर रहे हैं। ठीक ऐसे जैसे भारतीय नेता सारा समय समीक्षा करने में निकाल देते हैं। और इसमें पिसती है आम जनता। जिसकी पीड़ा को ‘सर्वहत्’ शहन कर रहा है। इसके विषय में दुष्यंत कुमार लिखते हैं—“सारे नगर में ताजा / जमा हुआ रक्त है / और सड़ी हुई लाशें हैं / मुड़ी हुई हड्डियाँ हैं / कष्ट-विक्षत तन है / और उन पर भिन्नाते हुए / चीलों और गिद्धों के झुंड / और मक्खियाँ हैं / सब कुछ तो है / देखो ये महल हैं / कंगूरे हैं / कलश हैं / अतिथि-भवन है / राजमार्ग है / सिर्फ लोग नहीं हैं तो क्या हुआ? / लोगों के होने न होने से / क्या कोई दृश्य की महत्ता कम हो होती है।”⁸

आगे ब्रह्मा, सर्वहत् से पूछते हैं—तुम कौन हो। इस पर ‘सर्वहत्’ लोकतंत्र के जिम्मेदार नागरिक की तरह उत्तर देता है—“शायद मैं राजा हूँ / शायद मैं शासन का प्रतिनिधि हूँ / या मैं इस राज्य की प्रजा हूँ / या शायद मैं कुछ भी नहीं हूँ / और सब कुछ हूँ / पर तुम क्यों पूछ रहे हो यह प्रश्न / मैंने तो तुमसे कुछ भी नहीं पूछा”⁹ सर्वहत् का जवाब देने का यह तरीका आधुनिकता से प्रभावित है। ठीक ऐसे ही सवाल युद्ध के बाद सभी राष्ट्र की जनता को करना चाहिए क्योंकि उनका अस्तित्व हमसे है। नेता, राजनेता और शासक वर्ग की भूलों का उत्तरदायित्व जनता को ही वहन करना पड़ता है। यह सवाल इसलिए भी करना चाहिए कि हम जनता हैं। ये केवल रक्तपात पर संवेदना का अमृत छिड़कने के लिए आते हैं देवों की तरह। और ये बड़ी-बड़ी बातें करने में माहिर होते हैं लेकिन जब जान पर बन आती है तो वरुण और कुबेर की तरह घटना स्थल से भाग खड़े होते हैं। ये पूरे राष्ट्र को हजम करने की ताकत रखते हैं फिर भी इनका पेट नहीं भरता है। इसकी तरफ इशारा करते हुए दुष्यंत कुमार लिखते हैं—“खाओ खूब खाओ / यहाँ सब कुछ है / देखो यह महल हैं / कंगूरे हैं, कलश हैं /

अतिथि-भवन है / राजमार्ग है / इन सब खा लो / इन सबसे भूख मिट जाती है”¹⁰

सभी परंपराओं को छोड़ना नहीं चाह रहे हैं। सभी उन से चिपके हुए हैं। ठीक जिस तरह चंदन के पेड़ से सांप चिपका रहता है। नाटक के सभी पात्र आधुनिक लोगों की तरह परंपराओं और रूढ़ियों से ग्रस्त है। राजा दक्ष भी तो एक लौकिक परंपरा को जिंदा रखने के चक्कर में यज्ञ के रूप में युद्ध का आयोजन करता है।

नाटक में एक बार फिर दिखावटी लोकतंत्र के दर्शन होते हैं। सभी देव समीक्षा के बाद आपस में बात करते हैं। वरुण जनता के लिए नहीं बल्कि अपनी सुरक्षा के लिए भी शंकर को दंडित करने की बात करता है। ठीक इस तरह जैसे सरकारें अपने हर कार्य को जनता के नाम पर करती हैं। वरुण कहता है—“नागरिक न्याय / और सहज अनुशासन के लिए / यह अपेक्षित है / शंकर को दंडित किया जाए”¹¹ दूसरी तरफ ‘सर्वहत्’ कहता है कि हम एक दिन मर जाएंगे। पेट बजाते और भूख-भूख चिल्लाते। क्योंकि हमें शासक वर्ग झूठे वादों के जाल में फंसा कर रखते हैं। और दूसरी तरफ हमारी मूलभूत जरूरतों से मुँह-मोड़ लेते हैं।

तीसरा अंक शंकर के पत्नी वियोग से शुरू होता है। वे अपनी इस दशा का कारण देवत्व और आदर्शों को मानते हैं। और हर परंपरा के मरने का विष मुझे मिला है। हर सूत्र का श्रेय ले गए और लोग। इसके बदले मुझे क्या मिला है पत्नी वियोग। लेकिन परंपरातो शंकर ने तोड़ी थी सती से विवाह करके। शंकर यहाँ आधुनिक नजर आते हैं। दूसरी तरफ देखा जाए तो शिव भी परंपराओं, रूढ़ियों और कुंठाओं से खाली नहीं हैं। वह सती के शव को सीने से चिपकाकर कैलाश पर्वत पर घूम रहे हैं जिससे उनकी गहन मोहमाया का ज्ञान होता है। शव से दुर्गंध आने लगी है। वास्तव में यह दुर्गंध यहाँ प्रतीकात्मक रूप से प्रस्तुत हुई। यह दुर्गंध परंपराओं, रूढ़ियों और कुंठाओं की हैजिसे शंकर भगवान ढो रहे हैं। इसी झूठी परंपरा को ढोने पर दुष्यंत कुमार का एक शेर याद आता है—“कैसे मंजर सामने आने लगे हैं / गाते-गाते लोग चिल्लाने लगे हैं / अब तो इस तालाब का पानी बदल दो / ये कँवल के फूल कुम्हलाने लगे हैं ‘दुर्गंध परंपराओं,

रुद्धियों और कुंठाओं को उतार फेंकने में ही अच्छाई है नहीं तो वह बोझ बन जाती है जिससे शंकर भी नहीं बच पाए। शंकर अपना डमरु बजाने लगते हैं। और त्रिलोक में तांडव करने की सोच लेते हैं। और अपनी सेनाओं को युद्ध की तैयारी करने को कह देते हैं। बिना किसी सोचे समझे। उसके परिणाम की परवाह किए बिना। ऐसे लोगों की समाज में कोई कमी नहीं है न शासन वर्ग में। यह अकेले व्यक्ति की मृत्यु का सवाल नहीं है बल्कि आप इस तरह के कार्य से अपनी सेना के साथ सामूहिक आत्महत्या करने की तरफ अग्रसर होते हैं।

चौथे और अंतिम अंक में दूसरी तरफ देवलोक में भी युद्ध की चर्चा पर बैठक चल रही है जिसमें इंद्र, वरुण, कुबेर आदि देव ब्रह्मा से युद्ध करने की आज्ञा माँग रहे हैं लेकिन ब्रह्मा युद्ध के दुष्परिणामों को ध्यान में रखते हुए किसी भी तरह का आदेश देने स्थिति में नहीं है क्योंकि सामूहिक प्राणों का सवाल है। यहाँ पर ब्रह्मा ज्यादा तर्कशील और आधुनिक नजर आते हैं। और इंद्र कहते हैं—“पर यदि मुझसे करो अपेक्षा / तो मैं अपने मुँह से / सेना को आदेश नहीं दे सकता। / मैं पहले ही बता चुका हूँ। / यह सामूहिक आत्मघात है। / इसके पीछे कोई जीवन द्रष्टि नहीं / केवल आग्रह है। / प्राणों की आहुति / युद्ध के लिए नहीं / सत्य के लिए होती है”¹² लेकिन इंद्र कुछ ज्यादा ही जल्दी में है। शंकर भगवान की तरह। वह युद्ध के पश्चात होने वाले सब परिणामों को ध्यान में नहीं रखते हैं। इस तरह का व्यक्ति निश्चित प्रजा का दुश्मन होता है जो केवल अपने बारे में ही सोचता है। युद्ध केवल प्रजा की रक्षा पर ही होता है। प्रश्न खड़ा होता है रक्त किसका बहता है। प्रजा का या आदेश देने वाले चाटुकार राजनेताओं का। इधर मरे या उधर मरे, मरती तो आमजनता ही है। ब्रह्मा युद्ध की आज्ञा नहीं देते हैं तो इंद्र दर्योधन की तरह अपनी शक्तियों का व्याख्यान करने लगते हैं जिस तरह की वर्तमान समय में ज्यादातर राष्ट्र अपने परमाणु

शक्तियों के बारे में चर्चा करते रहते हैं। उन्हें मालूम नहीं है कि इससे संपूर्ण मानवता और ब्रह्मांड को खतरा है। जब रक्षक ही भक्षक बन जाते हैं और इंद्र जैसे लोग बनने की तैयारी कर रहे हैं लेकिन उन्हें ब्रह्मा जैसे कुछ लोगों ने रोक रखा है। अन्यथा बनने में देर नहीं लगेगी। नाटक के इंद्र की तरह कुछ लोग आग में घी डालने का कार्य करते हैं। इन्हें मालूम नहीं है कि युद्ध किसी समस्या का समाधान नहीं होता है। यदि कोई समझता है तो यह उसका भ्रम के सिवा कुछ नहीं है।

यह सब किया जाता है। राष्ट्र की सुरक्षा के नाम पर। वास्तव में यह युद्ध आज्ञा नहीं है। यह एक परंपरा है जिससे शंकर, इंद्र, वरुण और कुबेर जुड़ा रहना चाहते हैं लेकिन ब्रह्मा और विष्णु उसे तोड़ने के पक्ष में हैं। वे आधुनिकता के परिचायक हैं लेकिन जो परंपरा तोड़ना चाहता है। उसके प्रति लोगों का नजरिया आक्रमक और हिंसक हो जाता है। जब इस तरह की बातें करते हैं तो इंद्र के कुछ समझ में आता है और कहते हैं—“समझ गया मैं एक सत्य से कट जाने पर / यह सामर्थ्यहीन साधारण जन / केवल भयभीत हो गया / पर कैलाशनाथ ने सहसा / आक्रमक का रूप कर लिया पलमें धारण / नए सत्य से जोड़ नहीं पाए वे खुद को / शव के कारण”¹³ लोग इस सत्य से जानबूझकर भागते रहते हैं जिसकी तरफ ‘सर्वहत्त’ के हवाले से दुष्यंत कुमार इशारा करते हैं—“जो अपनी गर्दन ऊँची रखते हैं / वे भी / नए सत्यको सम्मुख पड़कर नहीं देखते / वे भी सहसा नए प्रश्न से नहीं जूझते / उससे लड़कर नहीं देखते / सिर्फ व्यस्तताओं की रचना करके / उसे टाल जाते हैं”¹⁴

अब उपरोक्त विवेचन-विश्लेषण के बाद निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि दुष्यंत कुमार जी का ‘एक कंठ विषपायी’ काव्य नाटक पौराणिक कथा पर आधारित होने के बावजूद समकालीन समस्याओं पर प्रकाश डालता है। दुष्यंत कुमार अपने इस काव्य नाटक के माध्यम से परंपराओं, रुद्धियों और

कुंठाओं से चिपके हुए लोगों पर प्रहार करते हैं। नाटक को पढ़ते वक्त कहीं भी ऐसा नहीं लगता कि यह एक पौराणिक कथा है क्योंकि कथा की सभी समस्याएँ समकालीन लगती हैं। इस पौराणिक कथा के माध्यम से आधुनिक समस्याओं को दुष्यंत कुमार ने रेखांकित किया है। ‘एक कंठ विषपायी’ काव्य में आधुनिकता का भावबोध स्पष्ट रूप से दिखाई देता है इसलिए ‘एक कंठ विषपायी’ काव्य नाटक को आधुनिकता का दस्तावेज कहा जा सकता है। नाटक के सभी पात्रों के नाम कथा के अनुसार पौराणिक हैं लेकिन इनके सभी कार्य-कलाप आधुनिकता से पूर्ण लगते हैं। अतः कहा जा सकता है कि दुष्यंत कुमार ने पौराणिक कथा के माध्यम से समकालीन दुख, पीड़ा, जरूरतों और समस्याओं आदि को उठाने में सफल रहे हैं। यह उनकी और नाटक की सफलता कही जा सकती है।

संदर्भ :

1. सं. डॉ. विजयबहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार रचनावली (भाग-2), पृष्ठ संख्या-27
2. वही, पृष्ठ संख्या-30
3. वही, पृष्ठ संख्या-42
4. वही, पृष्ठ संख्या-46
5. वही, पृष्ठ संख्या-47-48
6. वही, पृष्ठ संख्या-48
7. वही, पृष्ठ संख्या-52
8. वही, पृष्ठ संख्या-55
9. वही, पृष्ठ संख्या-56
10. वही, पृष्ठ संख्या-60
11. वही, पृष्ठ संख्या-66
12. वही, पृष्ठ संख्या-90-91
13. वही, पृष्ठ संख्या-110
14. वही, पृष्ठ संख्या-111

शोधार्थी, हिंदी विभाग
हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय
हैदराबाद-500046
azad120691@gmail.com
मोबाईल-8341838118

दुष्यंत कुमार के काव्य में चित्रित विविध-आयाम

दुष्यंत कुमार ने अपनी रचनाओं से साहित्य जगत में हलचल पैदा कर दी थी क्योंकि उनके साहित्य में एक समूचे राष्ट्र का मोहभंग, उसकी झुझलाहटें, अदृश्य गुस्से या नाराजगी, असंतोष, उम्मीदों का टूटना, आशाओं का धूमिल होना, लोक सौंदर्य और संवेदना, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि समस्याएँ और न जाने कितनी कोप की अपरिमित मुद्राएँ करवटें ले रही हैं। उनके संपूर्ण साहित्य में आम-आदमी की समस्याओं को दिखाया गया है। चाहे उनके द्वारा लिखा साहित्य किसी भी विधा का हो। कविता, काव्यनाटक, गीत, गजल, कहानी, संस्मरण, रेखाचित्र, एकांकी और उपन्यास आदि तक, सब में निरंतर दुष्यंत कुमार की प्रखर प्रतिभा और विरल सर्जनात्मक जिजीविषा के उदाहरण देखने को मिलते हैं जिनमें लोक चेतना से लेकर राष्ट्रीय चेतना तक पायी व्याप्त है।

इस शोध-पत्र में हम दुष्यंत कुमार की प्रमुख काव्य कृतियों के आधार पर उनकी कविताओं में चित्रित विविध-आयामों का अध्ययन करेंगे क्योंकि दुष्यंत कुमार ने अपने काव्य के विषय जीवन के विभिन्न पक्षों या पहलुओं को ध्यान में रखकर चुना है। दुष्यंत कुमार का काव्य स्वतंत्रता के पश्चात आरम्भ होता है इसलिए उनके काव्य में स्वतंत्रता के बाद की युगीन परिस्थितियों से उत्पन्न समस्याओं का चित्रण अधिक देखने को मिलता है। कवि की सबसे बड़ी विशेषता है कि वे किसी भी वाद या परम्परा से नहीं जुड़े थे। स्वतंत्र होकर काव्य रचना करते रहे। उनकी कविताओं के विषय बहुत विस्तृत और गहराई लिए होते हैं। उन्होंने जीवन के विभिन्न पहलुओं से विषय चुने हैं। जैसे- पौराणिक और धार्मिक विषय, पीड़ित या दुखी आम आदमी की पीड़ा, जनहित या राष्ट्रहित, प्रजातंत्र समाज व्यवस्था पर चोट करना, सांस्कृतिक, नैतिक, सामाजिक मूल्यों में बदलाव, लोक संवेदना, लोक सौंदर्य, युद्ध अशांति, जीवन की व्याख्या, मानव भावनाएँ और आशा-निराशा आदि। दुष्यंत कुमार जी ने चार काव्य-संग्रहों की रचना की।

कलम से सूर्य का स्वागत करने वाले कवि दुष्यंत कुमार ने साहित्य जगत में पदार्पण 'सूर्य का स्वागत' शीर्षक काव्य-संग्रह के साथ किया। 'सूर्य का स्वागत' काव्य-संग्रह 1957 में प्रकाशित हुआ था। जिसमें 48 कविताएँ संकलित हैं। इन्हीं कविताओं की शक्ति के बल पर दुष्यंत कुमार जी ने हिन्दी साहित्य जगत में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया। इस संग्रह की कविताएँ 1953-54 में एम.ए. की पढ़ाई के दौरान लिखी गई थी। मार्कण्डेय की सहायता से 1957 में 'सूर्य का स्वागत' संग्रह प्रकाशित हुआ है। वैसे तो कवि ने 14-15 साल की बाल उम्र से ही कविताएँ लिखनी आरम्भ कर दी थी। ये कविताएँ बीज से अंकुर जैसी स्थिति से लिखी गई। साहित्य दृष्टि से 1949 की कविताएँ लिखी गई। जिस समय कवि नटहौर में पढ़ता था। यह वही समय था जब राष्ट्र के राजनीतिक क्षितिज पर आशंकाओं के बादल मंडरा रहे थे। आजादी प्राप्त होने के उपरांत उत्पन्न होने वाली अनेक समस्याओं से देश जकड़ा हुआ था। गांधी जी की हत्या, हिन्दू-मुस्लिम दंगे, शरणार्थियों आदि जैसे समस्याएँ सामने खड़ी थी। राष्ट्र के इस वातावरण ने कवि को बहुत ज्यादा प्रभावित किया। इन्हीं विषयों को लेकर कविताएँ लिखनी आरम्भ की। गाँधी जी की हत्या के उपरांत उन्होंने अनेक कविताएँ लिखीं। इस सन्दर्भ में 'भुला सकूँगा नहीं कभी' शीर्षक कविता को देखा जा सकता है। यह कविता कवि ने नटहौर के कॉलेज के समय में लिखी थी- "तुमने मुझको रंग बिरंगे सपने बहुत दिखाए/ तुमने पथ में मेरे पग के नीचे फूल बिछाए/ तुमने मेरे उर में लाखों स्वर्णिम लोक बसाए/ तुमने मेरे कर में लाखों सुख के गीत लिखाए/ पर चाहा जब अहम् तुम्हारा मेरे में खो जाए/तुमने तब दे अतिशय पीड़ा सब अरमान जलाए/ जान गया कैसे सहते हैं सहकर कष्ट महान"[1]

गांधी की हत्या को कवि ने जन सामान्य की तरह निंदनीय माना। इस प्रकार दुष्यंत कुमार ने देश के आकाश में मंडराते काले बादलों पर लिखकर तत्कालीन अशांति पूर्ण वातावरण की ओर संकेत किया। इसलिए उनकी शुरुआती कविता में राजनैतिक वातावरण बराबर चित्रित हुआ है।

दुष्यंत कुमार ने स्कूल के समय ही लिखना आरम्भ कर दिया था। वह पहले 'परदेशी' और 'विकल' नाम से कविताएँ लिखते थे। बाद में दुष्यंत कुमार के नाम से ही लिखने लगे। कवि ने जब लिखना आरम्भ किया था। तब साहित्य जगत में छायावादोत्तर गीति-काव्य और प्रगतिवाद के स्वर सुनाई पड़ रहे थे इसलिए उनकी शुरुआती कविताओं में प्रगतिवाद के स्वर दिखाई देते हैं। 'उस समाज को' शीर्षक गीत को उदाहरणस्वरूप देख सकते हैं- "उस समाज को कौन रसातल में जाने से रोक सकेगा/ जिस समाज में नारी जाति को अबला का उपनाम दिया है/ जिस समाज ने नारी जाति का जी भरकर अपमान किया है/ अपने घर की प्राचीरों तक उसका सीमित क्षेत्र बनाकर/ जिस समाज ने उसको अपनी राहों से अनजान किया है/ उस समाज को कौन अरे ठोकर खाने से रोक सकेगा"[2]

कवि की शुरुआती कविताओं में छायावादी रूमानी शैली की छाप दिखाई देती है। इस तह की ज्यादातर कविताएँ गीतात्मक शैली में लिखी गई हैं। कवि को जिससे प्रेम हुआ था, वह प्रेमिका प्रवास में है इसलिए वह उसकी प्रतीक्षा करते रहते हैं। एक तरह से वे निरंतर वियोग पीड़ा में जल रहे हैं लेकिन उन्हें उसके वापस लौटने की उम्मीद बराबर लगी रहती है। साथ ही कवि सोचता है यदि प्रेमिका रुठ गई है तो मैं उसे किस प्रकार मना सकता हूँ। 'तुम्हीं बता दो' शीर्षक गीत को उदाहरण के रूप में देख सकते हैं- "तुम्हीं बता दो कैसे अपना/ रुठा साजन आज मनाएँ/ जिसने दृग के तीर मारकर/ छलनी-सा उर कर डाला है/ जिसने नयनों के प्यालों में/ सागर का जल भर डाला है।"[3] इन गीतों में सौंदर्य की लालसा है। प्रेमिका का देहाकर्षण का कुछ बोध होता है। लेकिन मूल में कहीं भी आभास नहीं होता है। इसलिए कवि लिखते हैं- "गोरी नश्वर काया पर अभिमान करो मत।/ सुषमा का आगार धूप क्षण में हर लेगी।"[4] इस गीत में एक तरफ प्रिय के पाने की लालसा है तो दूसरी तरफ नश्वर काया की क्षणभंगुरता का आभास कवि कराता है।

प्रेम के साथ-साथ शुरुआती कविताओं में यथार्थ बोध भी चित्रित हुआ है। 'दीवार दरारें पड़ती जाती है, इसमें 'दीवार' कविता की यह पंक्ति मानवता के बीच विद्यमान भेदोपभेद की सूचक है। दुष्यंत जी की कविताओं में मानवता का स्वर मुखर रूप से

प्रकट होता है। 'संसार नहीं मिलता' शीर्षक गीत को उदाहरण के रूप में देख सकते हैं तथा दुष्यंत जी को मानवता का कवि घोषित करती है- "है बदल न पाए अब तक धरती-अंबर/ है वही हिमालय वही वायु वह सागर/ मानव की जिंदगी बहुत सस्ती है/ जो आता है हर बार यहाँ मर-मरकर"[5]

दुष्यंत कुमार के शुरुआती गीतों और कविताओं का मूल सार के रूप में इतना कहा जा सकता है कि इनमें मूल समस्या प्रेम की है। इसके साथ ही आशा, निराशा, लालसा, बेचैनी, छटपटाहट, वेदना, करुणा तथा स्वाभिमान जैसी विशेषताएँ देखने को मिलती हैं। स्वतंत्र रूप से देश की तत्कालीन स्थिति, स्वार्थपरकता और मानवता को भी कवि ने व्याख्यायित किया है।

अब बात करते हैं 'सूर्य का स्वागत' कविता संग्रह की। जिसकी कविताओं में मानव जीवन संबंधी पर्याप्त विषयों को कवि दुष्यंत कुमार द्वारा उठाया गया है। हृदयों में नफरतों का साम्राज्य वर्तमान समय में इतना व्यापक या विस्तृत हो गया है कि मनुष्य, मनुष्य को काटने के लिए तैयार है। आत्मीयता समाप्त होती जा रही है। पारस्परिक स्वार्थता के कारण मनुष्य के मधुर संबंधों रूपी दीवार जर्जर होकर गिर रही है। वह मनुष्य अपने स्वार्थ तक सीमित हो गया है। बढ़ती हुई विषमता के कारण मनुष्य जहरीले सर्प के समान व्यवहार करने लगा है। जिसके कारण समाज में सर्वत्र बिखराव है टूटन है, पारस्परिक सद्भाव का अभाव है। 'दीवार' शीर्षक कविता को उदाहरण के रूप में देख सकते हैं - "दीवार, दरारें पड़ती जाती है इनमें/ दीवार, दरारें बढ़ती जाती हैं इनमें/ तुम कितना प्लास्टर ओं सीमेंट लगाओगे/ .../ दीवार भला कब तक रह पाएगी रक्षित/ यह पानी नभ से नहीं धरा से आता है।"[6]

वर्तमान समय में समाज में धार्मिक कर्म-काण्डों का बोल-बाला है। गुणों से हीन समाज पंगू होता जा रहा है। दुष्यंत जी की कविताओं में इनसे मुक्ति पर सवाल किया गया है। साथ ही कवि स्पष्ट रूप से कहते भी हैं कि मात्र गीत, कविता और गज़लों से काम नहीं चलेगा। मनुष्य को अपने हृदय में परिवर्तन करना होगा। साथ ही अपनी रेशम जैसी अभिलाषाओं को कम करना पड़ेगा। 'कुंठा' शीर्षक कविता इसका उदाहरण है - "मेरी कुंठा/ रेशम के कीड़ों-सी/ ताने-बाने बुनती/ तड़प-तड़पकर/ बाहर आने को सिर धुनती"[7] 'कुंठा' कविता के माध्यम से कवि ने मानव मन के मनोवैज्ञानिक स्वभाव का चित्रण किया है। मनुष्य अपनी इच्छा, अभिलाषाओं और आकांक्षाओं के कारण नैतिक कर्तव्य को भुलाकर अन्याय का पक्षधर हो जाता है जिसका उदाहरण 'कुंठा' शीर्षक कविता है।

'सूर्य का स्वागत' काव्य संग्रह में कवि ने कुंठित इच्छाओं से प्रभावित होकर श्रांगरिक सौंदर्य का वर्णन भी किया है। जिसमें नारी सौंदर्य के विविध नये उपमान देखने को मिलते हैं। 'वासना का ज्वार' और 'दो पोज' कविताएँ महत्वपूर्ण नजर आती हैं। अपार सौंदर्य के साक्षात्कार तथा मुस्कान के कारण कवि को अपने हृदय का संयम हारा हुआ नजर आता है। उदाहरण के लिए 'दो पोज' शीर्षक कविता देख सकते हैं- "सद्यस्नात तुम/ जब आती हो/ मुख कुंतलो से ढका रहता है/ बहुत बुरे लगते हैं वे क्षण जब/ राहू से चौंद ग्रसा रहता है।/ पर जब तुम/ केश झटक देती हो अनायास/ तारों सी बूँदें/बिखर जाती है आसपास/ मुक्त हो जाता है चौंद/ तब बहुत भला लगता है"[8]

दुष्यंत कुमार ने जिंदगी को सफलता के मंच तक पहुँचाने में सत्य के महत्व को सदैव स्वीकार किया। जो व्यक्ति झूठ बोलकर कुछ देर के लिए अपनी इच्छाओं रूपी प्यास बुझा सकता है लेकिन उसे शीतलता सत्य रूपी पानी से प्राप्त होती है। सत्य को न अपनाने वाला व्यक्ति अभावों का जीवन जीता है। 'सूर्य का स्वागत' काव्य संग्रह की कविताओं में कवि ने यह दिखाने की

भरसक कोशिश की है। दुष्यंत कुमार के अनुसार सत्य से कुछ संघर्ष तो करना पड़ता है लेकिन वह मानते हैं कि सत्य की ही जीत होती है। उनकी नजर में 'जीवन ही संघर्ष है' वाला सिद्धांत ही सब कुछ है। उनका स्वयं का व्यक्तित्व भी कुछ ऐसा ही बयान करता है। उन्होंने सत्य से कभी मुँह नहीं मोड़ा, जिसके कारण उनकी अनेक नौकरियाँ छूटी और तबादले हुए लेकिन सत्य का साथ नहीं छोड़ा। 'ओ मेरी जिन्दगी' शीर्षक कविता में कुछ ऐसा ही दिखाई देता है- "मैं उस समय तक चलूँगा/ जब तक उँगलियाँ गलकर न गिर जाएँ/ तुम फिर भी अपनी हो/ वह फिर भी गैर थी जो छूट गई;/ और उसके सामने कभी मैं/यह प्रगट न होने दूँगा/ कि मेरी उँगलियाँ दगाबाज़ है/ या मेरी पकड़ कमजोर है/ मैं चाहे कलम पकड़ूँ या कलाई"[9] दुष्यंत कुमार का जीवन जीने का अंदाज़ कुछ ऐसा ही रहा है- अवरोधों का डटकर सामना करना और दुःख को हँसते-हँसते झेलना। जो व्यक्ति सुख भोगकर दुनिया से चला गया वह ऐसे सुख से वंचित रह जाता है जिस पर करोड़ों करुण मुस्काने कुर्बान है, उस सुख का नाम ही दुःख है। दुखी व्यक्ति ही सुख का आनन्द ले सकता है क्योंकि दुःख के दीपक में ही सुख रूपी लौ जलती है। और वह जीवन के अंधकार को दूर करती है। 'मैं और मेरा मेरा दुख' शीर्षक कविता इसका प्रमाण है- "दुःख:/ किसी चिड़िया के अभी जन्मे बच्चे सा;/ किंतु सुख:/ तमंचे की गोली जैसा/ मुझको लगा है/ आप ही बताएँ/ कभी आपने चलती हुई गोली को चलते,/ या अभी जन्मे बच्चे को उड़ते हुए देखा है?"[10] दुःख पूर्ण जिंदगी से घबराकर व्यक्ति को कभी भी परिस्थितियों से समझौता नहीं करना चाहिए, क्योंकि जो परिस्थितियों से समझौता करता है वह कायर है, उसका पौरुष मर जाता है। 'सूर्य का स्वागत' काव्य संग्रह की 'अनुभव दान' शीर्षक कविता इसका प्रमाण है। जीवन की सफलता का केवल एक ही रास्ता है कि व्यक्ति विश्वास और सीना तानकर समस्या के सामने खड़ा हो जाए।

काव्य-संग्रह की कविताओं में मध्यवर्गीय मनुष्य के जीवन में चलने वाले द्वंद्व को कई कविताओं में चित्रित किया गया है। 'नयी पीढ़ी के गीत' शीर्षक कविता में कवि दुष्यंत कुमार ने यही दिखाने का प्रयास किया है। उनकी मान्यता है कि जिन्दगी जीते चलो, आज असफलता तो कल सफलता प्राप्त होगी। सफलता प्राप्त होने का विश्वास मत छोड़ो, इसी विश्वास के साथ व्यक्ति को जीना चाहिए, तभी जीवन का अर्थ प्राप्त होता है। मनुष्य की आशाएँ ही मनुष्य के जीवन का भार बोती रहती है। दुःखों को दूर करने के लिए मनुष्य को आशावादी होना चाहिए। 'शब्दों की पुकार' शीर्षक कविता को उदाहरण स्वरूप देखा जा सकता है- "एक बार फिर/ मृत विश्वासों ने करवट ली/ सूने आँगन में कुछ स्वर शिशुओं-से दौड़े,/ जाग उठी चेतना सोई;/ होने लगे खड़े वे सारे आहत सपने/ जिन्हें धरा पर बिछा गया था झोंका कोई!"[11]

इस संग्रह की अंतिम कविता 'सूर्य का स्वागत' है। जो कवि के व्यक्तित्व में आशावाद के गुण को प्रमाणित करती है। कवि ने कविता ने दिखाया है कि सूर्य अस्त हो जाने से पूर्व व्यक्ति आशाहीन हो चुका है लेकिन जैसे ही सूर्य नई ऊर्जा के साथ उदय होता है, तो उसके स्वागत के लिए खड़ा होता है। 'सूर्य का स्वागत' काव्य संग्रह की कविताओं में दुष्यंत जी ने मानव जीवन की संदेशपरक व्याख्या करी है। एक व्यक्ति को आशावादी बनाना चाहते हैं। व्यक्ति को अंतिम समय तक आशा नहीं छोड़नी चाहिए। साथ ही अन्य कविताओं में निराशा, घुटन और जलनशील सत्यों और असत्यों के कारण मन के द्वंद्व की व्याख्या भी की गई है। कविताओं में चित्रित यथार्थ कवि का स्वयं भोगा हुआ है।

दुष्यंत कुमार के 'सूर्य का स्वागत' काव्य संग्रह के बाद, 'आवाजों के घेरे' काव्य संग्रह 1963 में प्रकाशित हुआ। इसमें 51 कविताएँ संकलित हैं। इस संग्रह की कविताओं में 'सूर्य का स्वागत' संग्रह की कविताओं की अपेक्षा अधिक विविध, विषयों को लेकर विस्तार जिंदगी को व्याख्यायित किया है। साथ ही जीवन से संबंधित अनेक प्रश्न किए और अनेकों उत्तर भी सुझाये गये हैं। कवि ने समाज में जहाँ भी कुछ देखा है उसे व्यक्त करने से संकुचित नहीं हुए हैं। घायल और पीड़ितों और घायलों की करुणा गाथा कहने के लिए तत्पर रहते हैं। वह अपने कलम के साथ संपूर्ण ब्रह्मांड में घुमते हैं। वे करुणा को कविता में दार्शनिक की दृष्टि से नहीं, बल्कि यथार्थ की तेज निगाहों से परखते और पहचानते हैं। प्रस्तुत संग्रह की कविताओं में कवि के हृदय की जो व्याकुलता है, बनी रही है। क्योंकि कवि, एक सफल कवि की अपेक्षा एक सफल व्यक्ति बनने के लिए ज्यादा बेचैन रहता है। इसके लिए कवि ने परम्पराओं का खंडन किया है और टूटती मानवता को जोड़ने का प्रयास किया है।

‘आवाजों के घेरे’ काव्य संग्रह की कविता में कवि का आशावाद के प्रति मोह और ज्यादा बढ़ा है। कवि अवसरवादियों की आलोचना करते हैं। वे कविता में चमत्कार और आतंकित गुणा को अच्छा नहीं समझते हैं। दुष्यंत कुमार की कविता में सीधे-सादे पहनावे में समाज की पथ प्रदर्शक है। वह गुमराह लोगों को रास्ता दिखाने का कार्य करती है। आम आदमी की जिंदगी का विश्लेषण प्रस्तुत करती है। उनकी कविताएँ मुखौटे ओढ़े नहीं रहती है और न ही उनमें शब्दों के चमत्कार पर बल दिया जाता है। वह आम आदमी के लिए लिखी गई है। और उन्हीं की पीड़ा, उत्तेजना, दबाव, अभाव और उनके संबंधों के उलझावों को व्यक्त किया जाता है। ‘आवाजों के घेरे’ काव्य संग्रह की कविताओं में मध्यवर्गीय मनुष्य की जिंदगी और वातावरण को चित्रित किया गया है। कवि समाज में सामाजिक विषमताओं ऊँच नीच, बेईमानी, धोखा-धड़ी, अन्याय, अत्याचार आदि को देखकर कवि विचलित हो जाता है। साथ ही विद्रोह के गीत गाने लगता है। संग्रह की ‘विवेकहीन’ शीर्षक कविता को उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है- “जल में आ गया ज्वार/ सागर आंदोलित हो उठा मित्र/ नाव को किनारे पर कर लंगर डाल दो/ कर कुंठा क्रांति बन जाती है जहाँ पहुँच/ लहरों की सहनशीलता की उसी सीमा पर/ आक्रमण किया है हवाओं ने।”[12] सामाजिक भेद-भाव के कारण मनुष्य की अभिलाषाएँ खत्म हो जाती है लेकिन कवि इसका विरोध करता है। कवि चाहता है कि मनुष्य को परिवर्तन के लिए छटपटाना चाहिए। मनुष्य को स्वतंत्र होकर जीवन व्यतीत करना चाहिए। उसका सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक आदि सभी परम्परागत बंधनों को तोड़ देना चाहिए। यदि मनुष्य ऐसा नहीं करता है तो वह असंतोष और अव्यवस्था को जन्म देता है। मनुष्य को सुखवाद से ग्रस्त नहीं होना चाहिए बल्कि दुःखों के साथ खुशी-खुशी जीवन जीना चाहिए। दुःख के बाद सुख अवश्य आता है।

सर्वभूतहित भावना के कवि दुष्यंत कुमार संग्रह की कविताओं में एक ओर निराशा जीवन का विश्लेषण करते हैं दूसरी तरफ निराशा रूपी कोहरे को दूर करने के लिए आशा रूपी किरणें फैलाते हैं। भविष्य की वंदना करते हुए समूचे मानव जीवन, समाज के उज्ज्वल भविष्य के लिए आस्था बल और आकाश के समान उदार विशाल हृदय मांगते हैं। अन्याय व अत्याचार के लिए आग, जिससे मानव के माथे पर लगे दाग धोए जा सके और सांस्कृतिक उत्थान के द्वार खटखटाये जा सकें। ‘राह खोजेंगे...’

शीर्षक कविता इसका प्रमाण है- “आह/ वातावरण में बेहद घुटन है/ सब अँधेरे में सिमट आओ/ और सट जाओ/ और जितने आ सको उतने निकट आओ/ हम यहाँ से राह खोजेंगे”[13] दुष्यंत कुमार का दैनिक जीवन ऐसे लोगों के बीच ही व्यतीत होता है, जो अपने आपको राजनीति के बड़े पुर्जे मानते थे। इन लोगों की करतूतों से भली-भाँति परिचित भी थे और ऐसे लोगों पर ‘दूसरा संदर्भ’ शीर्षक कविता में कवि ने व्यंग्य भी किया है। इस संग्रह में कवि ने प्रजातंत्र विरोधी ठहरावों को जीवन-विरोधी प्रस्ताव मानकर सदैव अस्वीकार किया है और उन्हें जनसुख में बाधक मानकर निंदा भी की है। ‘आवाजों के घेरे’ काव्य संग्रह की कविताओं पर गाँधीवाद का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। कवि की कविताएँ ही नहीं बल्कि कवि का व्यक्तित्व भी गाँधीवाद से प्रभावित है। गाँधी की मृत्यु पर कवि ने अनेकों कविताएँ उन पर लिखी थी। जिनमें हिंसकतत्वों की भर्त्सना की जिन्होंने राष्ट्रपिता की हत्या की।

‘गौतम बुद्ध से’ प्रस्तुत संग्रह की अंतिम कविता है। इसमें कवि ने बौद्धों के करुणावाद पर सटीक व्यंग्य किया है। महात्मा बुद्ध ने दुःख को जीवन का एकमात्र कारण स्वीकार किया। भूखे व्यक्ति के लिए बुद्ध का यह जीवन का समाधान कवि को उचित नहीं लगता है क्योंकि कवि दुष्यंत कुमार मानवता को सर्वोपरि मानते हैं इसलिए वह इस विचारधारा की आलोचना करते हैं और कविता में लिखते हैं- “दुःख है मूल आज भी जिसकी/ मात्रा की कुछ शर्त नहीं है,/ संघ धम्म की शरण/ लाख सिर पटके कोई अर्थ नहीं है;”[14]

‘आवाजों के घेरे’ काव्य संग्रह की कविताओं में सर्वत्र अन्याय के विरुद्ध बेचैनी दिखाई देती है। मध्यवर्गीय व्यक्ति के अभावों और भावों को कलम से कुरेदा है। उसकी पीड़ा और दुखों की आंसू रूपी माला बनाकर आशा रूपी धागे में पिरोया है। और उसे क्रंदन तथा कोलाहलों के बीच घुटती हुई आवाजों के गले पहनाया है।

‘आवाजों के घेरे’ में घिरा हुआ व्यक्ति और दुष्यंत कुमार जी बहुत बेचैन रहते हैं। आगे वह संवेदनाओं से संपन्न हो विपन्नता के वन में भटकते हुए, वीरान जिंदगी लिए विषमताओं से बसंत वेला में आनंद मानने लगता है। लेकिन यह बसंत वेदनाओं से रिक्त नहीं है। हर क्षण, हर पल वेदनाओं का चक्र चलता रहता है। ‘जलते हुए वन का बसंत’ काव्य संग्रह 1973 में प्रकाशित हुआ था जिसमें 45 कविताएँ संकलित हैं। इस काव्य संग्रह की कविताओं में आम आदमी की वेदना, बेचैनी, संबंधों के खोखलेपन और सामाजिक, राजनैतिक व नैतिक मूल्यों के प्रभाव की कहानी, सीधी, सरल भाषा के द्वारा बयान की है। स्वतंत्रोत्तर भारत में आदमी की असलियत के बयान के साथ कवि ने मानवता के पुनरुद्धार हेतु संकल्पशक्ति का वरण करने की साधना पर बल दिया है। प्रस्तुत संग्रह तीन भागों में बँटा हुआ है- इतिहास बोध, देश प्रेम और चक्रवात आदि में।

कवि दुष्यंत कुमार की कविताओं में संघर्षरत मनुष्य का चित्रण सबसे ज्यादा किया जाता है क्योंकि वह स्वयं भी संघर्षरत रहे हैं और वह ‘संघर्ष ही जीवन है’ वाली उक्ति में विश्वास रखते हैं और यह सही भी है। संघर्ष करने वाला व्यक्ति कुछ देर के लिए असफल हो सकता है परंतु वह पूरी तरह असफल नहीं हो सकता क्योंकि उसके साथ संघर्ष करने के लिए मनोबल होता है। जिसके कारण उसे सफलता निश्चित मिलती है, ‘अवगाहन’ शीर्षक कविता ऐसे ही संघर्षशील व्यक्ति की गाथा प्रस्तुत करती है- “अदृश्य तक निकल गया! आह! मैं तो यहाँ तक अभी आया नहीं हूँ। मैंने यहाँ तक कभी सोचा नहीं है।/ उसने कब तिरना सीख लिया! वह कैसे धारा में अनायास डुबकियाँ लगाता है, वह देखो, नदी पार करता है” [15]

दुष्यंत कुमार की कविताओं के विषय दैनिक-जीवन क्षेत्र से उठाये हुए होते हैं। वर्तमान समय में हर स्थान पर एक भीड़ दिखाई देती है, जिसमें केवल अपनत्व के लिए लोगों को अजनबियों की श्रेणी में खड़ा कर देते हैं। रेल यात्रा में लोग किस प्रकार मानवता को भूलकर दूसरे व्यक्तियों के साथ शत्रुओं जैसा व्यवहार करते हैं। एक-दूसरे के प्रति संदेहों, शंकाओं से भर जाते हैं। कवि ने इसका सुन्दर चित्रण ‘एक सफर पर’ शीर्षक कविता में किया है- “बहुत बुरी हालत है, डिब्बे में/बैठो हुआ को/ हर खड़ा हुआ व्यक्ति शत्रु/ खड़े हुआ को बैठा हुआ बुरा लगता है/ पीठ टेक लेने पर/ मेरे भी मन में/ ठीक यही भाव जगता है/मैं भी धक्कम-धू में/ हर आने वाले को/क्रोध से निहारता हूँ” [16]

आज व्यक्ति समाज में रहते हुए भी उससे कह गया है, पारस्परिक सद्भाव वह भूल गया है। व्यक्ति अपने आप में ही उलझकर रह गया है। मानवता धीरे-धीरे सो रही है। समाज में अन्याय व अत्याचार है, दर्द है, बेचैनी है, घुटन है, टूटन है, पर कहीं है किसी को किसी से कुछ लेना-देना नहीं है। कवि ने युद्ध, विद्रोह, अन्न संकट, सत्ता परिवर्तन तथा अन्य समस्याओं की ओर भी संकेत किया है। व्यक्ति अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए कुछ भी करने के लिए तैयार रहता है। वह समाज में मान सम्मान और उसको प्राप्त करने के चक्कर में मानवता को भूल जाता है। काव्य-संग्रह की कविताओं में कवि ने मानव जीवन के नग्न यथार्थ का चित्रण किया है। व्यक्ति किस प्रकार अपना संपूर्ण जीवन बाजार से रसोई तक चलने के चक्कर में नष्ट कर देते हैं। उसकी इच्छाएँ जीवन का एकमात्र उद्देश्य बनकर रह जाती है। वर्तमान परिस्थितियों और मानव मूल्यों में जो वैषम्य विद्यमान है जिसके कारण मानव मूल्य नष्ट हो रहे हैं। ऐसे व्यक्ति को आदर्श पराजित करते हैं और सत्य छलता है जिसके बारे में कवि ‘बसन्त आ गया’ शीर्षक कविता में लिखते हैं- “मुझे उस भविष्य तक पहुँचने से पहले ही/ रुकना पड़ा/लगा मुझे/ केवल आदर्शों ने मारा/ सिर्फ सत्य ने छला/ मुझे पता नहीं चला” [17]

‘जलते हुए वन का बसन्त’ काव्य संग्रह की कविताओं में कवि ने देश, देशप्रेम, देश भक्ति और देशद्रोह, जनता की स्थिति, मंत्रियों के क्रिया-कलाप, चुनाव, भ्रष्टाचार, झूठे आश्वासन, युद्ध की आवश्यकता, लोकतंत्र की असफलता के कारण और उच्च-निम्न वर्ग के जीवन स्तर की निकृष्टता-श्रेष्ठता आदि विषयों का सूक्ष्म, सांकेतिक, प्रतीकात्मक व कहीं-कहीं सीधी अभिव्यक्ति की है। कवि ने ऐसे लोगों की आलोचना की है जो लोग राष्ट्रप्रेम के नारे लगाते हैं, चीखते-चिल्लाते हैं, पर सचमुच हृदय से कोई देशहित में कार्य नहीं करते हैं। ऐसे लोग देश-प्रेम हो चाहे अन्य किसी पहलू पर दिखावा करते हैं। ऐसे लोगों की दुष्यंत कुमार जी ने ‘देश-प्रेम’ शीर्षक कविता में आलोचना की है- “कोई नहीं देता साथ/ सभी लोग युद्ध और देश-प्रेम की बातें करते हैं।/ बड़े-बड़े नारे लगाते हैं।/ मुझसे बोला भी नहीं जाता।/ जब लोग घंटों राष्ट्र के नाम पर आँसू बहाते हैं/ मेरी आँख में एक बूँद पानी नहीं आता” [18] ऐसे उदास जन-सामान्य के लिए कवि नई पीढ़ी व इतिहास से क्षमा माँगते हुए कहते हैं। मात्र दिखावे से, अर्द्ध-सत्य से, और झूठे आँसू बहाने से देश व जनता का विकास संभव नहीं है।

काव्य-संग्रह की कविताओं में द्वंद्व भी देखने को मिलता है। कवि एक तरफ परम्पराओं, मान्यताओं का खंडन करता है तो दूसरी तरफ उनकी प्रतीक्षा भी करता है। कवि मानता है कि परम्परावादी होने से विकास बाधित होता है। दूसरी तरफ इन्हें तोड़ने के लिए साहस की आवश्यकता होती है क्योंकि कभी-कभी जिंदगी में ऐसे पल भी आते हैं कि कर्म, विराग, कल्पना सब व्यक्ति को दिशाहीन कर देते हैं। 'सृष्टि की आयोजना' शीर्षक कविता में कवि ने कुछ ऐसा ही चित्रण किया है- "मैं- जो भी कुछ हाथ में उठाता हूँ/ सपने या फूल/ मिट्टी या आग/ कर्म या विराग/ मुझे कहीं नहीं ले जाता।/ सिर्फ एक दिग्भ्रम की स्थिति तक"[19]

कवि दुष्यंत कुमार ने अपने तीसरे काव्य संग्रह में विषय विविधता का परिचय दिया है। कविताओं में देश-प्रेम की भावना भी है और दोहरी प्रवृत्ति के लोगों की निंदा भी। साथ ही एक ओर मानव के समक्ष सुरसा के मुँह के समान खड़ी समस्याओं का भी बोध कराया है। साथ ही संघर्ष करने की इच्छाशक्ति भी दिखाई देती है। संघर्ष से ही सफलता मिलती है। जिंदगी की नीरसता और प्रकृति की वस्तुस्थिति के प्रतीक पद्धति से अनेक बिम्ब खींचे हैं।

दुष्यंत कुमार जी की अंतिम काव्य संग्रह 'साये में धूप' 1975 में प्रकाशित हुआ। जो कविता संग्रह न होकर गजलों का संग्रह है। इस गजल-संग्रह से दुष्यंत कुमार ने रातों-रात हिन्दी साहित्य जगत में ही नहीं उर्दू गजल परम्परा भी खलबली मचा दी थी। क्योंकि गजल को शायरों और पाठकों ने केवल प्रेम, मोहब्बत, प्यार आदि के पर्याय के रूप में ही स्वीकार किया था। लेकिन दुष्यंत कुमार ने गजलों के बाह्य पुराने रूप में नई वस्तु को प्रस्तुत किया, जिसमें महँगाई, गरीबी, भुखमरी, बेकारी, भ्रष्टाचार, लापरवाही, शासक वर्ग पर व्यंग्य लोगों ने स्वतंत्रता से जो आशाएँ लगा रखी थीं, उन आशाओं का टूटना, आदि विषयों पर अपनी लेखनी चलाई।

गजल एक स्वतंत्र साहित्यिक-विधा की श्रेणी में आती है। उर्दू में तो गजलों की लम्बी परम्परा देखने को मिलती है। साथ ही

उर्दू में एक से एक बड़े गजलकार और शायर हुए हैं। गालिब, मीर, फ़िराक, फैज अहमद फैज, मुनव्वर राणा आदि। गालिब ने अपने भावों, विचारों को गजल में व्यक्त कर उसे सर्वसामान्य के लिए बना दिया है। वैसे हिन्दी में भी महाकवि निराला, नीरज, रामदरश मिश्र, रघुवीर सहाय, त्रिलोचन, रमासिंह जैसे गजलकारों की एक परम्परा है। इनके बारे में यह कहा जा सकता है कि इन्होंने भी गजलों में अपने हाथ आजमाये। जो इनके लिए महत्वपूर्ण नहीं बन सकी। दुष्यंत कुमार जी से पूर्व हिन्दी में रचित गजलों की यही स्थिति रही। वह हिन्दी जगत के पाठकों को प्रभावित नहीं कर सकी। कवि दुष्यंत कुमार जी कहते हैं कि मैं केवल गजल दिखाने के लिए गजल नहीं लिखा हूँ या सिर्फ पोशाक बदलने के लिए मैंने गजलें नहीं ही है उसके कई कारण हैं जिनमें सबसे मुख्य कारण है कि मैंने अपनी तकलीफ, दुख को इसमें व्यक्त किया है। यह तकलीफ केवल दुष्यंत कुमार की नहीं है बल्कि आम-आदमी की दुःख-दर्द की बात करते हैं। गजल ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुँचती है और पाठक के हृदय को झकझोरकर रख देती है।

दुष्यंत कुमार की तकलीफ अपनी नहीं है बल्कि आम-आदमी की तकलीफ है। जिसके बारे में कवि ने स्वयं की अपनी एक गजल में लिखा है- 'मुझमें रहते हैं करोड़ों लोग चुप कैसे रहूँ।' स्वतंत्रता से आम-आदमी ने आशाएँ लगा रखी थी कि स्वतंत्रता के बाद उन्हें भी चैन की जिंदगी जीने को मिलेगी। लेकिन कुछ नहीं बदला केवल सरकारें बदली। आम आदमी उसी तरह सरकारों की अदला-बदली की चक्की में पिसता रहा है। उसकी स्थिति आज भी वैसे ही है। कवि द्वारा लिखने एक गजल का शेर सारी कहानी व्यक्त कर देता है- "न हो कमीज़ तो पावों से पेट ढक लेंगे,/ ये लोग कितने मुनासिब हैं इस सफर के लिए।"[20] लेकिन तत्कालीन सरकारों ने आजादी से पहले बहुत वादे किये थे जो पूरे नहीं हो सके। आम-आदमी के सभी सपने एक-एक करके टूटने लगे। आम-आदमी के सपनों को टूटता देख दुष्यंत कुमार जी 'साये में धूप' गजल-संग्रह की पहली गजल का पहला शेर ही इस प्रकार है- "कहाँ तो तय था चिरागाँ हरेक घर के लिए/ कहाँ चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए"[21]

कवि ने जो लिखा वह खलकर लिखा। उन्होंने शासक वर्ग पर खूब व्यंग्य किये। उन्हें किसी भी तरह की परवाह नहीं थी। यह

कवि ने जो लिखा वह खुलकर लिखा। उन्होंने शासक वर्ग पर खूब व्यंग्य किये। उन्हें किसी भी तरह की परवाह नहीं थी। यह उनके व्यक्तित्व का गुण था। शासक वर्ग पर साहित्य की चोट से बराबर प्रहार करते रहते थे। एक बार तो उनकी नौकरी भी चली गई थी लेकिन फिर भी वह अपनी आदत के अनुसार लिखते ही रहे। वह सरकारों पर खुलेआम लिखते थे। वे एक शेर में लिखते हैं- “तेरा निज़ाम है सिल दे जुबान शायर की,/ ये एहतियात जरूरी है इस बहर के लिए।”[22]

कवि की गजलों में देश-प्रेम भी बराबर झलकता है। क्योंकि उनके अंदर देश-प्रेम कूट-कूट कर भरा हुआ था। वह भारत के लिए जीना और मरना चाहते थे। शेर में इस प्रकार से लिखते हैं- “जिए तो अपने बगीचे में गुलमोहर के तले,/ मरें तो गैर की गलियों में गुलमोहर के लिए।”[23] लेकिन वह देश की नाजुक हालत को देखकर दुखी होते थे। हर क्षेत्र में महामारी चाहे सामाजिक, चाहे आर्थिक, चाहे प्रशासनिक आदि स्थिति सबकी सब दयनीय दिखाई देती हैं इसलिए कवि दुष्यंत कुमार जी असंतुष्ट नजर आते हैं। वे गज़ल में लिखते हैं- “कल नुमाइश में मिला तो चीथड़े पहने हुए,/ मैंने पूछा नाम तो बोला कि हिन्दुस्तान है।”[24]

कवि की बेचैनी का कारण आम आदमी की पीड़ा रहा, इस पीड़ा से प्रेरित होकर वे राष्ट्र निजामों को फटकारने से भी नहीं चूकते थे। वे सदैव मानवता के लिए जीने मरने वाले व्यक्ति थे। उनकी गजलों में मानवता के खिलाफ जहाँ कहीं भी जो कुछ देखा, उसका चित्रण किया गया है। और उसको देखकर जोरदार प्रतिक्रिया व्यक्त करते। वे चुप रहने वाले नहीं थे। वे लिखते हैं- “ये जुवां हमसे सी नहीं जाती,/ जिंदगी है कि जी नहीं जाती।”[25] आगे लिखते हैं दूसरी गज़ल में- “सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं,/ मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।”[26]

‘साये में धूप’ की गजलों में दुष्यंत जी ने सत्य के पक्ष को कहीं भी छोड़ा नहीं है। उन्होंने देश में व्यापक स्तर पर फैली समस्याओं पर अपनी लेखनी बिना किसी भय से चलाई है। उन्होंने अपने मुँह पर कभी मुखौटा नहीं लगाया अर्थात् उनकी कथनी और करनी में कोई अंतर नहीं दिखता है। जो लोग दोहरी जिंदगी जीते हैं कवि उनसे नफ़रत करता है। उनके लिए वे एक गज़ल के माध्यम से कहते हैं- “यहाँ तो सिर्फ गूंगे और बहरे लोग बसते हैं,/ खुदा जाने यहाँ पर किस तरह जलसा हुआ होगा”[27]

कवि परंपराओं, रूढ़ियों, मान्यताओं और विश्वास-अंधविश्वासों का तो जोरदार विरोध करता है और कहता है कि ये व्यक्ति ही नहीं बल्कि राष्ट्र की प्रगति में भी बाधक होती है। इसलिए वे उनका खंडन करते हैं और लिखते हैं- “पुराने पड़ गए डर, फेंक दो तुम भी/ ये कचरा आज बाहर फेंक तो तुम भी”[28]

‘साये में धूप’ गज़ल संग्रह की गजलों में मानव जीवन से संबंधित विविध विषयों पर कवि ने अपनी लेखनी बिना किसी रूकावट के चलाई है। साथ ही इन गजलों में उर्दू और हिन्दी के शब्दों का मिश्रण भी दुष्यंत कुमार जी ने बहुत सावधानी से किया है। गजलों में हिन्दी-उर्दू का संगम देखने योग्य है। कवि ने गजलों में ऐसे उर्दू शब्दों का प्रयोग किया है जिन्हें भाषा ने आसानी से पचा लिया है।

इस प्रकार दुष्यंत कुमार के काव्य में विभिन्न आयाम देखने को मिलते हैं। ‘सूर्य का स्वागत’ काव्य संग्रह की कविताओं में आशा और उज्ज्वल आस्था का भाव झलकता है तो ‘आवाजों के घेरे’ काव्य संग्रह की कविताओं में व्याकुलता और प्रश्नाकुलता अपनी आक्रामक उपस्थिति जता रही है। ‘जलते हुए वन का बसन्त’ काव्य संग्रह की कविताओं में आम-आदमी

बेचैनी और संबंधों के खोखलेपन का रेखांकित किया गया है। 'साये में धूप' गजल संग्रह में तो जीवन के सभी पक्षों को कवि ने एक साथ उठा लिया है। मानव के जीवन के प्रत्येक पक्ष पर कवि ने अपनी लेखनी चलाई है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. सं. सिंह, विजय बहादुर, दुष्यंत कुमार की रचनावली(भाग- 1), नई दिल्ली, किताबघर प्रकाशन, 2014, पृ. सं.- 137
2. वहीं, पृ. सं.- 134
3. वहीं, पृ. सं.- 129
4. वहीं, पृ. सं.- 302
5. वहीं, पृ. सं.- 210
6. वहीं, पृ. सं.- 357
7. वहीं, पृ. सं.- 335
8. वहीं, पृ. सं.- 358
9. वहीं, पृ. सं.- 341
10. वहीं, पृ. सं.- 342
11. वहीं, पृ. सं.- 343
12. वहीं, पृ. सं.- 449
13. वहीं, पृ. सं.- 454
14. वहीं, पृ. सं.- 486
15. सं. सिंह, विजय बहादुर, दुष्यंत कुमार की रचनावली(भाग- 2), नई दिल्ली, किताबघर प्रकाशन, 2014, पृ. सं.- 142
16. वहीं, पृ. सं.- 151

17. वहीं, पृ. सं.- 165
18. वहीं, पृ. सं.- 167
19. वहीं, पृ. सं.- 200
20. वहीं, पृ. सं.- 261
21. वहीं, पृ. सं.- 261
22. वहीं, पृ. सं.- 261
23. वहीं, पृ. सं.- 261
24. वहीं, पृ. सं.- 288
25. वहीं, पृ. सं.- 281
26. वहीं, पृ. सं.- 272
27. वहीं, पृ. सं.- 262
28. वहीं, पृ. सं.- 274

आज़ाद, शोधार्थी, हिंदी विभाग, हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय | Mobile – 8341838118 Email – azad120691@gmail.com

Chief Editor

Dr. Naresh Shukla
Associate Professor
Department of Gujarati
Veer Narmad South
Gujarat University, Surat.

Co-Editor

Dr. Hasmukh Patel
Principal,
Government Science
College,
Gariyadhar, Dist.
Bhavnagar

Co-Editor

Dr. Bhavesh Jethva
Assistant Professor
(Gujarati)
Kranti Guru Shyamji
Krishna Verma Kutch
University, Bhuj.

Co-Editor

Dr. Niyaz Pathan
Associate Professor (Hindi)
Government Arts and
Commerce College,
Sami, Dist. Patan

Publisher: Dr. Tanvi Shukla, A-53, Hari Nagar, Vavol, Ta & Dist : Gandhinagar, Gujarat.

Developed by Dr. Hasmukh Patel

UNIVERSITY OF HYDERABAD

SCHOOL OF HUMANITIES

Centre For Dalit And Adivasi Studies And Translation

With the financial support of
Uttar Pradesh Bhasha Sansthan, Lucknow



Two Day National Seminar on

"Harmony and unity in Indian Languages and Literature"

8th - 9th March 2019

CERTIFICATE

This is to certify that Prof./Dr./Sri/Smt./Mr./Ms. अ. राजाराम शुकला.....

has participated/Chaired a session/presented a Paper Presenter/ in the two day national Seminar on

'Harmony and unity in Indian Languages and Literature' on 8th - 9th March 2019. Title of the

paper... “देसभक्त कवि के साहित्य में समरसता और एकता का स्वर”.....

Prof. R. S. Sarraju

Head of the Department of Humanities
Programme Coordinator
University of Hyderabad
Hyderabad - 500 046.


Dr. Rajnarayan Shukla
Uttar Pradesh Bhasha sansthan
Lucknow



ज्ञान-विज्ञान विमुक्तये

पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज(सांध्य)

(दिल्ली विश्वविद्यालय)

नेहरू नगर, नई दिल्ली 110065

प्रमाण-पत्र

यह प्रमाणित किया जाता है कि
पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज(सांध्य) के हिंदी विभाग द्वारा 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग' के सहयोग से दिनांक 21-22 अक्टूबर, 2019 को 'साहित्य और सत्ता' विषय पर आयोजित दो दिवसीय राष्ट्रीय कॉन्फ्रेंस में भाग लिया और
पर अपना शोध आलेख प्रस्तुत किया।

.....
डॉ. आशा रानी
(कॉन्फ्रेंस-संयोजक)

.....
डॉ. ओंकार लाल मीणा
(शिक्षक-प्रभारी)

.....
डॉ. रवीन्द्र कुमार गुप्ता
(प्राचार्य)

DAYE/NC/16

